॥ श्री वीतरागायनमः ॥

पूज्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज की समुदाय के पंडित साधूजी महाराज श्री ज़वारीलालजी महाराज कृत

॥ प्रत्युत्तरदीपिका ॥

❀ प्रथम खंड ❀

जिसको

जैन भंडार भीनासर के सभासदों ने मारफत कनीराम बहादुरमल बांठिया को छपा कर प्रगट किया.

डॉ० धारशी गुलाबचंद संघाणी H L M S के प्रबन्ध से ता० १-११-१५ को सुखदेवसहाय जैन प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में मुद्रित.

वीराब्द २४४२ खिष्टाब्द १९१५ विक्रमाब्द १९७२.

प्रथम बार
५०० पुस्तकें

बिना मूल्य
वितरण

भूमिका.

इस चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हुए अनंता-काल जीवों को हुवा, परन्तु कुछ कार्य की सिद्धी नहीं हुई, अर्थात् शारीरिक मानसिक दुःखों से छुटकारा नहीं हुवा. इन दुःखों से जब छूटेगा कि जब मोक्ष में दाखिल होगा. मोक्ष में दाखिल होने के लिये चार कारण मिलने चाहिये. यह चार कारण भगवन्त ने उत्तराध्ययन अध्ययन तीसरा में मिलने दुर्लभ फरमाये हैं. एक तो मनुष्य का भव, दूसरा सूत्र का सुनना, तीसरा श्रद्धा प्रतीति का आना, चौथा संयम में वीर्य पराक्रम का फोड़ना. सो हे भाइयों! इन चार कारणों में तीसरा कारण श्रद्धा प्रतीति का आना बहुत ही दुर्लभ श्री मुख से फरमाया है जैसे कि (सध्दा परम दुल्लहा) इति वचनात्. देखिये श्रद्धा आनी इसलिये दुर्लभ है कि बहुत से मनुष्य पाखंड में पड जाते हैं इस पंचम काल में कई मत मतातर जैन मत में निकले हैं वे कई तरह की प्ररूपणा भगवन्त के मारग से उलटी कर रहे हैं उनके मत की और सच्चे मार्ग की ओ-लखाण जरूर करना चाहिए क्योंकि सत असत का जानकार होगा वही सत्य को धारण करेगा तथा असत को त्यागेगा, इस सत असत का जानपणा होने के लिये और जो २२ सम्प्रदाय की तरफ से ७ प्रश्न तेरे पंथियों से पूछे उन्होंने झूठे उत्तर की पुस्तकें छपाई उस झूठ को प्रगट करने के लिये इस पुस्तक को बहुत ही परिश्रम करके महानु पंडित साधूजी श्री

जुवारीलालजी का बनाया हुवा इस पुस्तक का कच्चा खरड़ा जो उन्होंने परठा उससे नवाशहर के भाइयों ने तयार कराई है परठने का हाल प्रस्तावना में लिखा है वहां से ज्ञात हो जायगा. इस विषय की दो पुस्तकें अगाड़ी भी जैन भंडार भीनासर की तरफ से प्रसिद्ध हो चुकी है परन्तु इस में उस से बहुत ही ज्यादा करके विस्तार सहित उत्तर समझाया है क्योंकि महाराज श्री तेरेपंथियों के मत के पूरे जानकार हैं और स्वमत तथा परमत के भी पूरे ज्ञाता हैं इसलिये इस पुस्तक की प्रशंसा कहा तक की जावे. पुस्तक देखने से स्वयं ज्ञात हो जायगा यह पुस्तक मेरे को सुश्रावक श्री मेघराजजी साहब नवाशहर वालों के पास से प्राप्त हुई इसलिये उनको धन्यवाद देता हूं. और यह पुस्तक कहीं २ अधूरी थी जिस को मैंने महाराज साहब का परठा हुवा खरड़ा नवाशहर से मंगा कर संपूर्ण करली है ताहम भी कोई २ बात खरड़े में नहीं मिली तिसको मैंने अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार लिखि है. भूल हुई हो तो (मिच्छामि दुक्कडं) देता हूं.

और इस पुस्तक का छपाने का मतलब सिर्फ यह है कि इसको देखकर सच्चे मार्ग की ओलखाण हो और मिथ्या मार्ग की शंका हो यह निवर्तन हो, फक्त इसके लिये यह परिश्रम किया है. किंतु रागद्वेष बढ़ाने के लिये नहीं क्योंकि वीतराग का मार्ग ही रागद्वेष मिटाने का है. सो पाठकों से निवेदन है कि रागद्वेष पक्षपात छोड़ करके अवलोकन करोगे तो बहुत ही गुण का कारण होगा और हित का कहते हुए भी बुरा मालुम होवे तो उसका उपाय ही क्या है. ताहम भी जिसका

दिल दुखे उससे खमाता हूं, समदृष्टि का लक्षण यही है. इस पुस्तक के लिखने में भीनासर स्कूल के हिन्दी मास्टर श्रीयुत पं० कालिकाप्रसादजी शर्मा ने सहायता दी इसलिये उनको धन्यवाद देता हूं।

भीनासर — श्रीसंघका हितेच्छु—
१५-११-१५ — कनीराम बांठिया

इस पुस्तक को जयणा सहित पढे, दीपक के उजाले में नहीं पढे. इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूल हुई हो तो मिच्छामि दुक्कड।

प्रसिद्धकर्त्ता

ॐ नमः सिद्धम् ॥ ॐ जिनाय नमः ॐ अर्हत नमः ॥

अथ प्रश्नोत्तर प्रदीपिका ग्रंथस्य प्रस्तावना प्रारम्भः

विदित हो कि सम्प्रतिकाल में बहुत लोग प्राचीन श्रीमान् वर्द्धमान् स्वामी सुधर्म स्वामी के रचे हुए सत्यागम का रहस्य यथावत् न जानके विपरीत दृष्टि से शुद्ध सरल अर्थ छोड के मिथ्यार्थ की कल्पना कर भोले लोगों के हृदय में मिथ्या कल्पना प्रवेश कर देते हैं. इससे बहुत भोले भाई उन लोगों के पक्षपात में ऐसे बध जाते हैं कि वह सत्यासत्य का कुछ भी निर्णय नहीं करते है केवल उपदेशक के कथन को ही सत्य मान लेते हैं. न वह किसी जैनग्रन्थ सिद्धात के ज्ञाता न्यायवादी के सन्मुख हो कर ही सत्यासत्य निर्णय करते है उन्हीं सर्व मित्रों के लिये यह सूचना है तथा प्रार्थना है कि हे प्रिय मित्रों ! तुम पक्षपात छोड कर श्रीमान् वर्द्धमान् स्वामी के वचनों को यथार्थ भाव से श्रद्धायुक्त मान्य करो इसमें ही तुम्हारी आत्मा का हित है. इन प्रवचन सिद्धात की यथावत् श्रद्धा उपरात अधिक कोई लाभ नहीं है और इन अरिहत देव प्रणीतागम का मिथ्याभाषण करने के बराबर अधिक कोई पाप नहीं है इससे ही सर्व भव्य पुरुषों को यह सूचना है कि सत्यासत्य को विना निर्णय किये अपने मन कल्पित अर्थ जैन सिद्धात का करना अत्यन्त दूषित कर्म है और ससार में जैन धर्म की अवनति का कारण है और जिससे अन्यधर्मावलम्बी पुरुषों को भी इस जैन धर्म की उपहास्यता, घृणा,

निंदा करने का अवसर प्राप्त हो सक्ता है कहिये ये कितना अधर्म है. और अत्यन्त संसार वृद्धि करने का कारण है इस समस्त वार्ता को ध्यान में रखकर सर्व भव्य जनों को असत्य शास्त्रार्थ नहीं करना चाहिए, यह सुवचन परमहितकारक है. विशेष करके इस सूचना का प्रयोजन यह है कि इस पंचम काल में संवत् १८१५ विक्रमी में बाइस समुदाय की एक समुदाय के श्री पूज्य रघुनाथ जी स्वामी के शिष्य भीषमजी की ऐसी श्रद्धा हुई कि मरते जीव को बचाने में पाप है तथा गरीब दुखी भूखे को करुणा भाव से दान मे एकांत पाप है जब गुरुजी ने शिष्य भीषम जी की यह श्रद्धा समझी तब उनको उपदेश दे समझाया परंतु भीषम जी ने श्रद्धा गुरु जी की वह हित शिक्षा न मानी. तब रघुनाथजी स्वामी ने उनको अपने गच्छ से अलग कर दिया गच्छ से निकलने के पश्चात् एक नवीन तेरापंथी मत निर्माण किया. मरते हुए जीव को बचाने में एकांत पाप होता है १ तथा साधू के सिवाय अन्य किसी को दान देने में भी एकांत पाप होता है ऐसी २ वार्तो की प्ररूपणा जैन सिद्धांत के विरुद्ध मनके मते कर करने लगा. और श्रीमन्महावीर स्वामी ही को छद्मस्थ पन में चूका कहने लगे जिनका कि यह जैन शासन चतुर्विध संघ प्रचलित है उन परमेश्वर को चूका कहा इनके उपरांत अनेक बोलों को सिद्धांत विरुद्ध प्ररूपणा कर भोले लोगों के हृदय में अपने कपोलकल्पित मत की श्रद्धा स्थापन करने लगे. जिससे कि अनेक सीधे सादे भोले जीव उनके मतानुयायी बने. अबतक तो इनके मत की प्ररूपणा हस्त लिखित पुस्तकादि से होती रही तत्पश्चात् जब भीषमजी

के चौथे पाट पर जीतमलजी तेरह पथियों के पूज्य हुवे उन्हों ने भ्रम विध्वंसन नाम ग्रन्थ रचा और भी कई ग्रन्थ स्वकपोल कल्पित रचे गये. उनमें भ्रम विध्वसन नाम ग्रंथ छप कर प्रगट हुवा है और भी कई ग्रथ रचे गए हैं अब एक बार के प्रस्ताव सवत् १९५९ में श्री श्री श्री तपस्वी हुकमीचदजी महाराज के सम्प्रदाय के श्री श्री श्री लालजी महाराज के सम्प्रदाय के आज्ञानुसारी स्वामी श्री मोतीलालजी जुवारीलालजी ने चातुर्मास्य राजपूताना-जोधपुर में किया था वहां ही पर उक्त जीतमलजी रचित भ्रम विध्वसन ग्रथ स्वामीजी जुवारीलालजी के दृष्टिगोचर हुवा.

उस ग्रंथ की रचना देखकर स्वामीजी सोचने लगे कि आश्चर्य है कि जीतमलजी ने जैन सिद्धात के सत्यार्थ को उलट पलट कर दया को काटने ही के लिये इतनी चेष्टा क्यों की. ग्रंथ देखकर विचारने लगे कि ऐसे दयारहित ग्रथको जो कोई सम्पूर्णतया सत्य मानता होवे उस से इस विषय में अवश्य कुछ प्रश्न करने चाहिए इत्तफाक उसवक्त जोधपुर में तेरह पथियों के पूज्य डालचंदजी का भी चातुर्मास्य वहांपर था तब स्वामिजी श्री जवाहरलालजी ने अपने बाईस समुदाय के श्रावकों को कहा कि यदि तेरह पथियों के पूज्य डालचदजी अपना मतका भ्रम वि ध्वसनग्रथ के चद सवालों का उत्तर देवें तो हम उन से चर्चा यानी शास्त्रार्थ करने को तैय्यार हैं तब हम भी इस संप्रदायके श्रावकों ने सोचा कि अपना निर्मल दयामयी जैनधर्म से विरुद्ध भ्रम विध्वसनादिक ग्रथ रचे. और अब यह छपके प्रसिद्ध होने से अपना दयामय धर्मरूप चद्रको

भ्रमविध्वंसनादि ग्रंथ राहूरूप निर्मल धर्म को ग्रसने वाले प्र फट हुये है तो इनके ग्रसने से धर्म रूप चंद्र तो ग्रसनहीं सक्ता परंतु कितनेक जैनदर्शन से अन्यदर्शन वाले या स्वदर्शनी जैनी भोले भाइयों को यह ग्रंथ देखने से भ्रमउत्पन्न होवेगा. तो जरूर तेरह पंथियों के पूज्य से उनके भ्रमविध्वंसन ग्रंथके चंद सवाल पूछने चाहिए ऐसा विचार के हम श्रावक लोगों ने स्वामीजी श्री जुवारीलालजी से सात प्रश्न धारन करके एक इश्तहार यानी (नोटिस) प्रगट किया वो यह है ॥

वाइस समुदाय के श्रावकों को प्रश्न लिखा कि इनप्रश्नों के उत्तर सविस्तर सूत्रार्थ के पाठ सहित तुह्मारे पूज्यजी से पूछ करके लिखो-प्रश्न ७ निम्नलिखित है.

१-श्रीमन्महावीर भगवंत को दीक्षा लेने के अन्तर छद्म स्थपन में चूके बतलाते हो सो पाठ दिखलाओ ?

२-साधुके सिवाय दान में एकान्त पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

३-४२ दूषण टाल अहार के भाजी प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक तपस्वी को ४२ दूषणटाल कर देने वाले को एकान्त पाप कहते हो सो पाठ दिखलावो ?

४-साधुजी महाराजको किसी दुष्टने फांसी दी दयावान ने धर्म बुद्धि से खोलदी, तुम उन दोनों को पाप कहते हो और श्रद्धते हो सो पाठ दिखलावो ?

५-गायों से वाडा भराहुवा है जिसमें किसी दुष्टने लाय लगादी. किसी दयावान् ने किवाड खोल बाहिर निकालदी

और गाए वचगई तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ?

६–असजती पोसणिया १५ वा कर्मदान कहते हो और सिखलाते हो सो पाठ दिखलाओ ?

७–असयती का जीवना नहीं वाञ्छना कहते हो सो पाठ दिखलाओ

इन प्रश्नों के उत्तर जल्दी लिखो बाकी बहुत प्रश्न हैं ॥

तुह्मारा मत अर्थात भीषमजी का चलाया मत सूत्र विरुद्ध जैन सिद्धांतों से प्रगट दीखता है सो तुह्मारेपूज्यजी न्याय से चर्चा यानी शास्त्रार्थ कर तो हमारे साधुजी महाराज चचा करने को तयार है स्थान तीसरा और निष्पक्ष विवेकी समझदार तीसरे मतके मध्यस्थ माजिज मुकर्रर होवे ताकि गलवा न हो सके चर्चा जरूर होनी चाहिये. ॥ १ हफ्ते की मियाद दी जाती हैं क्योंकि चउमासे के दिन थोड़े रहे हैं जो इस मोकेपर चर्चा तुह्मारे पूज्यजी नहीं करेंगे तो हमलोग तो समझते ही है फिर और सब लोग भी तुह्मारे को झूठा समझेंगे ॥ संवत् १९५९ कार्तिक सुदी २

२२ सम्प्रदाय की तर्फ से
मुणोत अमरदास भंडारी किसनमल

यह ऊपर लिखित इश्तहार हम श्रावक लोगों ने छपवा के बाटे और कई एक इश्तिहार प्रगट करने के लिये दीवालों (भीतों) पर चिपका दियेगये और एक इश्तिहार २२ सम्प्रदाय के श्रावक फतेराजजी मूता तेरेपथियों के श्रावकों को

देनेलो. परंतु उन तेरेपंथियों के श्रावकों ने फतेराजजी से तो यह इश्तिहार नहीलिया–और एक भीतसे उखाड लाये और उस इश्तिहार को वान्च के मश्नों के उत्तर तो नहीं लिखे और लोगों को दिखलाने रूप एक पत्र लिख के कितनेक तेरेपंथि श्रावक मिलके पत्रा लेके आवाकी हवेली कि जहा पै स्वामी जीश्री मोतीलालजी जुवारीलालजी थे वहापर आये और अपना लिखा हूवा पत्र श्रावक लोगों को सौंप गए वह पत्र यह है जैसा उन्होंने योग्य वा अयोग्य लिखा है वैसा अक्षर हम यहांपर लिखते हैं– ॥

श्रीजिनराजो जयति ॥

तेहरा पंथी समुदाय श्रावकों को तर्फसे बाईश टोले के श्रावकों को इत्तिला दीजाती है कि तुम लोगोंने भोले अनजान लोगों को बहकाने और अपनी बड़ाई दिखलाने के लिये जो अनुचित और असम्बद्ध सात मश्नों का इश्तिहार मगट किया उसका उत्तर यदि तुमको चाहिये था तो वह इश्तिहार हमारे पास ले आनाथा सो हम लोगों के पास न आकर चुपके से दूसरे लोगों के मकानों पर चिपका दिया परतु हमारे किसी मित्रने इस इश्तिहार को हम लोगों के सवन्धि जानकर भीत पर से उखड़ करके हम को लाकर दिखलाया तो हम लोगों ने परमपूज्य महाराजाधिराज से निवेदन किया तव श्री महाराज ने आज्ञा की कि इन मश्नों का उत्तर तो हम शास्त्र की रीतिसे अभी दें सकते हैं परंतु इस इश्तिहार में यह भी पाया जाता है कि वे चर्चा करना भी चाहते हैं सो यदि यह व्यवस्था वन जाय तो समत में ही सवनिर्धार हो जाय और

फिरभी उनको वारंवार चर्चा चर्चा ऐसा कहने की जगह न रहे ॥ १ हफ्ते की मियाद लिखी सो हमतो कल परसों जब इनकी इच्छा होवे तभी तैयार है मियाद वह चाहता है जो उत्तर देने में असमर्थ हो ॥ और तीसरे मनुष्य के मकान पर तीसरे मत के निष्पक्ष मोजिज़ मध्यस्थ मुकर्रर होने की भी लिखी सो बहुत ठीक है हम श्रावक लोग तुम्हारी सभी शर्तों के लिये मंजूरी देते हैं ॥ मकान उदेमदिर की और मध्यस्थ स्वामीजी गणेशपुरीजी कविराजाजा श्रीमुरारीदानजी भंडारीजी श्रीहणवतचंदजी और इनके सिवाय और भी जो कोई जैनशास्त्र का अभिज्ञ निर्पक्ष हो किया जावे ॥ तुम्हारे साधूजी को चर्चा करनी हो तो वे शीघ्र करें क्योंकि चातुर्मास्य के दिन बहुत अल्प रह गये हैं ॥ और श्रीभगवत महावीर स्वामी के भाषे हुए सूत्र सिद्धांत के अनुसार इस दुःखम पचम कालमें यथार्थ धर्मका उपदेश करने वाले परमपूज्य महामुनि श्रीस्वामी भीषमजी महाराज के कथन को विना विचारे एकाएक जैन सिद्धांतों से विरुद्ध लिखने से तुम्हारी तुच्छता पाई जाती है और तुम्हारे लेख से यहभी पाया जाता है कि तुम्हारी मनसा फसाद करने की है इसलिये तुमको लिखा जाता है कि चर्चा के लिये जो दिन नियत करो उसके पहिले हमको इत्तिला दो के बलवा न होने का बंदोवस्त मुनासिब कराया जावे ॥ सवत् १९५९ रा कार्तिक सुदी ६ गुरुवासरे ॥

द० भंडारी किसनमल ॥

यह पत्र हम वाईस समदाय के श्रावकों को देके ऐसा कहगए कि जैसा मुनासिब होवे वैसाही इसका उत्तर हमको

लिखके भेजदेना तब यह पत्र हम बाईस संप्रदाय के श्रावकों को पढने से वडा आश्चर्य हुवा कि हमने जो प्रश्नों का इश्तिहार प्रकाशित किया वह सर्व प्रश्न उनके ग्रथ भ्रमविध्वंसन में मौजूद है और हमारे गुरुजी ने उस ग्रथसे उधारके अर्थात् निकाल के ही हमको धराये हैं तो फिर हमारे तेरेपथी भोले मित्रों ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि अनुचित और असबद्ध सात प्रश्नों का इश्तिहार प्रगट किया क्या इन मित्रों ने अपना परम पूज्य जी का वनाया भ्रमविध्वसन नहीं पढा शायद भ्रमविध्वंसन को वाचा तो होगा परंतु अब फांसी से साधूको वचाने में पाप-और मरती गायो को वचाने में पाप ऐसी दया-रहित अपनी गुरुजी की श्रद्धा लेखसे लज्जायुक्त हो के लिख-दिया होवे कि यह प्रश्न अनुचित और असंबद्ध है तो उन प्रिय मित्रों को विचारना था कि अवतो गुरुजी की श्रद्धा पुस्तकों में छपगई वो छानी कैसे रहै सकै-और फिर हम यह सोचने लगे कि हमारे तेरेपथी मित्रों को अपने गुरुजी की श्रद्धा अनु-चित और असंवद्ध मालूम हुई होवे तो फिर हमारे प्रियमित्रों को क्या स्वार्थ है कि जो ऐसी अनुचित और असवद्ध श्रद्धा मे वधे हुये है और अपने गुरु भीषमजी को श्रीभगवान् महावीर स्वामी के भाषे शास्त्रों के यथार्थ भाषणे वाले कहते हो तो फिर श्रीमान महावीर स्वामी को भीषमजी चूके क्यों कहे या श्री भगवान् का सत्यशास्त्र कि जिसमे जीव वचाने में धर्म है ऐसे सत्यशास्त्र से उलटीप्ररूपणा क्यों करी कि जीव वचाने में पाप है परतु खेर अरु वरु चर्चा होवेगी तो सत्यासत्य का यथार्थ मालूम हो जावेगा ऐसा विचार के एक पत्रा हम श्रावक

लोगों ने लिख के भोणोत अमरदासजी पटवा चतुरनाथजी आदि अनेक श्रावक लोग मिलके भंडारी किसनमलजी की हवेली पर गये कि जहा उनके पूज्य जी उतरे हुये थे उनके पूज्य जी को वह पत्र सुनाके उनके श्रावक कृष्णमलजी आदि को दिया.

नोट–१–इस पत्र की असली नकल नहीं मिलने से नहीं छपासकेम कर्ता.

पत्र दे उनको अमरदासजी ने कहा कि एक मकान आपने उदे मंदिर के वास्ते कहा यह ठीक नहीं है क्योंकि जोधपुर में क्या मकान की तगाई है सो उदेमदिर में जावे और फिर उदे मंदिर दूर भी बहुत है और चर्चा का मामला है एक दिन दो दिन चार दिन तक भी होवे तो प्रति दिन संतों को और सभा मध्यस्थों को आने जाने में बहुत देर लगे और संतों को पुस्तकें तोक के ले जाने लाने की भी तकलीफ होवे इस वास्ते जोधपुर में आवा की हवेली या न्यात का नोहरा या और कोई नजीक पर ठीक मकान होवे सो विचार के कहो और गणेशपुरीजी को आपने मध्यस्थ ठहराये सो वह आपके तर्फदार होने से हमको मध्यस्थ मालुम नहीं होते हैं बाकी मध्यस्थ आपने लिखे यह मंजूर है और हमारी तर्फ से आप के लिखे मुजब जैन शास्त्र के अभिज्ञों में तो गुरु साहब श्री जवारमलजी यतीविजे जो और दोनों तर्फ न्याय को तोलने में कविराजा जी श्री मुरारीदानजी इनको हम ने मध्यस्थ मुकर्रर किये हैं अब मकान नजीक का विचार कर कहो जो चर्चा का दिन मुकर्रर किया जावे तिसपे तेरे

पंथी श्रावक भडारी कृष्णमलजी आदि कहने लगे कि हमारी तरफ से गणेशपुरीजी तो मध्यस्थों में मुकर्रर रहेंगे. और आपकी तरफ से गुरा साहब जवारमलजी मणीविजेजी को हम मध्यस्थों में मुकरर नहीं करें तब मोणोत अमरदासजी ने कहा कि जो आपने अपने पत्र में लिखा कि जैन शास्त्र का अभिज्ञ होवे उसको मुकर्रर किया जावे तो फिर तुम्हारे हमारे संप्रदाय के सिवाय तीसरे संप्रदाय के मध्यस्थ जवारमलजी मणीविजेजी गुरु साहब के सिवाय कौन ऐसा जैनशास्त्र का अभिज्ञ है सो मध्यस्थों में मुकर्रर किया जावे आप अपने लेख पर क्यों नही कायम रहते हो इत्यादि वहुत कुछ कहा परंतु तेरेपथियों के श्रावकों ने दोनों गुरा साहब का मध्यस्थ मंजूर नहीं किये तब मोणोत अमरदासजी ने कहा खैर आप अपने लेख पर ही कायम नहीं रहें तो ऐसा करो कि कविराजजी मुरारीदानजी को आपने मध्यस्थ मुकर्रर किये हैं और हमने भी उन्हीं को मुकर्रर किये हैं तो आप और हम दोनों तरफ के श्रावक मिलके चलिये जो कविराजजी से अपनी हकीकत कहदेवे जिसपर कवीराजजी कहें वोतो मकान मुकर्रर किया जावे और वह कहें वोही मध्यस्थ मुकर्रर और जो वह कहे वोही दिन और टाइम मुकर्रर अपने दोनों श्रावकों को मंजूर किया जावे और चर्चा जरूर होनी चाहिये तिसपै तेरेपथी श्रावकों में से भडारी लच्छमणदासजी ने उत्तर दिया कि जावो आप हमारे नामकी इस विषय की सरकार की अदालत में अर्जी दे दीजिये तिस पर जो सरकार हमें पूछेगा वह हम उत्तर देवेंगे यह वचन

लछमणदासजी के सुनते ही मोणोत अमरदासजी आदि बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों को बिलकुल मालूम हो गया कि चर्चा करने की इनकी हिम्मत नहीं क्योंकि अपनी शुद्धता होवे तो सभा के सामने चर्चा करने को आवे परन्तु मूल सेही ऐसी श्रद्धा है कि साधु की फांसी काटने में पाप और गायों को बलते बाडे में से निकालने में पाप है तो ऐसी श्रद्धा वाले सभा के सामने कैसे आसके तो खैर जैसी इनकी पोलपाल श्रद्धा अपने मन में समझते थे वैसी ही विदित हो गई तो अब इनको नाहक ज्यादा तंग करना ठीक नहीं ऐसा अपने मन में हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों ने संतोष कर तेरेपंथी श्रावकों को कहा कि खैर तुम चर्चा नहीं कराओ तो तुम्हारी खुशी परन्तु आप के पत्र के बदले हमारा यह जो पत्र आपको दिया है इसका आपको मुनासिब तुले वैसा उत्तर लिख भेजना यह कहकर हम सर्व बाईस सम्प्रदाय की श्रावक मंडली वहां से चली आई और पिच्छा पत्र आने की राह देखते रहे परंतु पत्र तो आवे ही कहां से क्योंकि चर्चा करने की हिम्मत नहीं तो पत्र कैसे भेजे बस इसी तरह से चातुर्मास्य का समय बीत गया परन्तु न तो सात प्रश्नों का उत्तर दिया और न हमारे पत्र के बदले उनका पत्र पीछा आया तब हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावक तो इन तेरे पंथियों का मत जैसा था वैसा जानते ही थे परन्तु जोधपुर के रहने वाले जैन दर्शन के सिवाय अन्य दर्शन वाले बहुत मध्यस्थों को भी विदित होगया कि इन तेरे पंथियों की यह श्रद्धा है और ऐसे यह सच्चे हैं ।

बस यह चर्चा जोधपुर शहर से अविदित (छानी) नहीं

तत्पश्चात् चातुर्मास्य सम्पूर्ण होने से हमारे गुरूजी श्रीमोतीलालजी जुवारीलालजी मारवाड़ वालोतरे को गये वहांपर भी तेरे पंथियों के पूज्यजी थे तो फिर हमारे गुरूजी श्री जुवारी लालजी ने हमारे श्रावकों को कहा कि तेरे पंथियों के पूज्य जोधपुर के सात प्रश्नों का उत्तर देवे तो लेनेको तैयार हैं तब श्रावकोंने चंदनमलजी लोडा विष्णु उपाशक जगात् के दरोगेथे. उनको कहा तब उनने तेरे पंथियों के पूज्यजी से कहा तब कहने सुनने से सुरतरामके मदिर में चर्चा करने को तेरेपंथियों के पूज्यजी तो नहीं आये. और अपने मगनलालजी आदी साधुवों को भेजे. तब हमारे गुरूजी जवारीलालजी ने वहांपे प्रश्न किया कि श्रीमान् महावीर भगवंत को दीक्षा लेने अनंतर छद्मस्थपने में चूका कहते हो सो पाठ दिखलावो तिसपर तेरे पथियों के साधुजी मगनलालजी उत्तरदिया कि श्री भगवानने दश स्वप्नेदेखे जिस से चूके हैं तब बाईस समदाय के साधुजी जवारीलालजी ने कहा कि श्री परमेश्वर दश स्वप्ना तो यथा तथ्य देखे हैं और यथा तथ्य स्वप्न को सूत्रदशा श्रुतस्कंधजी के ५ वें अध्यायन में तीसरी चित्त समाधी. यानी धर्म ध्यानमें कहे हैं सो कभी चूकना सिद्ध नहीं होता है. बस यह एकही काफी प्रत्युत्तर सुनतेही सभा के मध्यस्थो को तो बखूबी रोशन होगया कि सत्य यह है. परन्तु मगनलालजी ने यह बात स्वीकार नहीं करी तब चंदनमलजी लोडा ने कहा कि हम कल जोधपुर से पंडितो को बुलाते हैं सो सत्यासत्यका निर्णय हो जावेगा. आज सभा विसजर्न (बर्खास्त) करो बस दूसरेदिन लोडाजीनो पंडितों को बुलाने की सलाह में थे परंतु बुलाकर

थरें गया. तेरे पथियों के पूज्यजी तो ऐन सुबह ही विहार कर गए दरोगा लोडाजी ने पूज्यजी की स्थिरता करानेको दोभाई भेजे परंतु तेरे पंथियों के पूज्यजी तो नहीं ठहरे मगनलालजी आदि साधुवों को शर्मा शर्म छोड़ गये फिर मगनलालजी भी उसी रोज आहार पानी कर विहार कर गए हमारे बाईस सम्प्रदाय के मगजी श्रावक ने मगनलालजी को ठहरने को बहुत कुछ कहा. परन्तु वह तो ठहरेही काहेको क्योंकि प्रश्न का उत्तर देने की सत्यता नहीं तो अब किस आसरे से ठहरे, बस इस वार्ता को बालोतरा में जैनी वैष्णव आदि बहुत भाई समझ गए कि तेरे पथियों की सचाई यह है पश्चात् नयाशहर में जिसको अंग्रेजी में ब्यावर कहते है उस शहर में हमारे महाराज श्री मोतीलालजी जवारलालजी पधारे और वहा तेरे पथियों के पूज्यजी भी विहार करते आये तो उनको हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावक और आर्य समाजी बाबू गुलाबचदजी ब्राह्मण आदिक ने चर्चा के लिये कहा परतु तेरे पथियों के पूज्यजी ने तो हामी नहीं भरी और ठहरही काहे को फक्त दो रात्रि रह के ऐन सुबह ही विहार कर गये बस अब सज्जन पुरुषों को विचारना चाहिये कि हमारे तेरे पंथी बाल मित्रों के मत की कैसी सचाई है बस इतना प्रभाव तेरेपथियों ने अपना मत का देख के जोधपुर के निवासी तेरे पथियों के श्रावक भडारी किसनमलजी ने अपने मनमें कुछ सोच विचार के अपने मत की सचाई दिखलाने और पूज्यजी का अपवाद मिटाने को एक प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक छपवाया कि जिसमें हम बाईस सम्प्रदायक श्रावकों को उटपटाग सूत्रों का नाम ले के उत्तर

लिखे है संवत् १९५९ में कार्तिक सुदी २ के पूछे हुए प्रश्न तिसका संवत् १९६० के वैशाख सुदी १५ पै प्रश्नोत्तर की पुस्तक छपवाई अब पाठकगणोंको विचारना चाहिये कि तेरे पंथी किसनमलजी को अपने मत की सच्चाई थी तो फिर रुबरु पूज्यजी से चर्चा क्यों नहीं कराते.

अब पुस्तक छपाने से उनका मत सच्चा तो किसी तरह से सिद्ध नहीं होता. परतु उलटा यह सिद्ध हुवा कि मरते हुवे साधू की फांसी काट के बचाने में पाप. और गायों को अग्नि की लाय से बचाने में पाप. अपने मुख से लिख चुके और जिन श्री महावीर प्रभु का नाम धराते हैं कि हम महावीर प्रभु के मत में चलते है. उन प्रभु को ही छद्मस्थपना में चूके लिखे और जिन प्रश्नों को अनुचित असंबद्ध समझते थे उन प्रश्नों का ही अपने आपके श्रद्धा मुताबिक समझ के उत्तर लिखे अब इस प्रश्नोत्तर पुस्तक को देख के बहुत से समझदार मध्यस्थ तो बाचते ही समझ जाते है कि कैसी अनुचित इनकी श्रद्धा है. परतु एक बात श्रीमान् वर्द्धमान स्वामी के शासन के प्रभाव से अच्छी हुई कि तेरे पंथी साधु श्रावक चर्चा की वक्त में प्रायः जीव बचाने में पाप कहने में या साधु के सिवाय अन्य को दान देने में पाप, या श्रीमान् वर्द्धमान स्वामी को चूके कहने में अनेक प्रकार का वाक जाल करके पलट जाते थे. सो अब उनकी बनाई हुई प्रश्नोत्तर पुस्तक के प्रताप से उलट पुलट बोलने या बदलने का अत्यन्त रुकने का मौका हो गया. परतु जब हम बाईस सम्प्रदाय के श्रावकों ने प्रश्नोत्तर पुस्तक को बाची तो जैन सिद्धांत से ऊटपटांग

और विरुद्ध देख के यह भी खयाल किया कि यदि बुद्धिमान जैन दर्शनी या अन्य दर्शनी तो इस प्रश्नोत्तर पुस्तक को विपरीत समझ ही सकते हैं परन्तु कोई भोले भाले साधारण लोक जैन दर्शनी या अन्य दर्शनी जैन सिद्धांत की अशुद्ध साक्षी रूप पुस्तक को देख करके भ्रम में पड जावे कि शायद जीव बचाने में पाप जैन के शास्त्र में कहा होगा या श्रीमान् महावीर प्रभु जी को छद्मस्थ अवस्था में चूकने का लेख कोई शास्त्र में होवेगा. जिससे तेरे पंथियों के पूज्य जी ने शास्त्र की साक्षी अपने श्रावकों को सिखलाई उनके श्रावक भंडारी जी कृष्णमल जी ने पुस्तक बना के प्रसिद्ध की तो उन साधारण मनुष्यों का संदेह निवृत्त करने के लिये हम बाईस समदायक नयाशहर के श्रावकों ने श्री साधु जी जवाहरीलाल जी से विनय की कि तेरे पंथियों के ऊटपटांग उत्तर का प्रत्युत्तर सिद्धांत पाठ टीका दीपिकादिक से हो जावे तो बहुत लाभदायक होगा और यह प्रश्नोत्तर के प्रत्युत्तर के पत्र आपके पास रहने में आपको हर कोई पूछे तो उनको कहने में आवे कि तेरे पंथियों का शास्त्र विरुद्ध उत्तर का प्रत्युत्तर सिद्धांत पाठ अर्थ टीका सहित हमारे पास तैयार है जिसको सुनना होवे तो सुनो बस इस परिश्रम से आपको परोपकार बहुत लाभ होगा और हम श्रावक लोगों की और अन्य बहुत से श्रावक लोगों की उत्कंठता है सो मंजूरी फरमावे. तब महाराज ने फरमाया कि अवसर होगा तो इस विषय का उद्यम करणे की इच्छा है. बस फिर महाराज साहिब ने प्रत्युत्तर लिखना शुरू किया परंतु उस वक्त श्रावण महीने में वर्षा ऋतु का

मौका था जिससे स्याही सुखाने की तकलीफ होवे और गीली स्याही साधु को रात की राखनी नहीं कल्पे. इससे पेन्सल से कच्चे खरडे लिखना शुरु किया। फिर जब प्रत्युत्तर पूर्ण हुए तत्पश्चात् कच्चे खरडे अपने काम में नहीं आने लायक जान के स्वामी जी ने अपनी नेश्राय से कच्चे खरडे के पत्र अलग कर दिये तब वे कच्चे खरडे हमारे स्वधर्मी भाई श्रावक भंडारी जोरावरमल जी और मेघराज जी के हस्तगत हुए क्योंकि भंडारी जी संसार के व्यवहार व्योपारादिक प्रपंच को छोड के फक्त संतो की सेवा और तप स्यादिक में अपने आत्मा को तत्पर करते रहते हैं और मेघ राजजी भी ज्ञानध्यान और पठनपाठन और संतों की सेवा में तत्पर रहते हैं इससे उनके हस्तगत वह पत्र हुए तब हम श्राव क लोगों ने उन कच्चे खरडे के पत्रों को सर्व भव्यजनों को लाभ पहुचाने के लिये पंडितजी विहारीलालजी से अच्छे कागज़ पर उतराये ऊक्त पंडितजी को इस विषय में बहुत परिश्रम पडा क्योंकि खरडे बिल्कुल कच्चे चलते हरफों में लिखे हुवेथे. क्यों कि बरसात का समय था और महाराज को व्याख्यानादिक अन्य काम बहुत था और ग्रंथ पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष की प्रकिया से बहुत बडा लिखने की इच्छा से चलते हरफों में लिखे हूवे खरडे थे. तथापि पंडितजी सिद्धांत कौमुदी पट्काव्य सिद्धात-मुक्तावली इत्यादिक संस्कृत. काव्य. न्यायादिक ग्रंथोंके ज्ञाता थे-इससे ग्रंथ का आशयजान के शुद्ध करके लिखाहै. तथापि कोई विषय में दृष्टिदोप से अशुद्ध रह गया होवे तो विद्वान् जन शुद्ध करलेना. ॥ इति शुभभवतु ॥

पाठकगण सज्जन भव्यजनों से यह हमारी प्रार्थना है कि इस ग्रंथ को यत्न से कुटिलता द्वेषता त्याग करके चित्त की व्याकुलता छोड़ करके समदृष्टि से देखें कि जिससे इस ग्रथ से यथार्थ तत्व का बोध यानी सत्यासत्य निर्णय रूप ज्ञान प्राप्त होवे इस हेतु से इस ग्रंथ का नाम "प्रत्युत्तर दीपिका" रक्खा है. क्योंकि प्रश्न जो हमारे यानी बाईस समदाय की तर्फ से तेरपंथियों को प्रश्न पूछे गये. तिसका विरुद्ध उत्तर जैन सिद्धांत ग्रथों का नाम लेके तेरे पथियों का श्रावक कृष्णमलजी भंडारी ने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक छपवाया तिसका भ्रमरूप अधकार को दूर करने के लिये यह प्रत्युत्तर दीपिका नाम ग्रथ है सो भव्यजनों को सत्यासत्य निर्णय में प्रवेश होने के लिये दीपक रूप समझ के कचा खर्डासेपंडितजी के पास लिखा है. परतु द्वेप और क्लेश या विरोध बढाने के लिये नहीं. इस लिये भव्यजनों से प्रार्थना है कि द्वेपभाव न बढावें किंतु सत्य को ग्रहण करें ॥

इस ग्रंथ में जहा पर 'पूर्वपक्ष' ऐसा सूचवन आवे तहा ऐसा समझना कि तेरपथियों कि तर्फ से ग्रथकर्त्ता कीं कथन है. और जहा पर 'उत्तरपक्ष' ऐसा सूचवन होवे तहा समझना कि बाईस समदाय के श्री संघ के तर्फ से ग्रथकर्ता ने कथन किया है ॥ और जिस जगह इस ग्रथ में सूत्र के पाठ का अर्थ लिखा हुवा है वह सिद्धातों के पडतों में गुजराती भाषा में जैसा है तैसे ही अक्षर लिखे गए हे परंतु मन के मते ज्यादा कमती नहीं किये गये हैं. सिर्फ सिद्धातों की परतों में तो नीचे पाठ और ऊपर टबार्थ है और इसमें सरलता के लिये ऊपर पाठ

और नीचे अर्थ लिखा है. यदि कोई भव्यजन का संदेह होवे कि सिद्धांत में यह अर्थ है कि नहीं, तो महाराज साहब श्री चुन्नीलालजी से रूबरू यत्न से पूछेगा तो बता देवेंगे. या कोई सिद्धांत की पडत उस वक्त हमारे महाराज के पास हाजिर नहीं हो और जिन संतों के पास से या सतिया के पास से या श्रावकों की नेश्रायक पडते श्रावकों के पास से या और कोई जैन भंडार में से भी जिन पडतों से यहां पर अर्थ लिखा है उन का पता कह देवेंगे कि अमुक स्थान की अमुक पडत से हमने यह अर्थ यहां पर लिखा है. परंतु अपने मन के मते से नहीं लिखा तिमसे जो खोजना करेगा. उस भाई को अच्छी तरह मालूम हो जावेगा या जिस शास्त्र के अर्थ की शंका उत्पन्न होवे वह शंकावान् पुरुष स्वयं या किसी अन्य विद्वान पुरुष द्वारा प्राचीन बहुत अर्थ की पडतों को देखेगा, पूछेगा, तो शंका दूर हो जावेगी और जो जो सिद्धांत की टीका लिखी है तिसका अर्थ जैसा टीका से निकलता है वैसा लिखा हुआ है संदेह होवे तो संस्कृत पाठी विद्वान् से विचारने से विदित हो जावेगा। और जो जो लेख तेरे पंथियों का प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक और भ्रमविध्वंसनादि ग्रंथ का इस ग्रंथ में लिखा है वह जैसा उनकी पुस्तक में योग्या योग्य है वैसा ही लिखा हुआ है सो जान लेना ॥

अथ ग्रंथावलोकन विषय फल ।

जो भव्य जीव मतपक्ष का पक्षपात को त्यागन करके अर्हत देव प्रणीत सिद्धांत की श्रद्धा की प्रतिज्ञा करके एकाग्र चित्त से इस ग्रंथ को अवलोकन करेगा तो जैसी प्रतापमलजी

को शुद्ध श्रद्धा की प्राप्ति हुई वैसी अन्य को भी होवेगी।

प्रश्न-यह प्रतापमलजी कौन है ?

उत्तर-देश मारवाड में पंचभद्रा नाम ग्राम के रहने वाले प्रतापमलजी चोंपडा तेरे पंथियों के बडे भाविक श्रावक थे पश्चात् उनको तेरे पंथियों की श्रद्धा सिद्धांतों से विरुद्ध मालूम हुई, तथापि विचारा कि अपने तेरे पंथियों के पूज्य जी डालचंद जी कि जिनका चातुर्मास जोधपुर शहर में है उनसे सिद्धांत का पाठ पूछ के अपनी शंका को निवर्तन करें और अपने तेरे पंथियों की श्रद्धा सिद्धांत से ठीक मिले तो उनके ही श्रावक बने रहें और अपने पूज्य जी सिद्धांत का न्याय अपने को नहीं दिखावें और अपनी शंका निवर्तन नहीं करे तो फेर जो कोई न्याय श्रद्धावान् न्याय मार्ग में चलने वाले मुनिराज मिल जाय तो उनसे सिद्धांत के पाठ से अपनी शंका का समाधान पूछें जो वह मुनि अपनी शंका को मेट देवे तो उनकी न्याय श्रद्धा धारन करनी, क्योंकि संसार समुद्र से डरने वाला भव्य प्राणी को किसी का पक्षपात में नहीं पडना चाहिये किंतु वीतराग कथित न्याय मार्ग की श्रद्धा का प्रतीत करना योग्य है कि जिसके आत्मा अनादि संसार से मुक्त होवे ऐसी दृढ प्रतिज्ञा करके जोधपुर में आये अपने पूज्य जी से अपनी शंका विषयक सिद्धांत पाठ पूछने लगे तो पूज्य जी ने कहा कि तुम्हारे को भीषम जी महाराज के वचनों की प्रतीत है कि नहीं, तब प्रतापमल जी ने कहा कि मेरे को तो श्री भगवंत महावीर प्रभु जी के वचनों की प्रतीत है तब पूज्य जी ने कहा कि तु भीषमजी महाराज की श्रद्धा में नहीं रहा.

तब फिर भी प्रतापमलजी ने कहा कि, आप मेरे गुरू जी हो सो मेरी शंका सिद्धांतों से निवृत्त कर देवो परंतु तेरह पंथियों के पूज्य डालचंद जी ने सिद्धात पाठ से प्रतापमलजी की शंका निवृत्त नहीं करी।

अब पाठकगण ! विचारो कि तेरह पंथियों के पूज्य जी प्रतापमल जी को सिद्धांत पाठ बतावे हो कैसे, क्योंकि सिद्धांतों में तो ठाम २ श्री भगवान् ने मरते जीव को बचाने में महान धर्म फरमाया है शका होवे तो इस पुस्तक का ५ वा या ७ वा प्रश्न देखना. सिद्धातों के मूल पाठ से जीव बचाने में महान् धर्म सिद्ध किया है, और तेरह पंथी तो कोई कसाई गाय मारता होवे कोई दूसरा धर्म जान के छोड़ा देवे तो अठारा पाप गाय छोड़ाने वाले को होता है. ऐसा कहते है. या गायों के वाडे में लाय लगी होवे उसको धर्म जानके कोई खोल देवे तो १८ पाप गायों को बचाने वाले को लगना बताते है, शंका होवे तो देख लेना तेरह पथियों की बनाई प्रश्नोत्तर पुस्तक का पृष्ठ ११ मा पंक्ति ८ वीं पर लिखा कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को भी बचाने में धर्म नहीं, किंतु पाप माना है या इनके पूज्य जीतमलजी कृत भ्रम विध्वंसन में भी जीव बचाने में पाप माना है तो ऐसी दया रहित श्रद्धा का पाठ सर्वोत्कृष्ट दयामय जैन सिद्धांत में कहा से आवे, कि जो तेरह पथियों के पूज्य जी डालचदजी प्रतापमल जी को बतावे. तब प्रतापमलजी ने जोधपुर शहर में तलाश करनी विचारी, कि कोई न्याय मार्ग बताने वाले मुनि मिलें तो उनसे अपनी श्रद्धा शुद्ध करें. प्रतापमल जी के पुण्य भाग से जोधपुर

म श्री श्री श्री पूज्य जी महाराज श्री श्रीलालजी महाराज के संप्रदाय के श्री मोतीलाल जी जुवारीलाल जी का भी चातुर्मास्य वहा पर था, तब प्रतापमल जी ने उनके चरन भेट के अपनी शंका का समाधान करने अर्थ अपना प्रश्न निवेदन किया स्वामी जी श्री जुवारीलालजी ने उसी वक्त सिद्धांतों की पड़तें खोलके सिद्धांत पाठ दिखलाया. बस प्रतापमलजी ने सूत्र पाठ देखते ही उनका मिथ्यात्व श्रद्धारूप अंधकार ऐसा दूर हुवा कि जैसे सूर्य की किरणों से अंधकार दूर हो जावै. प्रतापमलजी का सिद्धांत रूप सूर्य की वचन रूप किरणों से अज्ञान रूप अंधकार दूर हुवा, तब प्रतापमल जी १० दिन तक ठहर के अपने चित्त को सत्य श्रद्धान से पूर्ण दृढ किया पश्चात् अपने पचभद्रा ग्राम को गए. बस यहा पर इस बात को लिखने का यह प्रयोजन है कि प्रतापमल जी जैसा जो कोई भव्य जीव निष्पक्षपाती होके इस ग्रंथ को अवलोकन करेगा तो न्याय मार्ग वीत राग की शुद्ध श्रद्धा का फल को प्राप्त होवेगा इति ॥ शुभ भवतु ॥

इस सूचना के पश्चात् अब ग्रंथ प्रारम्भ करते है ॥

आपका

श्रावक लोग बाईस समुदाय

नया शहर (ब्यावर)

॥ ॐ श्री जिनाय नमः ॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

अथ प्रत्युत्तर दीपिका प्रारंभः

तत्रादौ शार्दूल विक्रीडित छंदसा मंगला चरणम्।

वीरः सर्व सुरासुरेंद्र महितो वीर बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतश्च कर्म निचयो वीराय नित्य नम ः ॥
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्त मतुल वीरस्य घोर तपः ।
वीरः श्रीधृति कीर्ति काति निचयः श्रीवीर भद्र दिश॥१॥

अस्यार्थः-हे श्रीवीर देव कल्याण देवो कैसे वीर है सपूर्ण जो देवेन्द्र असुरेन्द्र उन करके पूजित और संपूर्ण जो पडित है वह वीर के ही आश्रित है और वीर ने ही सपूर्ण कर्म समूह को हना है ऐसे वीर के वास्ते नमस्कार होय, वीर से ही यह अतुल तीर्थ प्रवृत्त हुवा और वीर की घोर तपस्या है फेर वीर कैसे है लक्ष्मी और धीर तथा काति कीर्ति इनका समूह है जिससे ऐसे श्रीवीर कल्याण देवो ॥इति श्लोकार्थः॥

श्रीशासन के स्वामी वर्द्धमान स्वामी के चरणारविंद में शरण प्राप्त होके भव्य जनों के हितार्थ सत्यासत्य प्रश्नोत्तर का निर्णय यानी सत्य और असत्य को प्रकट देखलाने रूप प्रत्युत्तर प्रदीपिका का अर्हत देव क शरण हो के गुरु कृपा से रचता हू ॥

प्रश्न पहिला-बाईस सम्प्रदाय की तर्फ से श्रीमान महावीर भगवत स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपन में चूके बतलाते हो सो पाठ दिखलावो ?

उत्तर-तेरेपंथियों के तर्फ से प्रश्नोत्तर पुस्तक का पृष्ट दूसरा की पंक्ति चौथी से लगा के १६ मी पंक्ति तक लिखा वह यह है।

(क) श्रीभगवान् महावीर स्वामी ने दश स्वप्ने देखे जिसमें पिशाचों को जीते और भुजा से समुद्र को तिरे यह वार्ता ठाणायग सूत्र के दशमें ठाणे में है तात्पर्य यह है कि स्वप्न का आना मोहनी कर्म का उदय है और जब तक मोहनी कर्म का उदय है जबतक राग द्वेष है जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है और राग द्वेष मिट जाते है इसीसे केवली को वीतराग कह जाते हैं और वीतराग को स्वप्न नहीं आता निद्रा का आना दर्शनावरणी कर्म का उदय है और स्वप्न निद्रा का समर्ग बिना नहीं आता है क्योंकि जाग्रत और निद्रा की मध्यावस्था स्वप्नावस्था है और केवलियों के निद्रावस्था नहीं है इसलिये निद्रा का संसर्गवाली स्वप्नावस्था वाले को केवली नहीं कह सक्के है किंतु छद्मस्थ ही कह सक्के हैं और छद्मस्थ के चूक जाने का संभव है इति ॥

अब इसका प्रत्युत्तर सत्यासत्य का निर्णय एकाग्र चित्त करके श्रवण करिये हे तेरेपंथी मित्रो ! भगवन का यथार्थ स्वप्न देखने को तुमने मोह कर्म का उदय ठहराया. यह लेख

इनना अज्ञानता को सूचित करता है कि जिसकी हद लिखी नहीं जावे.

पूर्व पक्ष-इस लेख में अज्ञानता कैसे हुई.

उत्तर पक्ष-ध्यान लगा के सुनिये. अज्ञानता यह है कि प्रथम तो तुम्हारा यह लिखना अत्यन्त विरुद्ध है कि जो तुमने लिखा कि (श्री भगवत महावीर स्वामी ने दश स्वप्न देखे जिसमें पिशाचों को जीते) सूत्र में तो एक पिशाच को जीतने का खुलासा पाठ है तथा च सूत्रम् । (एकं, महं, घोर. रूव, दित्तधर, ताल, पिशायं,) इति ।

यह देखो सूत्र के तो मूल पाठ में एक पिशाच का जीतना कहा और तुम ने पिशाचों यानी बहुत पिशाचों का जीतना क्योंकर लिख दिया क्या तुमारे पूज्य जी को इतना भी जाणपणा नहीं है जो तुमको एक पिशाच की जगह बहुत पिशाचों की धारणा कराई और एक वचन बहु वचन का ज्ञान भी तुम उत्तर के छपाने वाले को या उत्तर के धारन कराने वाले को नहीं तो फिर किस जाणपने से उत्तर का पुस्तक छपवाया. वाह रे वाह,उत्तर छपवाने वाले जी. तुम्हारी बुद्धि और दूसरा भी यह तुम्हारा लिखना बिलकुल अज्ञानता को सूचन करता है कि जो तुम ने लिखा कि (जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है.) इति ।

देखो यह लिखना कितना अज्ञानपने का है क्योंकि सिद्धात में तो यह लेख है कि मोहनी कर्म का क्षय तो द्वादश में गुण स्थान में, हो जाता है. तत्पश्चात् तेरहवां गुण स्थान

प्राप्त होवे जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और हे मित्रों तुम ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तब मोहनी कर्म का क्षय हो जाता है आहाहा तुम्हारे पूज्य जी ने कैसे ऊटपटांग लेख सिखलाये और तुम्हारे सरीसे अल्पज्ञों ने भी कुछ नहीं विचारा कि जो एक साधारण जैन का जानपनेवाला समझदार लडका भी समझ सक्ता है. कि मोह कर्म के क्षय हुए वगैर केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है तो फिर तुम ने केवल ज्ञान हुए पश्चात् मोह कर्म का क्षय होना कैसे लिखा. अगर तुम्हारे को छोटे से लडके के वराबर भी ज्ञान नहीं तो फिर पुस्तक बनाने का साहस कैसे किया पाठकगण विचारना चाहिये कि तेरह पथियों के पूज्य जी और श्रावक जी कैसे विद्वान हैं बस भोजन के पहिले ग्रास में ही कडु या जहरादिक है तो अगाड़ी शुद्ध भोजन होवे ही कहा से, ऐसे ही सपूर्ण प्रश्नोत्तर चोपड़ी को समझना तथापि आगे को फिर दिखाते हैं तीसरी इस लेख में यह अज्ञानता है कि स्वप्न देखना भगवंत ने क्षयोपशम भाव में कहा है और तुमने मोह कर्म का उदय वतलाया यह अत्यन्त अज्ञानता हुई और मोह कर्म में है इसकी साक्षी भी किसी सिद्धात की तुम ने नहीं लिखी फकत केवल ज्ञानी स्वप्न नहीं देखने से ही मोह कर्म के उदय में कह दिया अब बुद्धिमान पुरुषो विचारो कि थोडा भी जैन सिद्धात का ज्ञान होता तो ऐसी मिथ्या वार्ता नहीं लिखते क्योंकि केवल ज्ञानी नहीं देखे उन सर्व कामों को मोहनी कर्म का उदय कहना अनत ससार की वृद्धि का कारण है क्योंकि चार ज्ञान मति १ श्रुति २ अ

वधि ३ मन पर्यय ४ और तीन दर्शन चक्षु १ अचक्षु २ अव
धि ३ भी केवली जी महाराज के नहीं है तो क्या यह मोह
कर्म के उदय में हो सक्ता है कभी नही हो सक्ता या चार
चारित्र यानी सामयिक चारित्र छै दोप स्थापनीया चारित्र परि
हार त्रिशुद्ध चारित्र सूक्ष्म सांपराय चारित्र यह सरागी कहाते
हैं यानी राग द्वेप मोह कर्म सहित जीव के होते हैं और केव
ली महाराज के तो एक यथाख्यात चारित्र होता है क्योंकि
मोह कर्म राग द्वेप नही होने से तो कहो राग द्वेप मोहनी कर्म
वाले के ४ चारित्र क्षयोयशम भाव में है कि मोहादि कर्म के उ
दय भाव में है।

पूर्व पक्ष—चारि चारित्र तो क्षयोपशम भाव में है ऐसा
सूत्र में खुलासा लेख है.

उत्तरपक्ष—तो हे भव्य यह जो तुम्हारा कथन है कि रा
ग द्वेपवाले को स्वप्न देखना होता है इससे मोह कर्म का उदय
कहना निरर्थक हुवा क्योंकि राग द्वेप का सपूर्ण क्षय तो १२
वां गुण ठाणे होता है तो राग द्वेप या मोह कर्म सहित वाले
को सर्व काम मोह कर्म के उदय नहीं इससे स्वप्न देखना भी
मोह कर्म के उदय में नहीं किंतु क्षयोपशम भाव में है ऐसा
सिद्धात में स्पष्ट कहा है

पूर्वपक्ष-स्वप्न देखना क्षयोपशम भाव में है यह किस
सिद्धात का लेख है.

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई सूत्र नदी जी में मति ज्ञानाधिकार
में स्वप्न देखना नो इन्द्रिय यानी मन करके अर्थाग्राही मति
ज्ञान का भेद है सो सूत्र पाठ लिखते हैं सुनिये-सूत्र निम्न-
लिखित है

सेजहा, नामए, केइपुरिसे, अव्वत्तं, सुमिण, पासिज्जा, तेणं, सुमिणेत्ति, उगाहिए, नोचेवण, जाणइ, केवेस, सुमिणेत्ति, तओइहं, पविसइ, तओ, जाणइ अमुगे, एस, सुमिणे, तओ, अवाय, पविसइ, तओ, सेउवगय, हवइ, तओ, धारण, पविसइ, तओण, धारेइ संखिज्ज, वावा, काल, असखिज्जवा, काल ॥ इति ॥

अस्यार्थः (से जहा, 'नमे के') यथा दृष्टाते नाम इति संभावनाई (केई, पुरिसे, के०') कोई पुरुष (अवत्त, सुमिण, पासेज्जा, के०') अवक्त स्वप्न मते देखे (तेण, सुमिणेति, उगहीए, के०) ते स्वप्न युते ग्रहे परं (णोचे. के.) नहीं निश्चय करि जाणे जे (केवेस० के०) कोण छे यह स्वप्न (तउ० के०) तिवारे विचारणा मापे से (तउ के०) तिवारे जाणे जे (अमु० के०) अमुकोयय स्वप्न छे (तउ० के०) तिवारे पछे निश्चै थाई (तउ० के०) तिवारे धारणा मा प्रवेस करे (तउणं के०) तिवारे पछे धारे. (संखे० के०) संख्याता काल लगे अथवा (अस० के०) असख्याता काल लगे ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो भाई यहां सूत्र के मूल पाठ और अर्थ में कहा कि स्वप्न का देखना नो इन्द्रियमति ज्ञान यानी मन करके मतिज्ञानरूप ' उगे ' इहा ' अवाय धारणा रूप मतिज्ञान का भेद में है फिर जो इन्द्री मतिज्ञान का भेद में स्वप्न है ऐसा इसी सूत्र के टीकाकार जी लिखते हैं तथा च टीका—

एव स्वप्न मधिकृत्यनो इन्द्रियस्यार्था च ग्राहादयः प्रतिपादितव्याः । अनेन चोल्लिखने नान्यत्रापि विषये वेदितव्याः ॥ इति ॥

टीकार्थः-ऐसे स्वप्न का अधिकार करके नो इन्द्रिय अ र्थावग्राह उगे इहां अवाय धारणा की सरूपणा कथन करी इस कथन करके अन्य विषय में भी जानना ॥ इति ॥

हे बुद्धिम नों अब तो जरा सिद्धांत शैली से विचारो कि स्वप्न का देखना तो नो इन्द्री मति ज्ञान में है ऐसा सूत्र का मूल पाठ अर्थ टीका में खुलासा स्पष्ट लिखा है तो फिर तुम ने स्वप्न देखना मोह कर्म के उदय में कैसे लिखा.

पूर्वपक्ष-क्षयोपशमभाव में स्वप्न है ऐसा खुलासा पाठ दिखलावो.

उत्तरपक्ष-सूत्र साक्षी तो लिख ही दी है क्योंकि मति ज्ञान क्षयोपशम भाव में है और स्वप्न का देखना मतिज्ञान में है तो स्वप्न का देखना क्षयोपशम भाव में स्पष्ट रीति से सिद्ध हुवा है अब बुद्धिमानो विचार लेवो कि यह मति ज्ञान क्षयोपशम भाव में है यह भी पाठ अल्पज्ञों के वास्ते लिखते हैं सूत्र अनुयोग द्वार में सूत्र पाठ—

सेकित, खउसमनिप्फंणे, २ अणेग, विहे, पूंणत्ते, तजहा, खउसमिआ, आभिणि, बोहिय. णाण, लद्धी ॥ इति ॥

अस्यार्थः-(सेकिंतं खउवसम, निप्फंणे, २ के०) अथ कोण ते काईक क्षय काईक उपशम थी नीपनोते (अणेग, विहे, पूंणते तजहा, के०) अनेक प्रकारे प्ररूप्योते कहे छे. (खउ, समिआ, आभिणि, बोहियणाण, लद्धी, के०) आभिनिबोधिक ज्ञान ते मति ज्ञान कहिये तेहनी लब्धि कहिये. योग्यता आवरण ना क्षयोपशम थकी निपजे ते भणी क्षयोपशम की कहिये ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो यहां सूत्र अनुयोग द्वार के मूल पाठ में मति ज्ञान को क्षयोपशम भाव में कहा है और स्वप्न का देखना मति ज्ञान में है ऐसा सूत्र नंदी जी के मूल पाठ में कहा है तो अब अच्छी तरह से सिद्ध हुवा कि स्वप्न का देखना क्षयोपशम भाव में है और तुम तरह पथियों का लिखना है कि स्वप्न का देखना मोहनी कर्म के उदय में है वह किसी प्रमाण से सत्य नहीं है किंतु असत्य है।

पूर्वपक्ष–स्वप्न देखना क्षयोपशम भाव में हो परंतु क्षयोपशम भाव में तो तीन अज्ञान या मिथ्या विद्या भी है इससे क्षयोपशम भाव में होने से ही स्वप्न का देखना धर्म में है ऐसा नहीं कहा जाता इससे भगवत का स्वप्न देखना क्षयोपशम भाव में है तथापि धर्म में है ऐसा क्योंकर होवे क्योंकि स्वप्न का देखना मिथ्यात्वी समदृष्टि दोनों को है स्वप्न अच्छा बुरा दोनों तरह के है तो भगवत का स्वप्न देखना धर्म में कैसे हो सके.

उत्तरपक्ष–हे भव्य जनों जैसे क्षयोपशम भाव में मति ज्ञान श्रुति ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन, पर्यय ज्ञान, मति अज्ञान, श्रुति अज्ञान विभग अज्ञान इत्यादिक अनेक भेद सूत्र अनोयोग द्वार जी के पाठ में है अब विचारना चाहिये कि मति ज्ञान और मति अज्ञान दोनों क्षयोपशम भाव में है परतु ज्ञान श्रेष्ट है और अज्ञान कुत्सित है तैसे ही स्वप्न का देखना भी पच भेद का है सो सूत्र भगवती जी का १६ मा शतक का उद्देश छठा में कहा है सो सुनिये सूत्र पाठ।

कति विहेणं, भंते, सुविण, दसणे, पण्णते गोयमा, पच;

विहं, सुमिए, दंसणे, पण्णत्ते, तंजहा अहातच्चे, १ पयाणे
चिंता सुमिणे ३ तव्विवरीए ४ अव्वत्त दसणे ५ इति ॥

अस्यार्थः--(कइ, विहेण, भते, सुविण, दंसणे, पूण्णत्ते के०) के तले भेदे हे भगवन् स्वप्न दर्शन कह्यौ शयनक्रिया अगतार्थ विकल्पतेहनो दर्शन कहिये अनुभवन ते मरूप्यो इति प्रश्नः--उत्तर (गोयमा, पच, विहे, सुविण, दसणे, पं० त० के०) हे गौतम पाच भेदे स्वप्न दर्शन प्ररूप्यो ते कहे है अहातच्चे त्ति० के०) जिणे प्रकारे सत्य तिणे करीवर्ते ते य यातथ्य कहता साचो १ पयाणेत्ति के ० प्रतान कहिये वि- स्तार ते रूप जे स्वप्न ते यथातथ्य तेहथी अनेरो अप्रतान एहवो कहिये विशेषण कृतहीज एवेऊनै विषै भेद इम आगे पणि कह्या हवो २ चिंता, सुमिणेत्ति, के० जागता थकां चिं- ता अर्थ चिंतन ते स्वप्न माहि देखे ते चिंता स्वप्न कहिये ३ तव्विवरीए. के) जेह वोवस्तु स्वप्न ने विषै दीठी तेहथी विपरीत अर्थनो पामवो जाग्या हुवे ते विपरीत स्वप्न कहिये ४ अव्वत्त, दसणे के०) अव्यक्त ते प्रकट नहीं दर्शन अनुभ- व स्वप्नार्थ नो जिहा ते अव्यक्त दर्शन ५ इति सूत्रार्थः ॥

अत्र देखिये यहां सूत्र के मूल पाठ में कहा कि स्वप्न का देखना पच प्रकार का है और सूत्र नंदी जी में स्वप्न देखना क्षयोपशम भाव में कहा है क्योंकि मति ज्ञान में होने से और वैसे ही ज्ञान ४ और अज्ञान तीन यह भी क्षयोपश म भाव में कहे है परतु ज्ञान को ज्ञान और अज्ञान को अज्ञा न समझना वैसे ही यथातथ्य स्वप्न प्रशस्त और उसकी अपेक्षा से अन्य विकल जंजाल रूप स्वप्न कुत्सित जानना

परंतु ज्ञान अज्ञान को एकसा कहना बुद्धिमान का नहीं तैसे ही सर्व स्वप्न एकसा या सर्व स्वप्न देखना बुरा कहना बुद्धिमान का नहीं।

पूर्वपक्ष–भगवंत ने स्वप्न देखे वह पंच भेद में से कौन से भेद में हैं।

उत्तरपक्ष—यथातथ्य स्वप्न में है यानी पच भेद में से पहिला भेद में है तिसकी साक्षी प्रथम तो इस यथातथ्य स्वप्न के अर्थ सूत्र में ऐसा कहा है कि सत्य स्वप्न जैसा देखैं वैसा फल को प्राप्त होवे उस को यथातथ्य स्वप्न कहिये और भगवत महावीर स्वामी भी वैसे ही यथातथ्य १० स्वप्न देखे और यथातथ्य फल को प्राप्ति हुए तथा इस यथातथ्य स्वप्न की टीका में भी कहा है कि हस्ति आदिक पर चढा हुवा अपने को देखे उसको यथातथ्य स्वप्न कहना सो टीका लिखते हैं सो सुनिये ॥ टीका ॥

- अहातच्चेति, यथायेन प्रकारेण तथ्य सत्यं तत्वं वा येन यो वर्ततेऽसौ यथातथ्यो यथातत्वो वा सच दृष्टार्था विसंवादी फला विसंवादी वा तत्र दृष्टार्था विसवादी स्वप्न किलकोपि स्वप्न पश्यति।

यथामह्य फल हस्ते दत्तं जागरि स्तत्तथैव पश्यतीति फलाविसवादीतु किलकोपि गोदृष कुञ्जराद्यारूढ मात्मान पश्यति बुद्धश्च कालान्तरे स्वप्न लभत इति ॥ टीकार्थः ॥

यथा जिस प्रकार करके तथ्य नाम सत्य अथवा तत्व तिस करके जो वर्तता है. वह यथातथ्य कहिये अथवा यथातत्व कहिये वो दृष्टार्था विसवादी और फला विसवादी इसमें

भेदसे दो प्रकार का स्वप्न होता है. अर्थात् जैसे देखे वैसे ही अर्थ को प्राप्त होवे और जैसा देखे वैसा ही फल को प्राप्त होवे तिसमें दृष्टार्था विसंवादी स्वप्न तो जैसे कोई स्वप्न को देखे कि मेरे हस्त में फल दिया फिर जागता हुवा उसको तैसे ही देखता है और फला विसंवादी स्वप्न तो जैसे कोई गौ बैल हस्ति आदिक पर चढता हुवा अपने को देखता है फिर जागता हुवा कालांतर में संपत्ति को प्राप्त होता है ॥ इति

टीकार्थः ॥ अब देखो यहां टीका में भी कहा है कि यथातथ्य स्वप्न दो प्रकार से जानना कि जैसा स्वप्न देखै वैसा ही अर्थ को प्राप्त होवे और जैसा स्वप्न देखै वैसा ही फल को प्राप्त होवे, जैसे कि कोई बैलहस्ति आदिक पर चढा हुवा अपने को देखे. और कालांतर में सम्पति रूप फल को प्राप्त होवे. उसको यथातथ्य स्वप्न कहिये तो फिर श्री भगवान महावीर स्वामीजी भी मेरु पर्वत की चूलिका पर स्वय चढै ऐसा स्वप्न देखा. तिसका फल में श्री भगवान् समव शरण में सिंहासन पे विराज के द्वादश प्रकार का प्रषदा को धर्मोप देश देते हुये और स्वप्न में समुद्र तिरने से संसार रूप समुद्र को तिरे और पिशाच को जीतने से मोहकर्म को जीते. और सूर्य को स्वप्न में देखने से केवल ज्ञान को प्राप्त हुए, इत्यादिक विस्तार सहित मूलपाठ में आगे लिखेंगे, परंतु यह ख्याल में नहीं आता कि तुम्हारे तेरे पंथियों के पूज्यजी जीतमलजी ने भ्रम विध्वसन में ऐसा क्योंकर कह दिया कि भगवान ने दश स्वप्न देखे वह विपरीत स्वप्न है सो हम भ्रमविध्वंसन का लेख तुमको बताते हैं भ्रम विध्वंसन के पत्र ७-६ मा में (वलि

भगवत छद्मस्थपने १० सुपना दीठा ते पीण विपरीत छे) इति ॥

यह दगो तुम्हारे गुरुजी ने सूत्र अर्थ टीका से विपरीत लिख कपोल कल्पित क्योंकर लिख दिया, जीतमलजी को यह भी ख्याल नहीं आया कि जो मै मतपक्ष करके श्री भगवान् दश स्वप्न देखे तिन को मैं विपरीत कह देऊगा तो फिर कोई मेरे से पूछेगा कि भगवान ने देखे वह स्वप्न विपरीत है तो फिर यथातथ्य कौनसे हैं तब मैं क्या उत्तर देऊगा. शोक है कि इतना भी ख्याल उनको नहीं आया तो जान लिया कि मतपक्ष का कारण है, परतु श्री भगवान ने स्वप्न देखे वे तो यथातथ्य मूलपाठ से ही सिद्ध है क्योंकि सूत्र भगवतीजी के १६ मा शतक के छठे उद्देश में श्री भगवान ने स्वप्न देखे वहा ऐसा पाठ है सो सुनिये ॥ सूत्र

समणे, भगव, महावीरे, छउमत्थ, कालियाए, अतिम, राइय, सि, इमे, दस, महा, सुविण, जाव, पडिबुद्धे ॥

अस्यार्थः-(समण, भगव, महावीरं, छउमत्थ, कालियाए, अतिम, राइयसि, के०) श्रमण भगवत श्री महावीर स्वामी छद्मस्थ कालपणानि रात्रिने अतिमभागे (इमे, दस, महा, सुविणे, पासि, त्ताण; पडि, बुद्धे, के०) एह दस स्वप्न देखी ने जाग्या इति सूत्रार्थः ॥

यह देखो श्री सूत्र के मूल पाठ में कहा कि दश महा स्वप्न श्री भगवान ने छद्मस्थ पने की छेली रात्रि के अत भाग में देखे तो सूत्र में महा स्वप्न कहा इससे तो स्पष्ट रीति से ही सिद्ध है कि पच प्रकार के स्वप्न के भेद है तिसमें श्री भगवान् ने स्वप्न देखे वे पहिले भेद में यानी यथातथ्य स्वप्न में है.

तथा फेर इसी भगवतीजी के १६ मां शतक के छठा उदेश में ऐसा पाठ है तो सुनिये ॥

सूत्र—संवुडेण, भते, सुविण, पासइ, असवुडे, सुविण सुविण, पासइ सवुडा, सवुडो, सुविण, पासइ, गोयमा, सवुडेवि, सुविण, पासइ, असंवुडा, विसुविण, पासइ सवुडा, संवुडेवि, सुविण, पासइ, सवुडे, सुविण, पासइ, अहातच, पासइ, असवुडे, सुविण, पासइ, तहा, वात, होज्जा, अणहा, वात होज्जा, संवुडा, सवुड, सुविण, पासइ, एवं चेव, इति ॥

अभ्यार्थः-हिवे स्वप्ननोज तथ्य अतथ्य विभाग देखाडवाने अर्थे स्वप्न हीज कहे छै (संवुडेण, भते, सुविण, पासइ, असवुडे, सुविण, पासइ, संवुडा, सवुडे, सुविण, पासइ के०) सवृते हे भगवन् रूंध्या जणे आश्रव द्वार ते सर्व विरति इत्यर्थः ते स्वप्न प्रते देखे इत्यर्थः ॥

जिणे आश्रव रूंध्या नहीं ते असवृत अविरति इत्यर्थे ते स्वप्न देखे अथवा सवृत असंवृत एतले देश विरति ते स्वप्न देखे इति प्रश्न ॥

उत्तर-(गोयमा, सवुडे, सुविण, पासइ, असवुड वि, सुविण, पासइ, संवुडा, सवुडे, वि, सुविण, पासइ, संवुड, सुविण, पासइ, के०)

हे गोतम सवृत ते पणि स्वप्न देखै, असवृत ते पणि स्वप्न देखै, सवृत असवृत पणि स्वप्न प्रते देखै जे सवृत स्वप्न देखै, इहा विशिष्ट तर सवृतत्व युक्त ग्रह बोते प्राये क्षीण मल थकी देव अनुग्रह युक्त पणाथकी अहा तच, पासइ, असवुडे, सुविणा, पासइ, के०' सत्यस्वप्न हीज देखै असवृत

स्वप्नदेखे. (तहा, वातं होज्जा अण्णहा, वात होज्जा, के०) तेति महीज एतले यथार्थ ते स्वप्न देखे अथवा अन्यथा पणि ते स्वप्न हुवै. (संवुभ्भा, सवुभ्भे, सुविणाई पासइ, एव चेव के०) सवृत असवृत स्वप्न देखे ते पणि इमहीज कहे छे॥ इति सूत्रार्थः॥

अब देखो यहां सूत्र के मूलपाठ में कहा कि संवृत साधु स्वप्नदेखे तो यथातथ्य हीज देखे तो फिर श्रीमान् महावीर स्वामी तो प्रधान सवर में वर्तने वाले थे और छद्मस्थ पने की छेली रात्री में दश स्वप्न देखे. यानी रात्रि को तो स्वप्न देखे और दिनको केवल ज्ञान पाये. और सूत्रदशा श्रुतस्कन्ध के पचमे अध्ययन की टीका और अर्थ में भी श्रीभगवान् के दश स्वप्न का देखना यथातथ्य महा कल्याणकारी कहे है. सो आगे लिखेंगे तिससे सूत्र का लेख से ही श्रीभगवान् महावीर स्वामीजी ने यथातथ्य स्वप्न ही देखे. परतु अन्य विपरीत स्वप्न का देखना. किसी सिद्धान्त प्रमाण से सिद्ध नहीं होता. फिर हेभाई यह विचारो कि जब सवृत आत्मावत साधू को भी स्वप्न ही देखना कहा. और तुम यथातथ्य स्वप्न देखने में भी पाप लगना कहते हो या चूक जाने में कहते हो. और फिर तुम्हारे गुरु की श्रद्धा ऐसी है कि एक दोष सेवन करे उसमें भी साधूपना नहीं. तो फिर स्वप्न देखने में दोष लगा तो सवुडा अनगार यानी साधूपना कैसे रहा. तो तुम्हारी श्रद्धाके अनुसार तो. सवृत साधु यानी निर्दोष साधू को स्वप्न देखना ही नहीं ठहरेगा. या स्वप्न देखना ठहरावोगे तो. सवुडापना नहीं ठहरेगा. परस्पर विरोध आवेगा. और भगवत ने तो. सवुडा अनगार को स्वप्न देखना कहा है. और सवुडेपने का

भंग भी नहीं कहा है यानी साधूपने में दोप भी नहीं कहा है. बल्कि सूत्रदशा श्रुतस्कंधजी के पचमा अध्ययन में दशप्रकार की भाव धर्म की चित्त समाधि कही. उसमें यथातथ्य स्वप्न तीसरी चित्त समाधि में है. वहां पर ऐसा लेख है कि. श्रमण भगवंत महावीर स्वामी. वाणिज्य ग्राम नगर के दूत पलाश नामा चैत्य यक्षालय. तहां समोसर यानी पधारे. धर्म देशाऽनन्तर भगवंत अपने साधू साध्वी को आमन्त्रण यानी बुला के. कहते भए कि हे आर्यो इस जिनशासन में निश्चय करके साधू साध्वी को दश प्रकार के चित्त समाधि के स्थान उत्पन्न होते है यानी प्राप्त होते है वह साधू साध्वी कैसे कहे कि इरिया समिति वत यानी ३॥ हस्त मार्ग को देखते चले भाषा निरवद्य विचार के बोले. निर्दोष आहार यानी भोजन पान के लेने वाले भंडो पगरण यानी वस्त्र पात्रादिक यत्नसे ग्रहण करे, और स्थापै विष्ठा-मूत्र-श्लेष्म, प्रसेव, नाक का मेल इत्यादिकों को परिष्ठिवन. यानी यत्नसे नाखे (परेठ) कि जिसमें कोई जीव को घात द्वेष, यादुगछा न उपजे मनको सम्यक् प्रवृत्तावे, कायाको सम्यक् प्रवृत्तावै और मन वचन कायाको पापसे गोपके प्रवृत्तावै, पच इन्द्रिय को गोपनहार यानी जितेन्द्रिय नव वाडसहित ब्रह्मचर्य को धारण हारे कूं, यहां तक तो हमने ग्रंथबढने के भयसे सूत्रपाठ का भावार्थ ही लिखा है, अब आगे को सूत्रपाठ अर्थ सहित भी थोड़ासा लिखते है सो चित्त लगाके एकाग्र मनसे श्रवण करिये ॥ सूत्रपाठ ॥

आयट्ठीणं, आयहियाणं, आय, जोइण, आय परिक्कमाण, पखिय, पोसहिये, सु, समाहि, पत्ताणं, झियाय, माणाण

इमाइ, दश, चित्त, समाहि, ट्ठाणाहिं, असमुप्पण, पुव्वाय, सं- मु, पज्जिभा, तंजाहा, धम्मचितावासे, असमुप्पणपुव्वा, सुमु- प्पज्जेभा, सव्व, धम्म, जाणित्तए ॥ १ ॥ सन्निणाणे, वासे, असमुप्पणपुव्वे, समुप्पज्जेभा, अहसरामि, अपणो, पोराणिय, जाती, समारीत्तए, ॥ २ ॥ सुमिण, दंसणे, वासे, असमुप्पण पुव्वे, समुप्पज्जेभा, आहा, तच्च, सुविण पासित्तए ॥ ३ ॥

अस्यार्थः–आयठीण के०) मोक्षनाअर्थी एतले दीर्घ का लनी तिथिना अर्थी.

आयहियाण के०) ३६३ पाखंडी तेहनो सग वर्जवोते आत्माना हेतु,

आयजियोण के०) आतमा ना प्रकाशवत.

आयपरिक्कमाण के०) आतमा सुख भणी प्राक्रम फोरइ एवा प्राक्रमी ।

परिवय पोसहिए के) पक्षी ते अर्द्धमास तिके पक्षी तेह- नो पोसो उपवास करइ धर्म ते पोषे ते पोसो कहिये सुसमाहि, पत्ताण के०) पोसो करवइ भली समाधि पामी छइ तेह नइ क्रियाय, माणाण, के०) धर्म शुक्ल ध्यानना ध्यावणहार इमाइ के०) ए आगलि कहै स्ययंते ।

दश के०) दस सख्या चित्त के०) चित्त ने समाहि ठा- णाइ के०) समाधिथानिक भाव समाधिना थानिक असमु- प्पण, पुव्वाय के०) किवारे पणि अतीत वाले पूर्वइ जीवनइ उपना न थी एतले पाम्या नथी ते ।

समुप्पज्जिभा के०) उपजइ तजाहा के०) तेजीम छै तिम कहे छै पूर्व गुण सहित साधु साध्वी ने धम्म, चिता-

वास. के०) धर्मनी चिंता ते जीव द्रव्य अजीव द्रव्य तेह विषय चिंता जे नित्य छै किंवा अ नित्य छे रूपी छे किंवा अ रूपी छे एहवी चिंता असमुप्पण, पूव्वा, के०) पूर्वइ उपनी न थी तेहनेइ समुप्पज्जेज्झा के०) उपजे तिवारे सव्व, धम्म, जाणित्तए, के०) सर्व धर्म जाणे तिवार परवा दीनाधर्म अ सोभनीक पूर्वा परे विरुद्ध माटे श्री जिन धर्म निर्वाण हेतु जाणे ॥ १ ॥

सन्निनाणे, वासे के०) सम्यक् प्रकारइ जाणे ते संज्ञी पंचेंद्री मन सहित तेहने जाति स्मरण असमुप्पण, पुव्वे, के०) पूर्व उपनो तो नहीं।

समुप्पज्जेज्झा के०) ते जाति स्मरण सम्यक् प्रकारे प्रगट होइ अहसरामि के०) हूं पूर्व भव नै विषइ एहवो हतोते सभारे अप्पणो, पोराणिय, के०) आपणी पाछला भवनी जाती, सारित्तए, के०) जाति नइ पूर्व भव में हु कुण हुतो संभारे ॥ २ ॥

सुमिण, दसणे, वासे के०) स्वप्न नो देखन उते स्वप्न दर्शन जिम भगवतइ भगवती सूत्र शत १६ उ० ६ स्वप्न ना फल कह्या ते हवा यथातथ्य ।

असमुप्पण, पुव्वे, के०) अतीत काले उपनान थी समुप्पज्जेज्झा के०) ते उपजे देखेइ श्रीवीरनी परइ–आहातच्चं, सुविण पासित्तये. के०) यथातथ्य स्वप्न देखै तेह वोहीज फल पामइ ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब हे मित्रों ज्ञान नेत्र खोल के देखो कि यहा सूत्र के मूल पाठ में श्री भगवान् ने अपने साधु साध्वी को बुला के

कहा कि इन जिन शासन के जो निर्दोप चरित्र के पालवेवाले और ज्ञान दर्शन चारित्र की समाधि वाले और धर्म शुक्ल ध्यान के ध्यावने वाले ऐसे महा गुणवान् साधु साध्वी को दश चित्त समाधि के स्थान यानी भाव धर्म प्राप्ति के स्थान जीव को गए काल मे कभी उत्पन्न न हुए ऐसे अपूर्व महा कल्याणकारी उत्पन्न हुए तिन दश चित्त समाधि यानी भाव धर्म की समाधि के स्थान में यथातथ्य स्वप्न का देखना तीसरी चित्त समाधि में श्रीमुख से परमेश्वर ने फरमाया है तो फिर हे भव्य तुम लोग ऐसे यथातथ्य स्वप्न देखने में श्री भगवान को चूक जाना या पाप लगना कैसे कहते हो और पुस्तकों में छपाते हो।

पूर्वपक्ष हमारे का तो हमारे पूज्य जी ने जैसी धारणा कराई है तैसी ही हमने पुस्तकों में छपवाई है

उत्तरपक्ष-हे भव्य अवश्य तुम्हारे पूज्य जी ने ऐसी सिद्धात विपरीत धारणा तुमको कराई होगी परतु तुम लोग पूज्य जी के कपोल कल्पना को ही सत्य मानते हो कि श्री त्रिलोकीनाथ महावीर प्ररूपे सिद्धात को सत्य मानते हो.

पूर्वपक्ष-सत्य तो हम अर्हत प्रभु प्रणीत (प्ररूपे) सिद्धात को ही मानते हैं परतु यह दशा श्रुतस्कध सिद्धात का पाठ हमारे पूज्य जी ने क्या नहीं पढा. जो ऐसे महाकल्याणकारी चित्त समाधी भावधर्म की प्राप्तिरूप यानि श्री भगवान् महावीर प्रभु ने देखे तिन स्वप्नों को मोहकर्म के उदय में और श्री भगवान् को चूक जाने में हमको कैसे सिखाया. शायद हमारे पूज्य जीने इस दशाश्रुतस्कध के सूत्रपाठ की टीका

में कोई दूसरी तरह का अर्थ होवे. उससे हमको धारणा कराई होगी तो क्या जाणिये. क्योंकि हमारे भ्रम विध्वंसन में दशा श्रुतस्कंध की टीका की साक्षी १ महिने की साधू की पडिमा को अधिकार में दी है सो हमको टीका दिखलाओ.

उत्तरपक्ष-हे भाई ग्रंथ बहुत बढ जावेगा तथापि तुम्हारी शंका दूर करने को हम टीका लिखते है सो सुनिये.

टीका—समाहिपत्ताणंति. समाधि प्राप्ताना ज्ञानदर्शन चारित्र रूप समाधिवता. झियायमाणंति धर्म शुक्ल ध्यान ध्याय मानाना इमोइति मानि अनंतर वक्ष्यमाण स्वरूपाणि दश चित्त समाधि स्थानानि. अस मुप्पण पुव्वाइति असमुत्पन्न पूर्वाणि इत्यर्थः समुत्पद्यरन्निति शेषः तद्यथा धम्मेत्यादि सेत्ति निर्दिशे तस्य एवं गुणजातीयस्य निग्रंथस्य. निग्रथ्यावा धम्मचिंतति धर्मोनाम स्वभावः जीव द्रव्याणामजीव द्रव्याणा चतद्विषया चिंता कथरूपा अमीनित्या उतानित्या रूपिण उतारूपिण इत्यादिरूपा. असमुप्पण पुव्वति प्राग्वत्सतयं धर्म ज्ञातु अथवा धर्म चिंता यथा सर्वेकुसमया अशोभना अनिर्वाह का पूर्वा पर विरुद्धाः।। अथसर्वेषु धर्मेषु शोभन तरोय धर्मो जिन प्रणीतः एव रूपा इत्येक १ सणीत्यादि सम्यग् जाना तीति सज्ञः तस्य यत् ज्ञान सज्ञि ज्ञान यथा पूर्वान्हे गा दृष्ट्वा पुनरपरान्हे प्रत्याभिजानीते असौ गौरिति अप्पणेत्यादि माग्वत् अह सरामीति अह स्मरामि अमुकोह पूर्वभवे आस सुदर्शनादिवत् इति ॥ २ ॥

सुमिणेत्यादि स्वप्न दर्शन यथा भगवतो वर्द्धमानस्वामिनः महाप्रमतिपादित स्वप्न फल तथा. अथ स्त्रीं वा पुरुष वा एका मह-

र्ती इय पक्ति आहा तचंति यथातथ्य फल स्वप्न दृष्टु जाति स्मरण आत्मन, पौराणिगकी जातिस्सतु चिंता उत्पद्येत ॥ इति टीका ॥

टीकार्थः–समाधि को प्राप्त अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, रूप, समाधि वाले और धर्म शुक्लध्यान को ध्यान वाले ऐसे मुनियों के अग्रे कथन करेंगे स्वरूप जिनका ऐसे दश चित्त समाधि के स्थान पूर्व नहीं उत्पन्न भये ऐसे वह उत्पन्न होवे ऐसे गुण विशिष्ट जो निग्रंथमुनि और निग्रंथी साध्वी तिनकी धर्म चिंता धर्म नामस्वभाव तिसकी चिंता अर्थात् जीव द्रव्यऔर विशयक चिंता कैसीक चिंता यह जीव द्रव्य अजीवद्रव्य नित्य है कि अनित्यहै, रूपी है कि अरूपी है, इत्यादि रूप चिंता अस मुप्पण पुव्वति. इति पूर्ववत्सत्य धर्म जानने को अथवा धर्मचिंता जैसे जैन अतिरिक्त सपूर्ण कुसमयहै अर्थात् शोभायमान नहीं है. अनिर्वाहक अर्थात् अपने कथन को सिद्ध नहीं कर सके ! पूर्वापर विरुद्ध ऐसे अतः इसी कारण से सपूर्ण धर्मों के विषय जिन प्रणीत धर्म है सो ही शोभायमान है. । १ ।

सणी इत्यादि. सम्यग् जानातीति सज्ञः अच्छी तरह से जो जाणे उसको संज्ञ कहते हैं. तिसको जो ज्ञान उसको सज्ञीक ज्ञान कहतेहै. जैसे प्रातःकाल गौ देख करके फिर साय काल में जानता है कि यह गौ है. अप्पणा इत्यादिक पूर्ववत् में स्मरण करताहू कि पूर्वभव में अमुक में होताभया सुदर्शनादिकों की नाई ॥ २ ॥

सुमिणत्यादि स्वप्न दर्शन जैसे श्री भगवान वर्द्धमान स्वामी का भगवती जी में प्रतिपादन यानि कथन किया तैसे अथ स्त्रीको वा पुरुष को एक बडी घोडों की पक्ति यथ,थ्य

स्वप्न को देखने की जाति स्मरणं अर्थात् अपनी पौराणि की पुनर्भव की जाति को स्मरण कराने को चिंता उत्पन्न करती है.
॥ इति टीकार्थः ॥

अब हे मित्रों! इस सूत्र की टीका भी देखो यहा टीका में तो खुलासा कहा कि महा निर्मल चारित्र के पालने वाले धर्म शुक्ल के ध्यान के ध्याने वाले ऐसे मुनि को दश प्रकार का चित्त समाधि भाव धर्म की उत्पत्ति यानि प्राप्ति होवे तिसमें १ यथातथ्य स्वप्न का देखना सूत्र भगवतीजी का १६ मा शतक के छटे उपदेश में जैसे यथा तथ्य स्वप्न का फल भगवन् वर्द्धमान स्वामी को हूवा तैसे ही यथातथ्य स्वप्न का फल होता है और बड़ी यह घोड़ों की पङ्क्ति आदि देख उनको यथातथ्य स्वप्न कहिये सो अगाडी हम सूत्रों से लिख दिखा वेंगे तो फिर हे मित्रो तुम यथातथ्य स्वप्न को देखता मोह कर्म के उदय में या भगवान् को चूक जाने में कैसे कहते हो

पूर्वपक्ष-ऐसे यथातथ्य स्वप्न को देखने में क्या फल प्राप्ति होवे या क्या आत्मा का कल्याण यानी संसार के जन्म मरण के दुख मिटे ॥

उत्तरपक्ष हे भव्य इस यथातथ्य स्वप्न को देखने से श्रीभगवान् को महा कल्याणकारी संसार समुद्र के तिरणे का फल प्राप्त हुवा है और इसी दशा श्रुतस्कंध के पांचवें अध्ययन मे दशही चित्त समाधि की गाथा बद्ध परूपणा विशेष महत्वता के लिये फरमाई है जिसकी तीसरी गाथा में यथा तथ्य स्वप्न को देखने से जैसा फल होता है।

वैसा सूत्रपाठ से लिखते हैं सो ध्यान लगा के सुनिये

१ चित समाधि भाव धर्मकी प्राप्ति में है यथा

सूत्र-आहातच्च' तु सविण, खिम पासति,सवुडे ससव्वंवा, उहंत रति, दुखा, दोयवि, मुचति ॥ इति ॥

अन्यार्थः—आहातच्च के०- यथातथ्य ते सुविण. के०- स्वमएतलें सफल एहवो स्वप्न । खिप के ' तेतत्कालइ पासति के०' देखइ-सवुडे के०' संवर द्वारनोधनी साधु- सव्व' वाउ, हतरंति के०. सर्वते निरशेष एहवो ओघ कहिए ससार समुद्रनी परे समुद्र अपार एहवा ससार समुद्र नइतरई एतले पुनरपि ससारी न थाय कर्मना अभाव थकी दुखादोय के०' दुख ते शरीरी मानसीथ की विमुचति के०' मुकाइ अथवा विविध प्रकारना दुख थकी मुकाइ ॥ इति सूत्र गाथार्थः ॥

अब देखिये देवानुपिया जी श्री भगवत ने फरमाया कि यथातथ्य स्वप्न के देखने से मुनि ससार समुद्र को तिरे और दुख रहित होवे यह सूत्र के मूल पाठ में कहा. तो हे भव्यों! अब तो विचार लो कि ऐसे मोक्ष फल के देने वाले स्वप्नों को मोह कर्म के उदय में कह के श्री भगवत महावीर प्रभु ने यथातथ्य दश स्वप्न केवल ज्ञान लाभादि के देने वाले देखे, तिसमें तुम परमेश्वर को चूके या पाप लगने का महा भयंकर आल चढा के तीर्थंकर भगवान् की आशातना क्यों करते हो ? भाई ससार का भय होवे तो अब भी छोड दो तथा इस चित्त समाधि की तीसरी गाथा की वृत्ति यानी टीका में भी ऐसा खुलासा है कि ऐसे चरम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी ने दश स्वप्ने देखे और तत्काल फल को प्राप्त हुए और ससार समुद्र को तिरके मोक्ष प्राप्त होने का फल को प्राप्त हुए सो टीका लिखते है सो सुनिये ।

तथा च टीका—अहानचंति यथानथ्यमवि संवादि फल यत्तप्रया तथ्य मित्युच्यते यथा चर्म तीर्थ कृता दश स्वमादृष्टाः क्षिप्रच फलम जनि तथा क्षिप फलदं पश्यति संवृतात्मा निरुद्धा श्रवद्वारः सर्व निरविशेप य शब्दः स्वगतानेक भेद सूचकः ओघ स्तत प्रवृत्त प्रवाह ससार समुद्र मिच समुद्रं अप्राप्य पार एव धि रसनगति न पुनः ससारी भवति दुःख दो यचि दुःखाद्दुः खोत्पाद कर्मणः शरीर मानसिकाद्यानिविधानेक पुकारान्मु ः चते ॥ इति गाथार्थः ॥

अथ टीकार्थः—अवि संवादि जो फल यानी सत्य है फल जिमका उसको यथातथ्य कहते है जैसे चर्म तीर्थकर ने दश स्वप्न देख ओर शीघ्र फल प्राप्त हुआ तथा तैसे ही शी घ्र फल देने वाले ऐसे स्वप्न को देखता है वह कौन है, रोका है आश्रवद्वार जिसने ऐसा पुरुष फैल रहा है प्रवाह जिसमें ऐसा समार समुद्र की सी नाहि समुद्र नहीं प्राप्त है पार जि-सका ऐसे ससार समुद्र को इस प्रकार का मनुष्य तिरता ह फिर ससारी नहीं होता है दुःख का उत्पादन करने वाला जो कर्म अथवा शरीर का मन का दुःख अथवा अनेक प्रकार का सासारिक दुख तिससे मुक्त होता है ॥ इति टीकार्थ ॥

अब देखो यहां टीका में भी श्रीभगवान् महावीर स्वामी जी के दश स्वप्न यथातथ्य महा कल्याणकारी ससार समुद्र का तिरके मोक्ष सुख के दायक कह हैं और तुम तेरे पथी लोग यथातथ्य स्वप्न को मोह कर्म के उदय में या चूक जाने में पाप लगने में कहते हो सो इत्यादि किस सूत्र के टीका अर्थ से कहते हो. हे मिथ्या त्वगीं! अब तो सोचो कि जिस स्वप्न का

फल भगवंत कर्म त्तय और मोक्ष का श्रीमुख से फर्माते हैं. तो फिर इससे ज्यादा लाभदायक क्या फल है सो बुद्धि से विचार के परमेश्वर की आशातना का छोडना उचित है और इसही चित्त समाधि में अपूर्व धर्म १ जातिस्मरण ज्ञान २ यथातत्थ्य स्वप्न ३ देवदर्शन ४ अवधिज्ञान ५ अवधिदर्शन ६ मनः पर्यवज्ञान ७ केवलज्ञान ८ केवलदर्शन ९ केवलमरण १० यह दश बोल कहे हैं, तो फिर दशमें से एक तो बुरा और ९ अच्छा ऐसा कौन बुद्धिमान् मनमानी कल्पना करे. अपितु कभी नहीं करे और श्रीभगवत ने दशही बोलों को भाव समाधि धर्म शुक्ल ध्यान में फुरमाये है वैसेही श्रद्धे और जो अपने गुरुजी ने यथातथ्य स्वप्न चित्त समाधि का सिद्धान्त से विरुद्ध मोह कर्म के उदय में या भगवत को चूक जाने में धराई उसका हिसाब अपने गुरुजी से समझे जो कि ऐसी विरुद्ध धारणा कराई येही बुद्धि पाने का फल है.

पूर्वपक्ष–कदाचित हमारे गुरुजी कहदेवें कि भगवत ने तो स्वप्न देखने से चित्त समाधि होवे. उसकी आज्ञा फुरमाई है. परंतु स्वप्न देखने की नहीं, क्योंकि इस चित्त समाधि में देवदर्शन है तो दर्शन की तारीफही न करी. किंतु देवदर्शन से चित्त में समाधि धर्म की श्रद्धा बढे उसकी तारीफी करी है, आज्ञा दी है।

उत्तरपक्ष–हे भव्य! जो कदाचित् तुम्हारे गुरुजी ऐसा भी कहदेवे कि यथातथ्य स्वप्न की या देवदर्शन की तारीफी भगवत ने नहीं की, आज्ञा नहीं दी. तब तो तुम्हारे गुरुजी अपनी श्रद्धा को आपही नष्ट करनेवाले ठहरेंगे, क्योंकि तुम्हारे गुरुजी की श्रद्धा ऐसी है कि भगवान् की आज्ञा बाहिर कामों में

किंचित्मात्र धर्म पुन्य नहीं होता है संशय होवे तो तुम्हारे गुरु जी कृत हितशिक्षावली में लिखा है सो देखलेना सो गाथा लिखते हैं-जिह कार्यनी केवली आज्ञा नहीं दी कोय। धर्म पुन्य नहि ते हमें हिय विमासी जोय, ॥ १२९ ॥ अब देखो यहां तुम्हारे गुरुजी यथातथ्य स्वप्न को और देवदर्शन को परमेश्वर की आज्ञा बाहिर मानेंगे तो आज्ञा बाहिर कामों में तुम्हारे गुरु जी चित्त समाधि धर्म ध्यान कैसे मानेंगे, कदाचित् अब तुम्हारे गुरु जी यथातथ्य स्वप्न को मोह कर्म के उदय में स्थापना के लिये यथातथ्य स्वप्न को आज्ञा बाहिर कहदेवे तो फिर यथातथ्य स्वप्न से चित्त समाधि धर्मध्यान का लाभ मानने से वह श्रद्धा मिथ्या ठहरेगी कि जो भगवान् की आज्ञा बाहिर किंचित्मात्र धर्म पुन्य नहीं, तथा तुम्हारे गुरु जी कदाचित् ऐसा भी कहदेवें कि हम तो यथातथ्य स्वप्न और देव दर्शन इन दोनों को चित्त समाधि धर्म ध्यान में मानेही नहीं, तब तो तुम्हारे गुरु जी चित्त समाधि के दश बोल में से आठ बोल को ही मानने वाले ठहरेंगे और २ बोल को नहीं मानेंगे तब तो प्रकट जिन वचनों के उत्थापक ठहरेंगे तो फिर जैन वचन के उत्थापने वाले में तो समकित भी नहीं है तो फिर तुम अपने गुरु जी में समकित बिना साधूपना कैसे मानोगे और उनके शिष्य क्योंकर बने रहोगे तो जरा मध्यस्थ पना ग्रहण करके विचारना जी।

पूर्वपक्ष—जैसे यथातथ्य स्वप्न को महत्वता यानी तारीफ श्रीभगवान ने फरमाई है वैसी देवदर्शन की महत्वता सूत्र में है कि नहीं।

उत्तरपक्ष-हे भव्य देवदर्शन की महत्वता भी. श्रीभगवान् ने इसी दशाश्रुतस्कंध में पंचमाचित्त समाधिनामा अध्ययन में फरमाई है सो मूलपाठ से दिखलाते हैं ॥

सूत्रगाथा पत्ताइ, भयमाणस्स विवित्त, सयणासण, अप्प, हारस्स, दंतस्स, देवदंसेति, ताइणो, ॥

अस्यार्थः-पताइ, भयमाणस्स के० अल्पमूलना अथवा जीर्ण तेह नइ मेवे एतले मातना सेवनहार, विवित्त, सयणासण के०, स्त्री पशु पडकर हित तथा जीव रहित सेय्या जीव रहित आसन अप्प, हारिस्स, दंतस्स. के०-अल्प आहार लेणहार नइ इन्द्रीना दमण हारनइदेव, देसेति, ताइणो, के० देवतानो. दर्शन होइ छकायना रख पालनइ॥ ४४॥ सू दशा. अ. पचमा. इति सूत्रार्थ

अब विचारो भाई! इस सूत्र पाठ में देवदर्शन का महत्वता श्रीभगवान् ने श्रीमुख से फुरमाई है, कि जो मुनि आत मात यानी अल्प मोल के वस्त्र पात्रादिकन का सेवन वाला और निर्दृद्ध उपासरा, यानी मकान या पाट पटले आसन के सेवने वाले और अल्प आहार के करने वाले और छ काय जीव की रक्षा करने वाले, ऐसे महामुनि को देवदर्शन होवे यह प्रगट देव दर्शन की महिमा सूत्र में श्रीभगवान् ने फुरमाई है. सो बुद्धिमान् श्रद्ध लेवो कि देवदर्शन भी चित्त समाधि धर्म प्राप्ति के दश बोल में से चौथे बोल में है.

पूर्वपक्ष—सिद्धात में अव्रती को आने जाने की तारीफी अनुमोदना करनी वर्जी है इसहेतु से देवदर्शन की तारीफी क्योंकर होगी—

उत्तरपक्ष—हे भोलेभाई! आने जाने का तो कथन यहां है

ही नहीं, तो फिर तुम विनाही विचारे तर्कना क्यों करते हो. यहा तो देवदर्शन काहीज कथन है. आने जाने का नहीं.

उत्तरपक्ष—आने जाने विना नहीं होवे परंतु आने जाने की प्रशंसा नहीं, देव दर्शन की प्रशंसा है. जैसे साधू को वंदना करने को गृहस्थ लोग कोई पैर से चलके, कोई सवारी करके, कोई स्नान करके आते है, क्योंकि आये विना तो साधू को वंदना होना संभव नहीं होता है, परंतु भगवान् तो महत्वता यानी प्रशंसा, वंदना करने की हीज करी है, परंतु आने जाने की नहीं. सो सूत्र उत्तराध्ययनजी का २९ मा अध्ययन के दशमें बोल में कहा है सो सुनिये.

सूत्र—वंदण एणं, भंते, जीवे, किं जणइ; वंदण एणं, नीया; गोत्तं कम्मं, खावइ, उच्चा, गोयं, कम्मं, निबंधइ, सोहग्ग, चणं, अप्पडिहयं, आणाफलं, निव्वत्तेइ, दाहिण, भावचणं, जणयति. ॥ १० ॥ इति सूत्रपाठः

अस्यार्थ—वंदण एणं, भंते, जीवे, किंजणइ; के० वांदणाआचार्यादि कानी उचित प्रतिपत्ति नइ करीवेकरी हे भगवंत जीव कीसु उपजावइवंदण, एणं, नीया, गोतं, कम्मं, खवेइ, के० गुरु कहइ अधम कुल नइ विषै उत्पत्तिनु हेतु कारण. यहवू नीचे गौत्र कर्म खपावइ उच्चा, गोय, कम्म, निबंधइ, के० अने तीर्थंकर चक्रवर्त्यादिकन उकारण उच्चगौत्र कर्म अतिशय करी बांधइ सोहग्ग, चणं, अप्पडिहय, आणाफलं, निव्वतेइ, के० वली सौभाग्य सर्व लोक नै स्पृहणीकपणु, कोई हणी न सकइ यह वू आज्ञा फल आज्ञा सारपणु निवर्तावइ उपजावइ दाहिण भावं, चणं, जणयति, के० वली दक्षण भाव भाव

पारपरंतु लोकनइ अनुकूल पण उपजावइ ॥ इति ॥ मन्त्रार्थ

अब विचारना चाहिये कि इस सूत्र के मूलपाठ में वंदणा करने से उच्च गोत्र यानी उच्च कुल में उत्पन्न होणे रूप भगवत ने वंदना करणे की प्रशंसा और महत्त्वता फुरमाई है. परंतु आने जाने की नहीं बस इस सूत्र के न्याय को विचार के समझ लेवो कि दशही चित्त समाधि भगवत ने धर्म में कही है. समवायांग सूत्र का दशमा समवायांग में भी बहुत खुलासा है. दशही चित्त समाधि का तो अब यह सिद्धांत का मूलपाठ अर्थ टीका को अच्छी तरह से हृदय में विचार के अपना पूर्वपक्ष यानी हठवाद छोडना अच्छा है जो हे भाइ जैन सिद्धांत की आस्ता होवे तो छोडही देवोगे और याने गुरुजी की कल्पना का ही हठ होवेगा तो अपनी २ इच्छा की बात है. इस असाध्य रोग की दवा तो किसी से ही नहीं बन सकी है ॥ इति ॥

पूर्वपक्ष–हमने पृष्ठ तीसरे की ७६ मी पंक्ति से लेके पृष्ठ चौथा की दूसरी पंक्ति तक लिखा है कि प्रथम तो स्वप्न ही सावद्य कर्म में है. और इससे भी पिशाचों को जीतना और भुजा से समुद्र को तैरना विशेष ही सावद्य कर्म है यह हमारा लेख है इससे हम कहते हैं कि पिशाचों को जीतने से क्लेश और समुद्र तिरने से त्रसा पाणि का मरदहुवा इससे कैसे नहीं चूके. यह तो चूकने का प्रत्यक्ष कथन है

उत्तरपक्ष–हे अल्पज्ञ मित्रो! प्रथम तो यह तुम्हारा लेख तुम्हारे गुरु जीतमलजी से ही अत्यन्त विरुद्ध है क्योंकि जीतमलजी ने तो यथातथ्य स्वप्न को सावद्य नहीं कहे है।

पूर्वपक्ष-अगर हमारे गुरु जीतमलजी यथातथ्य स्वप्न का सावद्य कर्म नहीं मानते तो फिर हमारे गुरु डालचंदजी ने हमको ऐसी धारणा क्यों कराई कि स्वप्न देखना ही सावद्य कर्म है. क्या हमारे गुरु डालचंदजी की श्रद्धा हमारे गुरु जीतमलजी से विपरीत होगई है. जो हमको हमारे गुरु जीतमलजी से विपरीत धारणा कराई.

उत्तरपक्ष-हे मित्रों! तुम्हारे गुरु डालचंदजी की श्रद्धा तुम्हारे गुरु जीतमलजी की श्रद्धा से विपरीत हुई या नहीं तिसको तो तुम बुद्धिमान् होवो तो स्वयं समझ लेना हमतो तुम्हारे हितार्थ के लिये तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने यथातथ्य स्वप्न को जैसा माना है वैसा तुम्हारा ग्रंथ भ्रमविध्वसन से दिखाते हैं ध्यान लगा के सुनिये. भ्रमविध्वसनपत्र ७६ मा पृष्ठ पर लिखा है (टीकाकार पीण इम कह्यों छै संवृत स्येह विसीष्ट तरसंवृक युक्ता अग्राह्या) इहा टीका में पीण इम कह्यो साचो सुपनो देखो तो संवुडो विशीष्ट अत्यन्त निर्मल प्रणाम नो धणी. सवुडो ग्रहणो इहा अत्यन्त निर्मल चारीत्र आश्री सवुडो साचो सुपनों देखे कह्यो. इति भ्रमविध्वसन का लेख.

यह देखो भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने तो माना कि अत्यन्त निर्मल चारित्रवान् मुनि यथातथ्य यानी सत्य स्वप्न देखे तो अत्यन्त निर्मल चारित्रवान् का कार्य तो सावद्य होता ही नहीं, क्योंकि सावद्य यानी पाप कार्य का कर्तव्य अत्यन्त निर्मल चारित्र के पालने वाले को कभी नहीं होवे तो स्पष्ट सिद्ध हुआ कि यथातथ्य स्वप्न का देखना सावद्य कर्म नहीं. तो हे बुद्धिमानो अब जरा विचारो कि तुम्हारे गुरु डा-

लचंदजी की श्रद्धा कैसे हुई जो तुम्हारे गुरु जीतमलजी की श्रद्धा से विरुद्ध तुम को स्वप्न देखना ही सावद्य कर्म में यानी पाप कर्म में और मोहनी कर्म के उदय में धारणा कराया. हे बुद्धिमानो! न्यायवान् होवो, तो ज्ञान नाभ खोल के अच्छी तरह से विचारना. दूसरा यह भी लिखना विरुद्ध है कि भगवत पिशाचों को जीते, क्योंकि सूत्र में तो (राग, महघोर, रूव, दित्तधर, ताल, पिसाय) ऐसा पाठ है यहा तो एक पिशाच को भगवत ने जीता ऐसा लेख है और तुमने पिशाचों यानी बहुत पिशाचों को जीतना लिख दिया, यह जैन सिद्धात से तुमने अति विरुद्ध लिखा, तथा जीतना भी कई तरह का है सिद्धात ठाणाग के चौथे ठाणे का चौथा उद्देश में भी श्री भगवान् महावीरजी के ४०० साधु देवता मनुष्यों की प्रपदा को पराजय करने की अर्थात् जीतने की लब्धिधारी मुनि कहे हैं तो कहो वे मुनि देवता मनुष्यों को जीते तो क्या क्लेश करके जीते कि ज्ञानबल से ?

पूर्व पक्ष-ज्ञानबल से जीते.

उत्तर पक्ष-तो महावीर स्वामी ने भी पिशाच को पराजय किया ऐसा सूत्र में कहा परंतु क्लेश करा ऐसा सूत्र अर्थ टीकादिक कहीं भी नहीं कहा, सो सूत्र से व्यतिरिक्त प्ररूपणा करके भगवान महावीरजी को क्लेश करने का आल देना अच्छा नहीं, भगवत ने तो पिशाच को जीतने का स्वप्न देखा परंतु पिशाच से क्लेश किया ऐसा कथन तो कहीं भी नहीं और यह भी विचारो कि छद्मस्थ पने में पिशाच को जीते, और केवल पने में उसी पिशाच का जीतना यथातथ्य स्वप्न में

कहा और यथातथ्य स्वप्न का देखना चित्त समाधि रूप धर्म ध्यान में है ऐसी अति महत्वता श्रीमुख से कही तो फिर भगवन्त तो महत्वता कहते हैं और तुम चूकना किस भगवान का वचन से कहते हो और सिद्ध करते हो सो जरा बुद्धि से विचारो और समुद्र का तिरना रूप समुद्र का समाधान ऐसे समझना कि कच्चा पानी का सघट्ट नहीं करना भी भगवन्त ने फुरमाया और कारण से नदी उतरने का भी विधिवाद श्रीभगवन्त ने फुरमाया, तो भगवन्त के विधिवाद आज्ञा से साधु भी नदी उतरते हैं और तुम भी सावुतान में कुछ भी दोष नदी उतरने का नहीं गिनते हो, तो फिर प्रत्यक्ष नदी उतरने से कच्चा पानी को उपमर्दन होने में तो तुम साधु को चूकना नहीं कहना हो तो फिर भगवन्त तो स्वप्न में समुद्र तिरे परन्तु साक्षात् समुद्र तिरे नहीं, तो भगवन्त को चूके कहने में कितनी बड़ी आशातना होती है सो सोच के अब भी छोड़ देवो ?

पूर्वपक्ष-नदी का तिरना तो साधू को कारण से है और विधि आज्ञा भी है परन्तु समुद्र तिरणे का क्या कारण है और विधि आज्ञा भी क्या है ?

उत्तर पक्ष-हे मित्रो ! तुमने दश स्वप्नों का फल सहित सूत्रपाठ भगवतीजी का १६ मा शतक का छठा उद्देश में या ठाणांग का दशमा ठाणा से अच्छी तरह से शुद्ध समकितवन्त विद्वान् गुरुमुख से सुना होता तो यह तर्कना नहीं उत्पन्न होती परन्तु खैर अब भी सूत्रपाठ एकाग्रचित्त से सुनिये कि भगवन्त का तिरने का स्वप्न और पिशाच को जीतना रूप स्वप्न का

देखना सार्थक यानी परमार्थ सहित कहा कि निरर्थक कहा है सो सूत्रपाठ लिखते हैं सुनिये ।

सूत्र-जएां, समणे, भगवं, महावीरे, एग, मह, घोररूव, दित्तधरं, ताल, पिसाय, सुविण, पराजिय, पासित्ताण, पडिबुद्धे, तण, समणेण, भगवया, महावीरेण, मोहणिज्जे, कम्मे, मूलड, ग्धातिउ, ॥ १ ॥ जण, समणे, भगव, महावीरे, एगं, महसागर, जावपडिबुद्धे, तणं, समणण, भगवया, महावीरेण, अणादीए, अणवदग्गे, जाव, संसार, कतारे, तिणे इति सूत्रपाठः

अस्यार्थः-जण, समणे, भगव, मह वीरे, एग, मह, घोररूव, दित्तधर, तालपिसाय, सुविणे, पराजिय, पासित्ताण, पडिबुद्धे के जेह श्रमण भगवंत श्रीमहावीर स्वामी एक मोटो भयानक रूप दीप्ति धर ताल पिशाच प्रेत स्वप्न ने विषै जीतो एहवो स्वप्न ने विपे देखी ने जाग्या-तण, समणेणं, भगवया, महावीरेण, मोहणिज्जे, कम्मे, मूलओ, घातिओ, के तेह समान श्रमण भगवत श्रीमहावीरे मोहनीय कर्म मूल थकी घात कीधो ॥ १ ॥ जंण, समणे, भगव, महावीरे, एगं, मह सागर, जाव, पडिबुद्धे, के जेह श्रमण भगवत श्रीमहावीर स्वामी एक-मोटो सागर यावत् प्रति देखी जाग्या, तण, समणेण, भगवया, महावीरेण, अणादीए, अणवदग्गो, जाव, ससार, कतारे, तिणे, के-तेह श्रमण भगवत श्रीमहावीरे जेहनी आदि नहीं तथा जेहनी अत नहीं यावत् संसार कातार तिर्यो ॥ इति सूत्रार्थः ॥

यह सूत्र भगवतीजी और ठाणागजी में एकसाही कथन है इति ।

यहा सूत्र के मूलपाठ में कहा कि श्रीभगवान् पिशाच

को जीते तिस समान मोहकर्म को जीते और जो श्रीभगवान् समुद्र को तिरे तिस समान श्री भगवान् संसार समुद्र को तिर तो हे बुद्धिमानो! जरा विचारो कि जिस स्वप्न के देखने से महाघोर जो मोहकर्म के जितने रूप और महा संसार रूप समुद्र तिरने रूप प्रयोजन है तो फिर इससे ज्यादा क्या कारण यानी परमार्थ श्रद्धने का प्रयोजन होता है सो जरा गंभीर बुद्धि से विचारो और यह भी ख्याल करो कि एक ग्राम नगर या देश में रहने से प्रतिबद्ध का प्रसंग करके चारित्र मलिन होजाताहै इससे चारित्र का निर्मलपना रखने के वास्ते. साधू नदी आदिक उतर करके भी विहार करजाते हैं तथापि भगवन् की आज्ञा को उल्लंघन नहीं करते हैं और अन्यथा विना कारण से साधु एक बिंदुमात्र भी अपकाय की उपमर्दना करे तो सूत्र नसीथ जीका १२ मा उद्दश का ६ सूत्र में लघु चातुर्मास प्रायश्चित्त कहा है. तो विचारना चाहिये कि थोडी सी भी चारित्र की शुद्धि के वास्ते साधू नदी उतर जायतो दोष नहीं, तो फिर मात्र स्वप्न में समुद्र तिरने से ससार समुद्र को तिरजाय और मोक्ष का लाभ होवै उस परमार्थक स्वप्न को देखने में पाप लगना या चूक जाना कहना कौन बुद्धिमान् का काम है, हां अन्यथा अपकाय का सघट्टा से चारित्र विराधना होती है. तैसे ही यथातथ्य स्वप्नके सिवाय विकलरूप जजाल में विराधना होती है परतु भगवत जिस स्वप्न की महत्वता फुरमाई और प्रशंसा करी उसमें किसी तरह से दोष सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्ष–क्या आप नहीं जानते हो कि आवश्यक सूत्र में पगाम सिझाय की पाटी में (सुयण, वत्तियाए) ऐसा पाठ है.

इसमें प्रकट स्वप्न निद्रा में देखा होय तो मिच्छामि दुकड इसी पाटी के अन्त में है तो फिर स्वप्न देखना अच्छा यानी श्रेष्ट कैसे होवे.

उत्तरपक्ष–हे भोले भाइयों! इसका अर्थ तुमने अच्छी तरह से जाना. मूलपाठ में भी तुम्हारी दृष्टी नहीं पहुंची परंतु हम तुम्हारे हितार्थ के लिये सूत्र पाठ सहित लिखते है सो सुनिये ॥

सूत्र–आउल, मउलाए, १ सूयण, वत्तियाए, २ इत्थि, विप रियासियाए, ३ दिट्ठी, विपरिया, सियाए, ४ मण, विपरिया, सियाए, ५ पाण, भोयण, विपरियासियाए,-इति ॥

अस्यार्थः—इस का टबा से भावार्थ ऐसा है कि भोग से आकुल व्याकुल चित्त विभ्रमहीं १ स्वप्नमाइ अनेक विध जजाल देखवे करि २ स्वप्नमां माही स्त्रीके भोगों की वाछा ३ स्त्रीका स्नेह स्वप्नमाहि उत्पन्न होवे यानी सस्नेहरूप नजर स्वप्न में हुवे ४ स्वप्नमाहि चो विहार उपवास में वस्तु भोजन पान करना. अकल्पनीक वस्तु खाना पीना. यह पूर्वोक्त वार्ता स्वप्न में होवे. उसको सुयण, वत्तियाए ऐसे कहते हैं यह टवे का भावार्थ लिखा. अब टीका का भावार्थ सक्षेप से लिखते हैं. प्रथम ज्यो लिखे सूत्र के ६ पद हैं तिनमे आदि के २ पद यानी आउल, माउलाए, सूयण, वत्तियाए. इन दो पद की व्याख्या पीछे है और पीछे के चारपद यानी इत्थि, विपरियासियाए, १ दिट्ठी विपरियासियाए. २ मण, विपरियासियाए, ३ पाण, भोयण विपरियासियाए, ४ इन चारपद की व्याख्या पहिले है.

इससे व्याकरण के नियमानुसार अच्छी तरह से अर्थ होता है (इत्थि, विपरियासियाए) साधू को स्त्री नहीं सेवने योग्य है उसको सेवने के भावसे विपरियासिया, कहिए १ (दिट्ठि, विप्परियासियाए) स्त्रीका विपरीत पना करके दृष्टि विपरीत होय है.

(मण, विपरियासियाए) दृष्टि विपरीत होने से मन विपरीत होता है मन स्त्री में नहीं रखणा. रखणेसे विपरीत होय है. ३ (पाण, भोयण, विपरियासियाए,) जो मन की विपरीतता सु नहीं विपरीत होवे तो उस विपरीतता करके पान भोजन मे विपरीत होय है. रात्रि में अथवा दिन में अकल्पनीक या एक भक्त से अधिक या उपवास में भोग लिया तो पाण, भोयण, विपरीयास हुवा (सूयण, वत्तियाए) यह पूर्वोक्त काम नहीं करने योग्य स्वप्न में करलेवे उसको स्वप्नवृत्ति यानी सूयण वत्तिया कहते है ५ (आउल, गाउलाए) अति आकुलता करके साधु स्वप्न में काम भोग पर आकुला करे ऐसा मन स्वप्न में होवे उसको मिच्छामि दुकडा है इति

इसकी मूलटीका आवश्यक जी सूत्र में देखलेना हमने यहां ग्रंथ गौरव के भय से सन्क्षेप से भावार्थ लिखा है अब बुद्धिमान् पुरुषों विचारो कि टीकाकारजी और टबाकार जी स्पष्ट रीति से लिखते हैं कि विपरीत काम का स्वप्न यानी स्त्री आदिक का संसर्ग करने से मिच्छामि दुकडा हैं तथा तुम्हारे भ्रमविध्वंसन में भी इस विषय का ऐसा अर्थ किया हैं.(सुयण वत्तियाए) कहता सुपना में जंजालादिक देखवे करी तथा आगलकह्यो (पाण भोयण, विपरियासियाए) कहता सुपना में पाणी नो पीवो भोजन नो करवो ते अतिचार नो मिच्छामि

दुकडो॰ इहां स्वपना जंजालादिक जूठा साधू ने आवता कहा है इति–

भ्रमवि-वसन का पन ७६ ओली ३॥

बस ! यह लेख देखके विचारना कि यथातथ्य स्वप्न का भगवतने किसी सिद्धांत में प्रायश्चित्त नहीं कहा है बल्कि समवायाग भगवती, स्थानाग दशाश्रुतस्कन्ध मे यथातथ्य स्वप्न की भगवतने प्रशंसा और संसार समुद्र तिरने का फल कहा है भावधर्मरूप चित्त समाधि मे यथातथ्य स्वप्न कहा ओर हे बाल मित्रो ! तुमने स्वप्ने को एकांत सावद्यकर्म में कह दिया. वाहरे मित्रो ! तुम्हारा भोला पन, तुमने प्रत्यक्ष प्रमाण का भी कुछ ख्याल नहीं किया कि प्रत्यक्ष में कईक साधू श्रावक समदृष्टि को ऐसे स्वप्न भी आते है कि स्वप्न में गुरु महाराज का दर्शन किया. और गुरु महाराज का व्याख्यान सुना, किसीसाधू ने स्वप्न में स्वाध्याय किया किसीने नोकारगुणा, कहो भाई यह कार्य सावद्य है कि निरवद्य है

पूर्वपक्ष–गुरु महारज का दर्शन करना, स्वाध्याय करना, नवकार स्मरण यह कार्य तो निरवद्य है

उत्तरपक्ष–तो हे भाई ! तुम तेरे पंथियों ने ऐसा क्योंकर लिख दिया कि सब स्वप्न सावद्य कर्म है. अफसोस २ है कि ऐसी प्रत्यक्ष बात का भी तुमको ज्ञान नहीं हुवा, तो फिर सिद्धांत की बात को क्योंकर समझ सकोगे और समुद्र तिरना पिशाच का जीतना, सावद्य कर्म कहते हो तो साधू का नदी उतरना, साध्वी जल में डूबती हुई को काढ लावे, यह सूत्र ठाणाग ५ मा उस दूसरा में कहा तो, तो कहो भाई यह प्रत्यक्ष

जल की उपमर्दन का कार्यनिरवद्य कहते हो कि सावद्य? अगर कहोगे कि इन कामों की सूत्र मे आज्ञा है. इससे निरवद्य है तो विचारो कि सूत्र में तो विधिवाद आज्ञा है. कि साधु कारण से नदी उतरे तो इस तरह से उतरना परतु अवश्यमेव नदी को उतरनी ही चाहिये ऐसी आज्ञा नहीं. और चित्त समाधि को तो अवश्यमेव प्राप्त करने की सूत्र मे श्रीभगवान ने एकात आज्ञा फरमाई है. सो हमने ऊपर सूत्र के मूलपाठ से लिखा है. और यथातथ्य स्वप्न का देखना, चित्त समाधि को श्रीमुख से कहा है और हमने सूत्रके मूलपाठ से लिखदिया है सो समझ लेवो. भाई कि प्रत्यक्ष नदी उतरने से साधु को विराधिक पना नहीं हो यथातथ्य स्वप्न को देखना तो भावधर्म चित्त समाधिका कार्य है तो ऐसे उत्तम कार्य में तो चारित्र का विराधना या चूक जाना मुनि को होवे ही कैसे. अपितु, कभि नहीं होवे. चेतो चेतो चेतो. अब भी सूत्र वचन श्रद्धो यही आत्मा का कल्याण है. इति तजो हठवाद भजो अप्रमादं ॥ १ ॥

इतना सिद्धात का पाठ सहित हमने खुलासा भव्य प्राणियों के हितार्थ के लिये किया है तथापि दश स्वप्न का फल सहित पाठ सर्व भव्यों के लिये या जिनका भगवत के स्वप्न देखने में चूक जाने की शका है उनके लिये विस्तार से सूत्रपाठ लिखते हैं

सूत्र ॥ जणं, समणे, भगवं महावीरे' एग, मह, घोररूवं, दित्तधर, तालपिसाय, सुविणे, पराजिय. पासित्ताण, पडिबुद्धे, तण, समणे, ण, भगवया, महावीरेण, मोहणिज्जं, कम्मे, मूल उग्घातिउ. ॥ १ ॥

जण, समणे, भगवं, महावीरे, एग, महं, सुक्किलं, जाव, पडिबुद्धे, तण, समणे, भगव, महावीरे, सुकज्झाणो, वगए, विहरइ ॥ २ ॥

जंण, समणे, भगव, महावीरे, एग, महं. चित्तविचित्त, जाव, पडिबुद्धे, तण, समणे, भगव, महावीरे, विचित्त, ससमय, परसमय, दुवाल, सगं गणिपिडग, आघवेति, पणवेति, परुवेइ, दसेई निदसेइ उवदंसेइ, तजहा, आयार, सूयगड, जाव, दिट्ठिवाय ॥ ३ ॥

जणं, समणे, भगवं, महावीरं, एग मह दानदुगं, सव्वरयणामयं, सुविणे, पासित्ताणं, पडिबद्धे,, तण, समणे, भगव, महावीरे, दुविहे धम्मे, पणवेइ, तजहा, आगार, धम्मवा. अणगार, धम्म, वा, ॥ ४ ॥

जण, समणे भगवं, महावीरे, एग. मह, सेयं, गोवग्ग, जावपडिबुद्धे, तणं समणस्स, भगवउ, महावीरस्स, चाउणाइ, समणसंथे, पणेत्त, तजहा,–समणाउ, समणीउ, सावियाउ, सावियाउ ॥ ५ ॥

जण, समणे, भगव, महावीरे एग, मह, पउमसरं. जाव पडिबुद्धे, तण, समणे, जाव महावीरे, चउव्विहे, देवे, पन्नवेइ, तंजहा भवणवासी, वाणमंतर, जोइसिए, वेमाणिए, ॥ ६ ॥

जण, समणे, भगव. महावीर. एग, मह सागर, जावपडिबुद्धे, तण समणेण भगवया महावीरेण अणादीए अणवदग्गो, जाव ससार कंतारे तिणे ॥ ७ ॥

जण, समणे, भगव, महावीरे, एग मह, दिणयर, जाव-

पड़िबुद्धे, तंणं समणस्स भगवउ, महाविरस्स, अणंते अणुत्तर जाव केवल वरणाण दसणे, समुप्पण ॥ ८ ॥

जण समणेण जाव वीरेण एग मह हरिय वेरुलिय जाव पड़िबुद्धे तण समणस्स भगवउ महावीरस्स उराला कित्तिवण सद्दसिलोयास देव मणुया सुरे लोगे, परिभवन्ति, इति, खलु० समणे भगव, महावीरे इति खलु० २ ॥ ६ ॥

जए, समणें, भगवं, महावीरे, मदिरे, पव्वए, मंदिर, चूलियाए, जाव, पडिबुद्धे, तंण, समणे, भगव, महावीर, सदेव, मणुया, सुराए, परिसाए, मज्झगए, केवली, धम्म, आघेवइ, जाव, उवद, सेइ, ॥ १० ॥ इति सूत्रपाठ : ॥

सूत्र ठाणाग का दशवा ठाणा का यह पाठ है. और भगवती जी का १६ मा शतक का छठा उद्देश में भी ऐसा ही पाठ है. इसका अर्थ सुगमही है. तथापि सक्षेप से लिखते है.

जो भगवत स्वप्न में पिशाच को जीता. तिस समान भगवत ने मोहकर्म को घात किया ॥ १ ॥ अरु जो भगवत उज्वलपखवाला कोकिल पक्षी स्वप्न में देखा. तिस समान भगवत शुक्ल ध्यान में अरूढ हो के विचरे ॥ २ ॥ अरु जो भगवत चित्र विचित्र पखवाला कोकिल पक्षी स्वप्न में देखा. तिस समान भगवत ने विचित्र स्वसमय के पर समय के भाव यानी कथन सहित द्वादश अगरूप आचार्य की सिद्धात की पेटी प्ररूपी. आचाराग से ले के यावदृष्टि वाद पर्यत ॥ ३ ॥ अरु जो भगवत एक रत्न की माला का युगल यानी जोडा स्वप्न में देखा तिस समान भगवत ने दो प्रकार का धर्म प्ररूपा आगार धर्म, और अणगार धर्म ॥ ४ ॥ अरु जो श्रमण भगवत ने

गोवर्ग यानी गायें का यूथ देखा. तिस समान भगवंत ने आकीर्णज्ञानादि गुण करके युक्त ४ वर्ण श्रमण संघ सरूपै साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका, ॥ ५ ॥ अरु जो भगवत १ मोटा पद्म सरोवर स्वप्न में देखा. तिस समान भगवत चार जाति के देवता सरूपे भवणपति वाणमत्रा, ज्योतकी, विमाणिक. ॥ ६ ॥ अरु जो श्रमण भगवंत महावीर जी एक मोटा समुद्र अनेक कल्लोलों से संकीर्ण को भुजा से स्वप्न में तिरे. तिस समान भगवत अनादि अनत दीर्घ चतुर्गति रूप महाअर्णव यानी संसार समुद्र को तिरे ॥ ७ ॥ अरु जो भगवत एक मोटा दिन कर यानी सूर्य करणों करके देदीप्यमान स्वप्न में देखा तिस समान भगवत को जिसका अत नहीं, प्रधान ऐसा केवल ज्ञान अरु केवल दर्शन उत्पन्न हुवा ॥ ८ ॥ अरु जो भगवत एक मोटा वैडूर्य रत्नमय मानसोत्तर पर्वत को अपनी आंता से एक वीरवीटा, अनेक वीरवीटा, ऐसा स्वप्न देखा तिस समान भग वत की उदार प्रधान तीन लोक में कीर्ति फैली ॥ ९ ॥ अरु जो श्रमण भगवत महावीर स्वामी, एक मोटा मेरुगिरि तिसकी चूल का ऊपर सिंहासन पर आप बैठे हुए स्वप्न देखा तिस समान भगवत देवता मनुष्यों की प्रषदा में बैठके धर्मोपदेश देते भये. ॥ १० ॥ इति सक्षेप स्वप्नार्थ. अब विचारो २ बुद्धि मानों की भगवत के स्वप्न में देखने में कैसा महत्वता की श्लाघा और प्रधानता है कि जिन स्वप्नों को रात्रि के विषे देखै और दिन में केवल ज्ञान को प्राप्त हुए है क्योंकि सूत्र के पाठ में कहा कि छद्मस्थपने की छेली रात्रि में ऐसे ऊपर लिखे मुता बिक केवल ज्ञानादि महत्व फल का महास्वप्न आये हैं तो है

भाइ! अबतो चेत जावो,चेतजावो,सूत्र में, टीका में,अर्थ में,भगवत के स्वप्न मोहकर्म मे या चूक जाने में कहीं भी नहीं कहा है, तो हे मित्रो यथातथ्यस्वप्न को देखने से भगवत को चूक जाने कहने रूप महापाप से बचजावो यह हमारा हितपूर्वक नम्रता से चेत कराना है।

पूर्वपक्ष—क्या यथातथ्य स्वप्न देखने से संसार समुद्र को तिर जाय और तिर जाय तो फिर सयम लेने का क्या प्रयोजन है.?

उत्तरपक्ष—भाई यथातथ्य स्वप्न में समुद्रादि तिरने से संसार समुद्र भगवत तिर गए. ऐसा कथन मूल पाठ से दिखा चुके और अर्हत गणधरजी महाराज जिस बात को कह चुके तो फिर सिद्धात का मूल पाठ को छोड के विपरीत बात को बुद्धिमान् तो कभी नहीं उठावे. और सयम लेने का क्या प्रयोजन है यह भी भोले भाई का विपरीत तर्क है क्योंकि प्रथम तो हम ऊपर कथन ही कर आए है कि सूत्र दशाश्रुतस्कध के पंचमे अध्ययन में वैसे गुणवत साधु साध्वी को वैसा स्वप्न आता है और जो सामुद्रादि तिरने का यथातथ्य स्वप्न देखेगा वह निश्चय सयम लेवेगा और संयम लेवेगा वह ही स्वप्न वैसा देखेगा दूसरा सामान्य पुरुष या स्त्री वैसा स्वप्न नहीं देखेगा सो फिर हम तुम्हारे हित के लिये सूत्र भगवती जी का शतक १६ मा उदेश छठा में स्वप्न का माहात्म्य चला सो लिखते हैं. स्त्री वा पुरुष स्वप्न के मध्य में घोडों की पक्ति हस्तियों की पक्ति देखता हुआ उनके ऊपर चढा ऐसा अपने आत्मा को माने यानी उसके ऊपर चढगया ऐसा देख

के तत्काल जाग जावे तो वह उसी भव में मोक्ष जावे १ ऐसे ही कोई पुरुष या स्त्री स्वप्न में एक रस्सी पूर्व पश्चिम में लंबी दोनो तरफ समुद्र मे फसी ऐसी देखके उसको इकट्ठी करे. इकट्ठी मैने करली ऐसी निश्चयता देख करके उसी क्षण में जागे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे २. ऐसे ही स्वय रस्सी को छेदता देखे. यानी रस्सी का मैने काट डाली एसा स्वय देखे वह भी उसी भव में मोक्ष जावे ३. ऐसे ही पच वर्ण का सूत्र को उखेले सुल जाय ऐसा स्वय देखे तो वह उसी भव में मोक्ष जावे ४. ऐसे ही लोहे तावे तरु वा शीसा इनकी राशि को देखे उनपर चढा हुवा माने यानी उनपर मैं चढगया ऐसा स्वप्न देखे वह दो भव करके मोक्ष जावे ५ ऐसे ही सुवर्ण रूपा. रत्न वज्र इनकी राशि पर स्वय चढा हुवा स्वप्न दखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ६. ऐसे ही घास काष्ठ, गोवर इनकी राशि को और कचेर की राशि को विखेरी हुई देखे यानी पूर्वोक्त राशि को मैने विखेर डाली ऐसा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ७ ऐसे ही अनेक प्रकार के स्तभ को मेने उखाड डाले ऐसा स्वप्न देखे वह उसी भव में मोक्ष जावे ८ ऐसे ही दूध दधि घृत. मधु इनके घडे को स्वय तोडा हुवा स्वप्न में देखे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे ९ ऐसे ही मदिरा का घडा चर्बी का घडा उनको स्वय फोडे ऐसा स्वप्न देख वह पुरुष दो भव से मोक्ष में जावे १० ऐसे ही पद्मसरोवर फूलों से छाया हुवा आप तिरा ऐसा स्वप्न देखे वह पुरुष उसी भव में मोक्ष जावे ११ ऐसे ही एक मोटे सरोवर में सकडों कल्लोलों सहित स्वप्न में देखे

कि मै यह समुद्र तिर गया वह पुरुष उसी भव मे मोक्ष जाव इत्यादि विस्तार से देखना होवे तो सूत्र भगवती जी का शतक १६ मा उद्देश छठा में मूल पाठ में देखलेना अब विचारो कि यह ऊपर लिखे स्वप्न स्वयं अर्हत प्रभु ने फुरमाये हैं तो फिर सिद्धात की वात को ठेल मनमानी आकवाक तर्कना करनी कि यथातथ्य स्वप्न में समुद्र को तिरजाने स संसार समुद्र को तिर जावे तो संयम लेनेका क्या प्रयोजन हैं ऐसी तर्कना करनी बुद्धिमान् की नहीं है इसलिये वहुत कहने का यही प्रयोजन है कि वीतराग कथित वचन ही सार श्रद्ध लेवो कदाचित् तुह्मारे को ऐसी शंका उत्पन्न होवे कि स्वप्न में तो स्त्री का ससर्ग भी हो जाता है, तो फिर स्वप्न देखना मोहनी कर्म में क्योंनहीं, तिस शका का समाधान सूत्र में ऐसे है कि सूत्र अनुयोगद्वार में चक्षु दर्शन, अचक्षुदर्शन. अवधि दर्शन का देखना भी क्षयोपशम भाव में कहा है, तथा पाचो इन्द्रिया क्षयोपशम भाव में अनुयोगद्वार जी में कही है. सूत्र (खउ, समिया, इदियाइं) इति. तथा तुह्मारे तेरे पंथियों के वनाए नवरत्न के १३ द्वार तिसका नवद्वार में ५ इन्द्रिय, और ३ दर्शन, क्षयोपशम भाव में माने है पृष्ठ ४४ पुस्तक न. १ पै है. वैसे ही स्वप्न दर्शनभी, नंदी जी सूत्र के मूलपाठ में नो इन्द्री मतिज्ञान का भेद कहा है सो क्षयोपशम भाव में है और जैसे नेत्र को देखना तो क्षयोपशम भाव में है और जो स्त्री आदि को देख के मन में विकार होवे वो विकार का भाव मोहकर्म का उदय भाव में है. वेसेही स्वप्नका दर्शन भी क्षयोपशम भाव में है परतु स्त्री आदिक का ससर्गताकी विकलता मोह कर्म के

दय में है. परन्तु स्वप्न दर्शन मोह कर्म का उदय कोई सिद्धात नहीं कहा है. बस इतने लेख का साराश यह है कि स्वप्न मोह कर्म में नही.अपितु क्षयोपशम भाव में है. और नोइन्द्रिय मतिज्ञान का भेद में है. सो सूत्र से सिद्ध किया. और स्वप्न देखने से भगवत को चूकना कोई प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है. और बहुत सिद्धात पाठ से सिद्ध कियाहै सो सज्जन पुरुष समदृष्टि से समझ लेना इति स्वप्न का यथार्थ निर्णयः ॥

पूर्वपक्ष–हमने और भी कारण चूक जाने के विषय के प्रश्नोत्तर के पृष्ठ पहिले मे कहे हैं. प्रथम प्राणातिपात जीव की हिंसा करलेवे १ दूसरा मृषावाद झूठ बोल लेवे २ तीसरा चोरी कर लेवे ३ चोथा शब्द. रूप. रसगध स्पर्श. में रतिभाव मान लेवे ४ पाचवा पूजा श्लाघा में हर्ष लावे. ५ छटा सावद्य आहारादिक भोग लेवे. ६ सातवा प्ररूपणा के अनुसार नहीं चले. ७ इन सात बोलों से साधू छद्मस्थ कहा जाता है) यह हमारा लेख है और भगवत भी छद्मस्थ थे चूक जावे उसमें क्या आश्चर्य है.

उत्तर पक्ष–हे अल्प बुद्धिवाले मित्रों तुम्हारा प्रथम कारण स्वप्न देखने से ही चूकना किसी सिद्धात से सिद्ध नहीं हुवा तो दूसरा तो होवे ही कहा से तथापि हम तुम्हारे हित के लिये उसका भी उत्तर लिखते है ध्यान लगा कर सुनिये. प्रथम तो हमारा पूछना भगवत महावीर स्वामी का था, और तुमने छद्मस्थ का चूक जाना बतलाया और भगवत को चूक जाना ठहराया. पर ऐसे तो किसी बुद्धिमान ने किसी साधू महा पुरुष भगवत की आज्ञा मे चलने वाले के गुण वर्णन किये कि यह

संत पुरुष है. झूठ बोलना चोरी करना आदिक दोष इन में नहीं है. और इनमें चोरी झूठ की सिद्धि भी कोई नहीं कर सक्ता है. क्योंकि सत होने से. तब कोई एक साधू का द्वेषी बोला कि झूठ बोलने की चोरी करने की सिद्धि कैसी नहीं होती है. क्योंकि झूठ बोलना चोरी करना छद्मस्थ मनुष्य का स्वभाव है और यह भी छद्मस्थ है. इससे झूठा और चोर है वैसे ही तुम्हारा लेख हैं कि जो छद्मस्थो का सात कारण बतलाके परमेश्वर को चूक जाना कहना यह अत्यन्त अनुचित है. फिर इस विरुद्ध लेख से तो अनंत पुरुषों की आशातना होती है क्योंकि अनत तीर्थङ्कर भगवान् दीक्षा ले के पश्चात् छद्मस्था में रह के पीछे केवली हुए हैं तो इस तुम्हारे गोलमाल लेख से तो क्या वे सब चूके. या अनतमुनि जिन आज्ञा के आराधिक छद्मस्थ हुए है तो क्या वह भी चूके या तुम्हारे माने हुए भीषमजीसे ले के आज तकके तुम्हारे गुरु को तुम साधू मानते हो और वह सर्व छद्मस्थ है तो उन सर्व को तुम झूठ बोलने वाले या चोरी करने वाले श्रद्धते हो कि नहीं. अगर तुम उन अपने गुरु को झूठ बोलना आदि पाप के करने वाले श्रद्ध लेवोगे तब तो तुम को छद्मस्थ को साधु ही मानना नहीं पडेगा.

क्योंकि तुम्हारा गुरु की यह श्रद्धा है कि एक दोष लगावे उसको भी साधु नहीं कहना. गृहस्थी समान कहना. और तुम ने लिखा कि हिंसा झूठ चोरी आदिक सात बोल के सेवने वाले को ही छद्मस्थ कहना तो फिर तुम्हारे गुरु तो सर्व छद्मस्थ हैं तो इन सर्व को हिंसक झूठा चोर आदिक

पापी ही तुमको मानने पडेंगे तो फिर तुम्हारे छद्मस्थ गुरु जी को साधु केसे मानत हो. सो तुम तेरे पथीजीजरा मध्यस्थता से विचार लीजियेगा और सर्व छद्मस्थ मुनि को तुम सात बातों के सेवने वाले या चूक जाने वाले मानोगे तब तो तुम को एक श्री महावीर प्रभु जी को छद्मस्थ अवस्था मे चूके मानने मे फिर तुम को ऋषभदेव जी आदिक तेईस तीर्थंकर परमेश्वर भी छद्मस्थ अवस्था में रहके पीछे केवल ज्ञान पाए है तो उनको भी छद्मस्थ अवस्था में तुम को चूके श्रद्धन पडेंगे अगर फिर मतपक्ष के लिये ऐसी विपरीत श्रद्धा करके सर्व छद्मस्थ तीर्थंकर भगवान् को चूके मान लेवोगे तब तो तुम सर्व तीर्थंकर भगवान् की आशातना करणे के भागी बनने से अनत ससार में परिभ्रमण करने रूप और दुर्लभ बोधरूप महा मिथ्यात्व मोहनी कर्मबन्ध को हासिल करने वाले ठहरोगे सो जरा जन्म मरण का भय होवे तो तुम तेरेपथी विचारना.

पूर्वपक्ष–जब सात प्रकार से छद्मस्थ जानना ऐसा सूत्र ठाणाग जी में कैसे कहा ?

उत्तरपक्ष–भाई सिद्धात के वचन तो अनेकांत और सापेक्ष है सो सिद्धात का आशय तो यह है कि यह सात कार्य छद्मस्थ को लागे परन्तु केवली को नहीं तो जो छद्मस्थ हिंसादिक करे उसको उस पाप का भागी कहना. परतु सर्व छद्मस्थ मुनि पूर्वोक्त सात कार्य के कर्ता नहीं सो हम तो ठाणाग जी के वाक्य को ऐसे श्रद्धते है और तुम को भी ऐसे हीज श्रद्ध के श्री भगवान् महावीर जी की आशातना छोडनी

उचित है नहीं तो तुम्हारा श्रद्धा से छद्मस्थ पन में साधुपना ही नहीं ठहरेगा सो विचार लीजियेगा

पूर्वपक्ष–हम ने प्रश्नोत्तर के तीसरे पृष्ठ की पहली पङ्क्ति से ले के २५ मी तक लिखी है तिसका मतलब यह है कि श्री गौतम स्वामी जी महाराज आनंद श्रावक को अवधिज्ञान विषय का उत्तर देने में चूके है विचारियें जैसे केवल ज्ञान से प्रथम श्री भगवान् में ४ ज्ञान थे और गौतम स्वामी ४ ज्ञान छते चूके है तो वैसेही श्री भगवान् के भी छद्मस्थपने में चूक जाने का असंभव नहीं यह हमारा लेख है इसका प्रत्युत्तर क्या है.

उत्तरपक्ष–हे मित्र यह तुह्मारा लेख विभ्रम है. क्योंकि गौतम स्वामीजीका खलाने का दाखला देके श्रीभगवान् को चूके कहना अति अज्ञानता का काम है. क्योंकि गौतमस्वामी जीको और श्रीभगवानका सदृशपना नही है सो देखो श्री भगवान तो देवलोक से चवके गर्भमें आये तहाभी तीन ज्ञान सहित आये. और दीक्षा लेतेही चौथा ज्ञान उत्पन्न हुवा वैसे गौतम स्वामीको दिक्षा लेने से चौथाज्ञान उत्पन्न नहीहुवा और ३ ज्ञान सहित गर्भ में भी नहीं आये और भगवान तो कल्पातीत और गौतमस्वामी स्थिवर कल्पी. तथा भगवान तो स्वयंबुद्धि और गौतमस्वामी भगवानके उपदेश से बोध पाये. इत्यादिक श्री भगवान के और गौतमस्वामीजी के बहुत विषय का फर्क है सो गौतमस्वामीजी के खलनाने से श्रीभगवान को चूके कहना. महामिथ्यात्व का प्रताप है तथा यहभी विचारो कि प्रथम तो गौतमस्वामीजी आनन्द श्रावक को उत्तर

देने मे खलना पाये तभी भगवतने उनको खलना बतलाई परन्तु गौतम स्वामीजी की खलना से श्रीभगवत को खलना किस पाप से बताते हो. क्या यह नियम है कि एक ४ ज्ञानवाला खलना पावे तो वैसे सर्वही ४ ज्ञानवाले खलनापावे इस गोलमाल लेख से तो पूर्वोक्त छद्मस्थ का समुच्चय कथन से भगवन्त को चूक जाने कहने में जो दोष आते है. वैसे यहा भी आते है सो यह कहना बिलकुल अनुचित् है क्योंकि गौतमस्वामीजी को तो आनदका सम्बध से खलना होने से ही खलना कहा है परतु श्री भगवान में तो कोई खलनाका कारण किसी सूत्र में नहीं है तो फिर तुम क्योंकर छातीचलाकर परमेश्वर दोष ठहराते हो और स्वप्नको कारण बतलाया वह तो बिल्कुल जैनसिद्धान्त से विरुद्ध है सो हम ऊपर अच्छी तरह से सूत्रपाठ सहित खुलासा कर चुके है.

पूर्वपक्ष—स्वप्नके सिवाय औरभी तीन कारण हमने भगवत के प्रश्नोत्तर के चोथे पृष्ट की तीसरी पंक्ति से लेकर १३ पक्ति तक लिखे है कि

(ख) श्री भगवान महावीर स्वामी ने गोशाला को दीक्षादी यह वार्ता भगवती सूत्र के १५ में शतक में हैं

(ग) और श्री भगवान महावीरस्वामी ने गोशालाको तिलका छोड बतलाया. और उसने भगवतके वचनको असत्य करने के लिये उखेड डाला यह वार्ता सूत्र भगवतीजी का १५ शतक में है.

(घ) श्री भगवान ने तेजु शीतल लेश्य प्रगट करके गोशाले को बचाया. और लेश्या फोरने में जघन २ उत्कृष्टी

५ क्रिया कही है यह वार्ता सूत्र पन्नवणाजीके ३६ मा पदमें इस कारण हम भगवत को चूके कहतें हैं.

उत्तरपक्ष–भगवतनें गोशाले को दीक्षादी इसमें क्यापाप हुवा सो भगवतको चूके कहते हो.

पूर्वपक्ष–जो गोशाले को दीक्षा नहीं देते तो २ साधु की घात नही होती, और भगवतपर तेजुलेश्या भी गोशालानहीं मेलता और मिथ्यात्व भी नही चढता तो सर्व काम ऐसे अयोग्य को दीक्षा देने से हुए इससे चूके हैं.

उत्तरपक्ष–तो हे भोले भाई तुम ने सूत्र भगवती जी का १५ मा शतक का मतलब अच्छी तरह से नही धारण किया तिसके प्रताप से शंका उत्पन्न हुई है. अब सूत्र का पाठ सुनिये. गोशाला ने भगवान् से शिष्य होने की प्रार्थना की और गोशाला कुपात्र तो पीछे हुवा है परतु भगवत ने दीक्षा दी उस वक्त कुपात्र नहीं था सो सूत्र पाठ से दिखाते है चित्त लगा के सुनिये.

सूत्र–तएणसे, गोसाले, मंखलि, पुत्ते, हट्ठ, तुट्ठे, ममं, तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिण, जाव, णमसित्ताए, ववयासी तुब्भेणभते, ममं, धम्मायरिया, अहंण, तुब्भ, अतेवासी, तराण, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मखलि, पुत्तस्स रायमट्ठं, पडिसुणेमि, तराण, अह, गोयमा, गोसालेण, मंखालि, पुत्ते, णंसाद्धिं, पणिय, भूमिए. छव्वासाइ, लाभ, अलाभ, सुह, दुरक, सक्कार, मसक्कार, पच्चाणुब्भवमाणे, अणिच, जागरियं, विहरित्था, ॥ इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः-॥तएणसे, गोसाले, मखलि, पुत्ते, हट्ठ तुट्ठे, के.

तिवारते गोसालो मंखलि पुत्र हर्ष सतोपपाम्यो मंम, तिकुत्तो, आयाहिण, पयाहिण, जाव, णमसित्ता, एव, वयासी, के० मुझे प्रते तीन वार जीमणा पासा थी प्रदक्षिणा इत्यादि यावत् नमस्कार करी इम कहे-तुभ्भेण, भंते, मम, धम्मायरिया, अहण तुज्झ, अंतेवासी; के० -तुम्हेण वाक्यालकारे. माहरा धर्माचार्य हूणं वाक्यालकारे तुम्हारो शिष्य तएण, अह, गोयमा, गोसालस्स, मखलि, पुत्तस्स, एयमट्ठ, पडिसुणेमि, के० तिवारे हु हे गोतम गोशालानो मखली पुत्र नो एहवो वचन स भलु तराण, अंह, गोयमा गोसाले,ण, मखलि पुत्तेण, सद्धि, पणिय भूमीए, के०'- तिवारे हू हे गोतम गोशाला मखलि पुत्रे करी सहित मनोहर भूमिकाने विषै छ वासाइ, लाभ, अलाभ, सुह, दुख, सकार, मसकार, पच्चणु, भवमाणे, अणच्च, जागरियं, विहरित्था, के०' छ वर्ष लगे विहार कीधो लाभप्रते अलाभ प्रते सुख प्रते दुख प्रते. सत्कार प्रते असत्कार प्रते अनुभव मानता थका अनित्य जागीका अनित्य चिंता करता थका विचरता थया. ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में कहा कि गोशाले ने तीन वार प्रार्थना करी तब चौथी वार की प्रार्थना से भगवत ने गोशाला को ग्रहण किया, तो यहा तो वदनादिक विधि साचवन करके भगवत अर्ज करी है तो यह विनय का कारणादिक तो योग्यपने का कार्य है तो अयोग्य पीछे हुवा है.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी ने भ्रम विध्वसन के पत्र ८२ पे टीका की साक्षी दी है कि (ए अयोग्य ने भगवान् अंगीकार कीधोते अक्षीण रागपणा करीतेहना परचे करी स्नेह अनुकपाना

सद्भाव थी अने छद्मस्थ छे ते माटे आगमीया कालरा दोपना अजाणवा थकी) यह हमारा गुरु जी का कहना हैं तिससे हम कहते हैं कि राग से गोशाला को दीक्षा देने से चूके सिद्ध होते हैं.

उत्तरपक्ष-हेभाई तुमने टीका की साक्षी बताई है परंतु टीका से भी भगवान् को चूकना सिद्ध नहीं होता है तिसका हमखुलासा टीका लिखते है परंतु याद रखना कि हम फिर अगाडी टीका की साक्षी बतलावेंगे बदलना मत कि हम टीका को नहीं मानते है सुनिये टीका का खुलासा—

टीका-एयंमट्ठ, पडिसुणेमिति, ॥

अभ्युपगच्छामि यच्चै तस्याऽयोग्य स्याप्यभ्युपगमन भगवस्तदीक्षण राग तया परिचयेनेपत्स्नेह गर्भानुकंपा सद्भावात् छद्मस्थतया वानागत दोपा नवगमादवश्य भावित्वा चैतस्यार्थ स्येति भावनीयमिति पणिय भूमी एत्ति. पणित्त भूमेरारभ्य प्रणीत भूमोवा. मनोज्ञभूमौ विहृतवानिति योगः। अणिच्च जागरियाति अनित्य चिंता कुर्वन्निति वाक्यम् ॥ इति.

टीकार्थः-यह अर्थ मैंने प्रतिसुराया अंगीकार किया जो, इस अयोग्य को भगवान अंगीकार कियो. अक्षीणरागपणा करी. परिचय कछुक स्नेहगर्भ अनुकंपा सद्भाव से छद्मस्थपना करके अनागत दोप का अजानपना करके अवश्य भाविभाव से इतना अर्थ सम्बन्ध भावना करनी योग्य हैं मनोज्ञ भूमि के विषे विचरता हुवा अनित्य जागरणा अनित्य चिंता करता थका. ॥ इति ॥

अब बुद्धिमान विचारो कि इस सूत्र के पाठ अर्थ टीका में कहा भी भगवत चूक गये ऐसा नहीं कहा है तो फिर तुम

लोग झूठे सूत्र का नाम लेके चूकना कहां से कहते हो.

पूर्वपक्ष- अभी आप ऊपर लिख चुके हो कि भगवंत ने अयोग्य को अक्षीण रागपणा करके ग्रहण किया तो अयोग्य को राग से ग्रहण करने में चूके यह स्पष्ट सिद्ध हुवा.

उत्तरपक्ष-हे भाई सूत्र की टीका की सापेक्षा नहीं समझने से तुमको यह तर्कना सूझती है और तुम्हारे गुरु जीतमलजी के बनाये भ्रम विध्वंसन में ऐसा लिख दिया है परतु पूर्वापर सम्बन्ध विचारने की बहुत न्यूनता है सो जरा ध्यान देके विचारो कि इस टीका में भगवत ने अयोग्य को कैसे ग्रहण किया यह तर्क हुवा इस पर टीकाकारजी करते हैं अब विचारो कि यह तर्क का कारण पूर्व सम्बन्ध यानी गौशाला भगवत से बदला. और साधु की घात करी उस आशय से अयोग्य को ग्रहण करने की तर्क हुई है परतु भगवत को मिलता ही अयोग्य नहीं हुवा है. क्योंकि भगवत को गौशाला ने ४ वक्त प्रार्थना करके कहा कि हे भगवत आप मेरे धर्माचार्य हो और आप का मैं शिष्य हू तब भगवत ने चौथी बार की प्रार्थनासे ग्रहण किया है और जो पीछे भगवत से गौशाला अलग नहीं निकलता और अविनीत नहीं होता तो उसको अयोग्य कोई भी नहीं कहता तो यह विचार से अच्छी तरह से सिद्ध हुवा कि अयोग्यपना पीछे की अपेक्षा से है परतु दीक्षा दी उस वक्त की अपेक्षा से नहीं अब टीकाकार जो इसका समाधान करते हैं कि भगवत ने दीक्षा दी सो अक्षीण रागीपणा से कछुक स्नेहयुक्त अनुकंपा करके क्योंकि गौशाला ने भगवत से तीनवार तो प्रार्थना करी और चौथी

वार मस्तक मुंडा के भगवत से आके प्रार्थना करी तब श्री भगवान को गोशाले पर करुणा आई कि यह जीव विच रा वार वार प्रार्थना करता है और शिष्य होने की उत्कंठा अत्यंत करता है इससे परमेश्वर को उस पर करुणा आई जिससे ग्रहण किया तात्पर्य उनका तारणे रूप करुणा का था.

पूर्वपक्ष-कछुक स्नेह युक्त अनुकपा कही सो स्नेह कहो या मोह अनुकपा कहो. यह तो एक ही बात है तो मोहकर्म से चूकना सिद्ध हुवा.

उत्तर पक्ष-हे भव्य हम वार २ कहते है कि तुम शास्त्र का अर्थ विचार करके तर्कना नहीं करते हो परन्तु तुम क्या करो तुम्हारे गुरु ने भ्रम विध्वंसन में ऐसा ही कथन रचा है परन्तु पक्षपात नहीं होवे तो बिचार करके तत्व का निर्णय करो और तुम्हारी शका का समाधान सुनो कि प्रथम तो तुम यह विचारो कि ४ चारित्र यानी सामायिक छेदोत्थापनिया परिहार विशुद्ध सूक्ष्म संपराय यह चारित्र और पुलाक बुकस्स पडिसेवणाकुसिल कषायकुसिल यह ४ नियट्ठा इनमें अवश्यमेव राग का सद्भाव भगवत ने कहा है यानी सर्व यह सरागी है और सूत्रपाठ से दिखाते है ध्यान लगा कर सुनो सूत्र निम्न लिखित है ।

सूत्र-पुलाएण, भते, किं, सरागे, होज्जा, वीतरागे, होज्जा, गो, सरागे, होज्जा, सोवीपरागे, होज्जा, एव, जाव, कसाय, कुसीले, इति ॥

अस्यार्थ-पुला कहे भगवान स्यू राग कषाय हुवे अथवा वीतरागी हुवे गौतम सरागी हुवे परतु वीतरागी न हुवे इति॥

भगवती शतक का २५ उद्देश छठा में तथा ७ मा का पाठः-

सूत्र-समाइय, राजएण, भंते, किं, सरागे, होज्जा, वीत रागे, होज्जा, गोयमा, सरागे. होज्जा, णो, वीतरागे, होज्जा, एव, जाव, सुहुम, संपराए.

अस्यार्थ-सामायिक चारित्र भगवान सरागी हुवे किंवा वीतरागी हुवे गोतम सरागी हुवे परंतु वीतरागी न हुवे ऐसे ही सूक्ष्म सपराय तक कहना ॥ इति सूत्रार्थ ॥

अब बुद्धिमान विचारो कि सूत्र में खुलासा ४ नियंठे और ४ संजया को भी भगवान ने सरागी फुरमाए तो सरागी संयम वाला तो जिस कोई को दीक्षा देवे या जो कोई व्रत तप तपादिक भली क्रिया यानी मात्र संयम का पालना सरा गता से है तो फिर विचारो कि श्रीभगवाने ने गोशाले को किंचित् सरागपने से ग्रहण किया तो उसमें भगवान का क्या दोष लगा क्योंकि श्रीभगवान भी सामायिक चारित्र के पर- याय में थे इससे से सरागी थे और किंचित् सराग से ग्रहण करने में भगवत को क्या दोष लगा अपितु कुछ भी नहीं लगा।

पूर्व पक्ष-रागद्वेष तो कर्म बंधन में बीजभूत शास्त्र में कहे है तो फिर राग से भगवान ने गोशाले को ग्रहण किया तो चूके क्यों नहीं कहते क्योंकि यह तो १८ पाप में दश पाप है

उत्तर पक्ष-हे भोले भाई जरा विचार करके तो तर्क करो कि जो अनंत छद्मस्थ सराग संयमी साधु साध्वी गये काले हुए है वह सरागपने से शिष्य को दीक्षा देते और गुर्वादिकों

की सरागता से सेवा करते गुरु सराग से शिष्य को ज्ञानादिक ग्रहण कराते है यह कथन सूत्रों में ठाम ठाम में हैं क्योंकि सराग सयमी जो जो धर्म विनायादिक सराग से ही करते है और भी हम तुम से पूछते हैं कि तुम्हारे माने हुए भीषमजी से लगा के आज दिन तक के सर्व तुम्हारे गुरु एक दूसरे की व्यावचादिक सराग से करते कि वीतराग से या चेला करने को यानि तुम्हारे गुरु शिष्य करने को कई कोशा बध जाते हैं यह सराग से चेला करने जाते है कि वीतराग से और व्याख्यान सुनाना गुरु की सेवा करनी एक दूसरे की वंदना करनी यह सराग से करते कि वीतराग से करते है क्योंकि वीतराग का जबूजी महाराज के मोक्ष पधारे पीछे पचमा आरे के जन्मे को विच्छेद है तो तुम्हारे गुरुजी सराग से चेले करते कि वीतराग से इस पर तुम को कहना पड़ेगा कि राग से कदाचित तुम हठ करके नहीं कहोगे तो वीतराग पना से बनही नहीं सक्ता क्योंकि वीतराग पने का तो विच्छेद है।

अब विचारो कि जो राग एकंतपाप में है तो तुम्हारे गुरुजी चेले मूडने से श्रावक करने से राग भाव उत्पन्न हुवा तो वह राग पाप मे है कि धर्म में है वाह ! रे मित्रो ! ! सूत्र की बात का परस्पर कुछ भी सबध नहीं विचारते हो. और भी तुम लोगों को तुम्हारे साधुजी पूज्य के दर्शन करने का उपदेश देते है और आखड़ी भी दिलाते है कि पूज्यजी का दर्शन किये विना कुशिल रात्री भोजनादि नही सेवना. फिर तुम पूज्यजी के दर्शन करने को गाड़ी घोडा रेल आदि की सवारी, से या पैरों से, जाते हो तो यह तुम्हारा पूज्यजी के

पास जाना राग से होता है. कि वीतराग से सो तुम वीतराग तो होई नहीं किंतु सरागी हो तो सराग से जाना ठहरा तो तुमको पाप हुवा कि धर्म. और आखडी दिवाने वाले को क्या हुवा. तब तो भाई झटपट बोल उठते हो कि हमारे गुरुजी का चेलादिक का मूडना. या हमारे पूज्यजी का दर्शनादिक करना एकात धर्म में है वाह रे वाह मित्रो तुम्हारी समझ का व्याख्यान कहा तक किया जावे कि आप का गुरुजी का सरागपने से चेले मूडने में या परस्पर वंदनादिक सरागता से करने में धर्म और भगवत श्रीमहावीर स्वामी ने थोडा सा राग का सद्भाव करके गौशाला को ग्रहण किया. ऐसा टीका का लेख से भगवत को चूके कहना और पाप लगना बताना यह क्या अंधाधुध लेख है. अफसोस है कि वर्तमान के अपने मनमाने पूज्यजी का ढग पर भी कुछ नजर नहीं डाल के चार ज्ञानवान् भगवत को चूके कहना और मनमाने को धर्मात्मा कहना विद्वान का काम नहीं है।

पूर्वपक्ष–भगवान ने तो अयोग्य को ग्रहण किया इससे चूके कहते हैं और हमारे गुरुजी तो पहिचान करके चेले मूडते है तिससे उनको चेला मूडना धर्म में है।

उत्तरपक्ष–हे भाई इस अयोग्य विषय का कथन तो हम पूर्व ही कथन करचुके है तथापि फिर सुनो कि भगवत ने गोशाला को ग्रहण करने समय में गोशाला अयोग्य हुवा कि छै वर्ष पीछे हुवा जो कहो कि ग्रहण करने समय में था तो बताइये कि ग्रहण समय में गोशाला की क्या अयोग्यता थी क्या शरीर का हीणा था क्या अविनय से भगवान् के साथ

हुवा तो यह तो कभी नहीं सिद्ध होता क्योंकि ४ वार बहुत भगवान को वंदना करके प्रार्थना करी तब भगवत ने ग्रहण किया और श्रीमुख से फरमाया कि हे गौतम गोशाला के साथ ६ वर्ष तक प्रणीत यानी मनोहर भूमि में धर्म ध्यान ध्याते हुए हम विचरे. तो विचारो कि ६ वर्ष तक तो श्रीमुख से फरमाया कि अनित्य जागरणा धर्म ध्यान करते हुए रह तो निश्चय हुवा कि अयोग्य तो पीछे हुवा है इसी वास्ते टीकाकारजी ने भी लिखा है कि अनागत दोष का अजाण पणा करके क्योंकि छद्मस्थ थे इससे टीका की साक्षी तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भी भ्रम विध्वंसन में ८२ मा पत्र पर लिखा कि (छद्मस्थ छे माटे आगमीया कालना दोषना अजाण वा थकी कीधो) इति भ्रमः ।

अब विचारो कि भाई जो भगवान ने आगमीया कालका अयोग्यपना को नहीं जान के ग्रहण कियातो इसमें २ वार्ता तो अच्छी तरह से सिद्ध होगई कि आगम्य काल में अयोग्य और अपगुणी हुवा तो वर्तमान काल में ग्रहण करती वक्त तो नहीं हुवा द्वितीया वार्ता आगम्य कालका दोषका अजाण से ग्रहण किया तो इससे भगवत्त में किसी प्रकार का दोष रहा ही नहीं क्योंकि भगवत ने तो अच्छा जान के ग्रहण किया परन्तु आगम्य काल में बुरा हुवा. इसमें भगवान क्याकरे भगवत ने तो उपकारही किया. और उपकारी उपकारकरे और उसे उपकारमें कोई कृतघ्नी होजावे तो उस कृतघ्नी को दोष है परन्तु उपकारी को दोष किसी शास्त्र से नहीं है. क्योंकि उपकारी को तो यह खबर ही नहीं कि यह आगम्य

काल में कृतघ्नो होवेगा. और यह तो तुमलोग और तुह्मारे गुरु मानते हो कि भगवंत ने गोशाला का आगम्य काल में दोष नहीं जाना. जिस से ग्रहण किया तो फिर अवगुण नहीं जाना तो अवगुण का प्रतिपक्ष तो गुण हुवा. और गुण जान के ग्रहण किया तो दीक्षा देनेमें चूके यहभी कहना मिथ्या ठहरा

पूर्वपक्ष—भगवान ने गोशालापर उपकार किया तो ऐसा कथन किस सूत्र में है.

उत्तरपक्ष-इसी भगवतीजीका शतक १५ वा में जिसवक्त गोशाला समव सरण आके भगवत को अवर्णवाद बोलनेलगा तिसवक्त सर्वानुभूतिजी और सुनक्षत्रजी ने कहा. तथा भगवत् ने श्रीमुख से कहा कि हे गोशाला जो तथा रूप श्रमण महाण के समीपे एक भी आर्य धर्म सम्बन्धी सुवचनको श्रवणकरे वहभी सुनने वाला अपने धर्माचार्य को वादे यावत् सेवाभक्ति करे तो. हे गोशाला तुमने तो मेरे से ही दीक्षा पाई यावत् मेरे सेही बहु श्रुति हुवा. और मेरे से ही मिथ्यात्व पना अंगीकार करता है- तिस वास्ते तू इस तरह मत होवे इति सूत्र भगवतीजी का मूल सूत्र शतक १५ वा से भावार्थ' अब बुद्धि मानों विचारो कि छद्मस्थपन में भगवत ने गोशालापर उपकार किया. और केवल पनमें कहा कि मैने तेरे उपकार किया है और मेरे सेही मिथ्यात्व धारन करना नहीं चाहिये तो विचारो कि भगवत ने तो उपकार किया है सो श्रीमुख से बतलाया परंतु भगवत ने ऐसा तो नहीं कहा कि तेरे ऊपर उपकार किया सो बुरा काम किया था. तेरे वास्ते मैने दोष

लगाया तो अनत ज्ञानी उपकार करा कहे तो तुम उस काम को बुरा कहके भगवान की आशातना मतकरो. तथा तुह्मारे भ्रमविध्वंसन में भी पत्र ८४ मांपर लिखत हैं कि (पहिली पूतजनम्या विना कुपूत किम हुवे पूत थया कुपूत हुवे. तिम शिष्य कीधा सू शिष्य कुशिष्य हुवे इणन्याय गोशालो पैला शिष्य थयो छे तिवारे कुशिष्य कह्या यो वली भगवती शतक नवमा उ. ३३ मा में कह्या (एवं, खलु गोयमा, मम, अंतेवासी. कुसिस्से, जमाली, णामं, अणगारे) इहा जमाली ने कुशिष्य कह्यो. ते पहिली शिष्य थयोह्नतो ते माटे कुशिष्य कह्यो तिम गोशाला पिण पहिला शिष्य थयो ते माटे गोशाला ने कुशिष्य कह्यो) इति भ्रमविध्वसनका लेख ॥

अब बुद्धिमानों विचारो कि तुम्हारा गुरु जी ने गौशाला जमाली को पहले शिष्य लिखे तत्पश्चात् मोह कर्म के उदय से दोनों कुशिष्य हुये है और दोनों को दीक्षा देने वाले भगवान हैं तो तुम या तुम्हारे गुरु जी मानते हो कि जमाली को दीक्षा देने में धर्म भगवान को हुवा तो गौशाला को दीक्षा देने में तुम ने पाप कहां से निकाला क्योंकि दोनों ही तो पहिले शिष्य हुये. और वह दोनों पीछे कुशिष्य हुए तो एक में तो धर्म और एक में पाप यह कल्पना कौन बुद्धिमान करे अपितु सत्यवादी तो कभी नहीं करे दोनों ही काम भवितव्यता से हुए है और दोनों ही काम में धर्म है.

पूर्वपक्ष–गौशालाको शिष्य करा यह भवितव्यता में कहा है.

उत्तरपक्ष–हे भव्य यह तो भगवती जी की टीका में खुलासा लिखा है और तुम्हारे भ्रम विध्वसन में ८२ मा पत्र

पर टीका तो लिख दी है अर्थ का खुलासा सम्पूर्ण नहीं किया किन्तु मनमाना अर्थ कर लिया और बाकी टीका लिखी भी हैं तो भी अर्थ छोड दिया तो कहो भाई यह कितनी आश्चर्य की बात है कि टीका को लिख के भी अर्थ छोड देना कहो यह भगवती जी की टीका का प्रमाण विद्वानों के वास्ते दिया कि मूर्खों के प्रमाणे के लिये अगर मूर्खों के प्रमाणे के वास्ते लिखा है तो टीका का लिखना ही व्यर्थ है क्योंकि मूर्ख तो अपने मनमानी कल्पना को ही भगवान के कथन समान समझते है तो टीका वगैरह लिखने की ही क्या आवश्यकता थी और कहा कि विद्वानों के लिये हैं तो विचारो कि टीका लिख के अर्थ पूर्ण क्यों नहीं लिखा परंतु विद्वान तो समझ ही लेते है कि क्या भ्रम रूप वार्ता है टीका लिख के भी अर्थ को कुछ लिखना कुछ नहीं लिखना अब सुनिये कि भ्रमविध्वसन में टीका का अर्थ छोड दिया सो लिखते हैं.

टीका-(अवश्यं भावित्वाच्चैतस्यार्थस्येति भावनीय मिति)

अर्थ-अवश्य भावी भाव से इतना अर्थ संबधी भावना करने योग्य है इति टीकार्थः

अब यह भी सुनिये कि कितना तो लिखा और कितना छोडा भ्रम विध्वसनपत्र ८२ मा पे निम्न लिखित लेख है (ए अयोग्य ने भगवान् अगीकार कीधो ते अखीण रागपणा करके तेहना परिचे करी स्नेह अनुकपाना सद्भाव थी अने छद्मस्थ छेते माटे आगमीया कालना दोषनां अजाणवा थकी कीधो) ॥ इति ॥

अब विचारो कि ऊपर लिखा इतना अर्थ तो लिखदिया

और अवश्य भाविभाव सो ग्रहण किया इतना टीका में खुलासा है तो भी अर्थ नहीं किया खैर मतपक्ष को छोडना मुश्किल है परन्तु इस ग्रथ का नाम भ्रम विध्वंसन रक्खा, जो मध्यस्थपन से कोई विद्वान् इस ग्रथ को देखे तो जरूर मालुम पडे कि यह ग्रथ भ्रम को दूर नहीं करता है किंतु भ्रम को उत्पन्न करता है. अगर हम इस ग्रथ की भ्रांति का हाल लिखें तो एक बडाभारी ग्रथ बनजावे. तिससे यहा इस विषय का ज्यादा तर्क नहीं करते है यहा तो हमने गौशाले को ग्रहण भगवत ने भाविभाव यानि होनहार से करा ऐसा टीका से और भ्रम विध्वंसन में लिखी हुई टीका से ही यहा हमने सिद्ध किया है और जैसे जमाली को भगवान जानते थे कि यह कुशिष्य होवेगा तो भी भवितव्यता यानी होनहार से परमेश्वर ने दीक्षा दी तैसेही गोशाले को भी होनहार से दीक्षा दी यह टीका से ही खुलासा हमने लिखा है तो भाई दीक्षा देने से भगवान चूके यह किसी तरह सिद्ध नहीं होता है।

पूर्वपक्ष–जमालीजी को भगवंत ने केवलपने में दीक्षा दी परन्तु गोशाले को तो छद्मस्थपने में किंचित् राग से दी इस से रागपना से चूके कहते हैं।

उत्तरपक्ष–हम अभी ऊपर अच्छी तरह से सिद्धांत का पाठ सहित खुलासा कर आए हैं कि छद्मस्थ का तो गुरु का चेले पर और चेले का गुरु पर और भी धर्म विषय में राग रहता ही है क्योंकि सराग संयम के सद्भाव से तो छद्मस्थ सराग संयमी अनंत मुनियों ने छद्मस्थ तीर्थंकरों ने शिष्य किये हैं वह क्या चूकने में है तो तुम्हारे गुरुजी का भी चेला

करने में चूकना होवेगा क्योंकि शिष्य करते हैं वह सरागी है इससे और अगर नहीं चूके और शिष्य का करना धर्म में है तो भाई महावीर प्रभुजी से तुम्हारे क्या द्वेप है जिससे उनको गोशाले को दीक्षा देने से चूके कहते हो तथा श्रीऋषभदेवजी ने ४ सहस्र शिष्यों को दीक्षा धारन कराई पीछे भूख को परिसह सहन नहीं करने से अर्थात् निर्दोप आहार नहीं मिलने से भूख के मारे संयम से कई भ्रष्ट हो के पाखंड मत चलाया यह कथन जैनमार्ग में प्रसिद्ध है तो विचारिये कि आदिनाथजी परमेश्वरने ४ सहस्र शिष्य किये तो उसमें पाप हुवा कि धर्म और जो धर्म हुवा तो महावीरजी ने एक गोशाला को शिष्य किया तो उसमें पाप कहा से लाए हो।

पूर्वपक्ष—क्या राग भी दो तरह के हैं सो सराग से मुनि को शिष्यादि करने में या शिष्य को गुरु पर राग भाव से वंदना नमनादि करने में धर्म और विपय विकारादि पे राग करने से पाप.

उत्तर पक्ष—हा भाई जरूर सिद्धान्तों में प्रशस्त अप्रशस्त दो तरह का राग कथन है प्रथम तो आवश्यक निरुक्ति में लिखा है सो देख लेना तथा मूल अंगादि सिद्धान्तों मे भी दो तरह का राग कहा है सो अप्रशस्त राग तो कामराग स्नेहराग, दृष्टिराग इस भेद से अनेक जगह सूत्रों में कथन किया है सो वह अप्रशस्त राग तो पाप में है और जो प्रशस्त राग धर्म रूप देव गुरु धर्म पर करने योग्य है ऐसा सिद्धान्तों में कहा है सो मूलपाठ से दिखाते है सूत्र भगवतीजी का शतक १५ मा में जिस वक्त गोशाला भगवत के समीपे आ के

भगवान को अवर्णवाद बोलने लगा तिसवक्त सर्वानुभूतिजी भगवान् का अनुराग करके गोशाले से बोले तिसका गुण सूत्र में है सो पाठ लिखते है. चित्त लगा के सुनिये।

सूत्र-तेण, कालेणं, तेण, समएण, समणस्स, भगवउ, महावीरस्स, अंतेवासी, पाईण, जाणवए सव्वाणु, भूईणाम, अणयारे, पगइ,भद्दए, जाव, विणीए, धम्माणु, रियाणु, रागेण एयमठ्ठं, असद्दहमणे, उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठइत्ता,।

अस्यार्थः-तेण, कालेण, तेण, समएणं, के० ते काल ने विषे ते समय ने विषे समणस्स, भगवओ, महावीरस्स, अंतेवासी, के० श्रमण भगवंत श्रीमहावीर स्वामी नो शिष्य पाईण, जाणवए, सव्वाणु, भूई, णाम, अणगारे, पगइ भद्दए, जाव, विणीए के०, पूर्व देश नो अपनो सर्वानुभूतिनामे साधु स्वभावे भोलो यावत्-विनीत धम्माणु, रियाणु, रागेणं, एयमठ, असद्दहमाणे, उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठइत्ता, के० धर्माचार्य ने अनुरागे करी एह अर्थ अणसद्दहतो थको उठे उठीने। इति सूत्रार्थ।

अब विचारो कि यहा सूत्रपाठ में सर्वानुभूतीजी अपने धर्माचार्य श्रीमहावीर स्वामी के ऊपर अनुराग करके गोशाले के वचन भगवंत के अवगुण अविनय, रूप, कहता हुवा देखके उसे बोले कि हे गोशाला भगवान तेरे उपकारी है इनकी आशातना मतकर तब गोशाले ने तेजु लेश्या क्रोध करके मुनि परडाली तिसे एक बार से ही भस्म कर दिया यह लेख सविस्तार से भगवतीजी के शतक १५ वा में है संशय होवे तो देख लेना सर्वानुभूतिजी भगवान् के रागी थे और भग वान् ने मने कराये थे तो भी बोले और उनको भगवान पर

राग करने को या मनादि किए उपरात बोलने का कुछ दोष या चूकने का कथन भी नहीं किया है बल्कि श्रीमुख से प्रशसा की है और विनीत कहा है और तुम्हारे भ्रमविध्वसन के ६३ मा पत्र में भी सर्वानुभूतिजी को आज्ञा के आराधिक और सुविनीत की बहुत कथन किया है तो भाई अब तो अच्छी तरह से विचारो कि धर्म राग करने में पाप होता तो सर्वानुभूतीजी जिन आज्ञा के आराधिक कैसे होते तिस्से धर्म राग में कोई दोष नहीं है या दोष लगता तो आलवणा निंदना करते परतु वह गोशाले की अग्नि से तत्काल काल कर गए तो दोष थाहीं नहीं होता तो रागभाव की आलवणा विना आराधिक कैसे होते तथा सूयगडाग दूसरा श्रुतस्कंध अध्याय दूसरा में श्रावक का वर्णन है वहा भी ऐसा पाठ है।

सूत्र–अट्ठिमिजा, पेम्माणु, रागरत्ता,–

अस्यार्थः–अस्थिअने हाड माहेली मिजा जे धातु विशेष ते भगवत ना सिद्धात रूप कुसंगादिक ने विषै प्रेमरूप रोग करी रंगाणा छै ॥ एटले रागरक्त छै ॥ इति सूत्रार्थ ।

इस पाठ में भी धर्मराग में रक्त साधु श्रावक का गुण कहा परतु पाप तो नहीं लिखा ।

पूर्वपक्ष–भगवान ने गोशाले का ग्रहण किया वह धर्म राग में नहीं किंतु अशुद्ध मोह राग में है ।

उत्तरपक्ष–अरे भाई जरा तो कुछ विचार के बोलो कि मोह किस को कहते है क्या भगवान के गोशालाजी से स्वार्थ था क्या सगपन नाता करना था नहीं २ भगवान् ने तो किसी प्रकार के स्वार्थ वास्ते नहीं ग्रहण किया था परतु परोपकार

के वास्ते ॥ इति दीक्षा देने से नहीं चूके इसका सत्य निर्णय ॥

और जो तुम्हारी शंका है कि भगवान गोशाले को दीक्षा नहीं देते तो साधु की घात या मिथ्यात्व नहीं बढता तो यह भी हमने टीका से ही खुलासा ऊपर कर दिया कि अवश्य भाविभाव से भगवंत ने ग्रहण किया है जैसे जमाली को दीक्षा दी उस समय भगवान केवली थे और जानते भी थे कि मिथ्यात्व का उदय इस को आवेगा और खोटा पंथ निकालेगा तो फिर उसको दीक्षा क्यों दी तब तुम क्या उत्तर देवोगे. सिवाय भवितव्यता के दूसरा उत्तर नहीं होवेगा. ऐसे ही गोशाले कु भवितव्यता से ग्रहण किया यह टीकाकारजी अच्छी तरह से खुलासा लिखते है संशय होवे तो टीका देख के श्रद्धा शुद्ध करलेना केवल गुरुजी की लिखी कल्पना परही भरोसा नहीं करना चाहिए. निर्पक्ष होके जिनागम की प्रतीत करोगे तो तिरोगे ॥ इति ॥

और भी तुम्हारा लेख है कि भगवान् ने गोशाले को तिलका छोड (पोधा) बतलाया और उसने भगवान् के बचन को असत्य करने के लिये उखेड डाला इससे तुम लोग चूकने की शका करते हो सो भी भ्रम का ही प्रताप है परतु भ्रम दूर करना होवे तो इसका प्रत्युत्यर ध्यान लगा कर सुनो. प्रथम तो यह विचारो कि तिलका छोड भगवंत ने तो गोशाले को नहीं बताया. परंतु गोशाला भगवत के सघाते सिद्धार्थ ग्राम नगर से कूर्म नगर को जाता हुवा विचाले एक तिलका छोड स्वयं देखके पूछने लगा कि हे भगवन् यह तिलका छोड निपजेगा कि नहीं निपजेगा और इस तिलके

यह ७ फूल के जीव मरके कहा उपजेंगे. यह प्रश्न किया तब भगवंत ने उत्तर दिया कि हे गोशाला यह तिलका छोड निपजेगा और इसके सात फूल के जीव मरके इसी तिलकी एक सागरी यानि फली में ७ तिल होवेंगे यह सुनके गोशाला भगवान् के वचन को नहीं श्रद्ध के और भगवान के वचन को झूठा करने के वास्ते उसने चुपके से जाके तिलका छोड को उखेड डाला ॥ इति ॥

यह कथन सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वां में है अब जरा विचारना चाहिए कि सिद्धात में तो तिलका छोड़ गोशाला को भगवान ने नहीं बतलाया किंतु उसने स्वयं तिलका छोड देखके तिल निपजने का प्रश्न किया. उसका उत्तर भगवान ने दिया और तुमने लिख दिया कि श्रीभगवान् महावीर स्वामीजी ने गोशाला को तिलका छोड बतलाया. यह लिखना सूत्र से विरुद्ध है अफसोस इस बात का आता है कि सूत्र से विपरीत कथन को भी सूत्र का नाम लेके लिखने में क्या मनोरथ सिद्ध होता है. कुछ भी नहीं तथा भूल के या भ्रम से लिखा तो अब भी सूत्र देख के ठीक श्रद्धा कर लेवो खैर हमारा तो इतनी ही बात का बतलाना तुम्हारे ऊपर हितबुद्धि से है कि तुम भूल खाके जैन सिद्धात का लेख आक वाक मत लिखो यह हित से कहना है. अब तुम्हारी शंका का समाधान सुनिये कि श्री भगवान ने तो प्रश्न पूछा जिसका यथावस्थित उत्तर दिया. और गोशाले ने मोहकर्म के उदय से नहीं श्रद्धा तो परमेश्वर को दोष किस बात का लगा ।

पूर्व पक्ष–भगवत गोशालाजी को कोई उत्तर नहीं देते तो तिलका छोड़ गोशालाजी नहीं उखाड़ते. यह तो उत्तर दिया तब इतनी हिंसा गोशालेजी ने करी तो इससे हम भगवान को चूके कहते है।

उत्तरपक्ष–हे अल्पज्ञों कुछ भी तुमको सिद्धात का ज्ञान है कि नहीं. सुनिये भगवतीजी का १५ वां शतक में क्या अधिकार है कि. भगवंत सावथी नाम नगरी के कोष्टक नामा बाग में पधारे और उसी नगरी में हलाहली कुभ कारिणी की शाला में गोशाला भी था. वह निमित्त बल से केवली नाम धराता था. तब गौतम स्वामीजी गोचरी में फिरते थे. सो गोशाला का हाल सुन के भगवत से भरी सभा में प्रश्न किया कि हे प्रभु गोशाला केवली नाम धराता है. सो कैसे है और गोशाले का चरित्र कैसे हुवा सो फरमावो तब भगवत ने गोशाले के जन्म से ले के संपूर्ण सावंथी में रहा तहां तक का चरित्र कहा और फरमाया कि यह गोशाला मखली का पुत्र है और जिन नहीं है केवली नहीं है यह श्री गौतम स्वामीजी के प्रश्न का उत्तर श्रीभगवान ने भरी सभा में फरमाया कि तिसको सुन के बहुत से लोग गोशाला का हिलना उपहास करते भए तिससे गोशाले को श्रीभगवान के ऊपर अति क्रोध आया, और समव सरण में आके भगवान के पास अनेक प्रकार के जालवचन यानी ७ वार शरीर में अतर प्रवेश रूप को लुए पडिहार मेरे हुए. इससे गोशाला मैं नहीं हूं किंतु राजपुत्र हू ऐसा बचन फैला के सचा बना तब श्री मुख से श्रीभगवान ने एक चोर का दृष्टात फरमाया कि चोर

चोरी करके भगा तिसके पीछे ग्राम के लोग लगे. तब वह चोर कोई गहन छिपने का ठिकाना नहीं पाने से वस्त्रादिक ओढ़ के मनमें माने कि मैं छिप गया. तो वह ग्राम के लोगों से छिप नहीं सक्ता. तैसे तुम्हारे से छिप नहीं सक्ता. तू वही गोशाला मखली का पुत्र है यह वचनं गोशाला सुन के श्री भगवान पर अत्यन्त क्रोधायमान हो के कटुवचन कहने लगा तब सर्वानुभूतिजी और सुनक्षत्रजी इन दोनों साधुओं नें पृथक २ वर्जा कि भगवंत का तेरे ऊपर उपकार है. और तूं भगवत का अवर्णवाद मत बोल तिसपर गोशाला ने दो वक्त तेजुलेश्या की अग्नि करके दोनों साधुवों को दग्ध कर दिये फिर तीसरी वक्त स्पष्ट श्री भगवान ने गोशाले को वर्जा तब गोशाला ने श्री भगवान पै तेजस समुद घात फोड के अग्नि भगवत पर मेल दी. तब भगवत को वह अग्नि पराभव नहीं करसकी और पीछी गोशाला परही पडी ॥

अब विचारो कि श्री भगवान ने गौतम स्वामीजी को गोशाला का चारित्र रूप प्रश्न का उत्तर दिया और उस को क्रोध आया और दो साधुवों को दग्ध किये. श्रीभगवान ज्ञान में जानते ही थे कि मेरे उत्तर देने से गोशाला को क्रोध आवेहीगा तो फिर उत्तर भगवत ने क्यों दिया. नहीं देते तो यह गोशाले का क्रोधरूप अकार्य तुम्हारी श्रद्धा प्रमाणे नहीं होता जो तुम्हारे मत से भगवत ने गोशाले को तिल छोड का प्रश्न का उत्तर देने से पाप हुवा तो श्री गौतम स्वामीजी को गोशाले का चारित्ररूप प्रश्न का उत्तर देने में धर्म कैसे हुवा क्योंकि गौतम स्वामीजी को प्रश्न का उत्तर देने में तो

तुमने धर्म माना ही है सो जरा सोच के बात चलावो।

पूर्वपक्ष-गौतम स्वामीजी को गोशाले का चरित्र विषय का उत्तर दिया उस वक्त तो भगवान् वीतराग केवली थे. इस से धर्म हुवा और गोशाले को तिल छोड का उत्तर दिया उस वक्त छद्मस्थ सरागी थे इससे पाप कहते है।

उत्तर पक्ष-अरे भाई केवली उत्तर देवे वह तो धर्म में है. और छद्मस्थ उत्तर देवे वह पाप मे है यह बात तुम्हारे गुरुजी ने किस शास्त्र से सिखलाई है जैन सिद्धात में यथातथ्य यानी सत्य उत्तर केवली देवे तो या छद्मस्थ साधू देवे तो दोनों को ही सत्य होने से धर्म कहा है किंतु पाप नहीं क्यों कि भगवंत के छद्मस्थ अवस्था में भी ४ ज्ञान थे सो ज्ञान में उपयोग लगा के तिल निपजना फरमाया और गोशाला के उखेडने से भी तिलका छोड मूल सहित उखेडा और दिव्य पानी की वृष्टि के कारण से वाही चिप गया और भगवत ने फरमाया उसी तरह से तिल निपजे और गोशाले ने पीछे तपास करी तो ७ ही तिल निकले परतु मिथ्यात्व के उदय से उलटी श्रद्धा धार के भगवत से बाहिर निकला वैसाही गोतम स्वामीजी को यथातथ्य स्वरूप भगवान् ने गोशाले का फरमाया परंतु मिथ्यात्व के उदय से गोशाला क्रोध प्रकट कर के साधवों को जलाये. प्रश्न का उत्तर तो जैसा छद्मस्थपने में गोशाला को वतलाया वैसाही केवलपने में गौतम स्वामीजी को गोशाला का हाल वतलाया परतु गोशाले ने प्रवल मोह कर्म के उदय से तिलका छोड उखेड डाला और साधु जलाये तो उसके कर्म की गति परंतु परमेश्वर का ज्ञान वतलाना

तो यथार्थ ही है परतु चूकना किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है ॥ इति ॥

तथा और भी सुनो कि जो छद्मस्थ उत्तर किसी प्रश्न को यथातथ्य देवे और सुनने वाला मिथ्यात्व के उदय से द्वेष करे या विपरीत पने से कोई नहीं माने व आस्रव करे तो छद्मस्थ साधु में किसी प्रकार का दोष नहीं और तुम लोग हठवाद से दोष कहोगे तो हम अगाड़ी प्रश्न करते हैं वह सुनिये किसी गृहस्थ ने साधु से प्रश्न किया कि तुम्हारे सिद्धांत मे कहीं हुई गंगा और सिंधु नदी कहा है तब साधु जी ने उत्तर दिया कि दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र के मध्यभाग में आके पूर्व पश्चिम समुद्र में मिली हैं यह सुनके वह गृहस्थ संशय के कारण से विचारै कि यह बात सत्य है कि मिथ्या है ऐसा निर्णय करने के लिये गगा और सिंध को देखने के वास्ते विद्यादि बल से जीव और नदी में जाके जल हिंसादि आश्रव करे तो बतलाने वाले साधु को पाप लगे कि जिस गृहस्थ ने किया उसको लगे कदाचित् तुम लोग हठ करके साधुजी को पाप कहोगे तो फिर साधूजी जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति व्याख्यान में वाचते है और उसमें गगादिक नदियों का और पर्वतादिकों का कथन विस्तार से करते हैं उसवक्त कोई पुरुष सुन के नदी आदि की हेर करने को जावे तो साधु को भी पाप लगना ठहरेगा. या तुम्हारे गुरूजी के रचे हुए नव पदार्थ के तेरा द्वार में सवर को तालाव का दृष्टांत दिया सो यह है. (तलाव नो नालो रुधे ज्यू जीवरे आश्रव रुधे ते सवर) तब कोई भोला जीवने यह

दृष्टांत सुना कि तालाव के नाला रुंधने से पानी नहीं आता है यह बात सच्ची है कि झूठी इसलिये तलाव का नाला रूक के देख लेवे फिर उसने रोक के देख लिया तो तुम्हारे गुरु को पाप लगना तुमको मानना पड़ेगा क्योंकि नाला रूंधने मे तो तिलका छोड उखेडने से भी ज्यादा आश्रव का संभव है तथा तुम्हारे गुरुजी ने करुणा का खंडन करने के लिये ढालां जोडी हैं सो सुनिये-ढाल (पेटदूखे तलफल करे जीव दोरा हो करे हाय विलाय सातावपराई सो जणा मरता राख्या होत्याने हो को पाप भ० ७) ॥

अब विचारो कि उक्त गाथा में ऐसा कहा कि सो जणा को हुक्को पाय के उनके पेट दूखते या, मरते राखै, ऐसे दृष्टांत की उक्ती की व्याख्या या गाथा सुन के किसी भोले ने विचारा कि हुक्का पीने या पिलाने से पेट दूखता रहै कि नहीं. मैं परीक्षा करू तब उसने हुका पेट दुखते वक्त पिया, या पिलाया. तो उसका पाप करने वाले को लगा कि तुम्हारे गुरुजी को लगा. अगर कहोगे कि हमारे गुरुजी को लगा, तो यह ढाल सावद्य ठहरेगी ,और सावद्य के उपदेश देने से तो तुम्हारे गुरूजी में तुमको साधूपना ही नहीं मानना पडेगा. अगर कहोगे कि हमारे गुरुजी तो ज्ञान बतलाते है और कोई दुर्वुद्धि करेगा तो करने वाले को लगेगा. परन्तु हमारे गुरुजी को नहीं तो हे मित्रों श्री भगवान् के वास्ते यह विचार क्यों नहीं करत कि भगवान ने तो ज्ञान बतलाया. और गौशालाजी ने विपरीत बुद्धि से पाप करा तो. गोशाला को पाप कहो. परतु पक्ष कपाते- खींचे हुए भगवंत पर क्यों पाप कहते हो । इति.

पूर्व पक्ष–हमने आजतक नहीं सुना कि फलाना मनुष्य किसी साधू से गंगादिक नदी का कथन सुन के गंगादिकों को हेरने गया या तलाव का नाला रूका या हुक्का पिया. यह तो कल्पना मात्र है और गोशाल ने तो तिलका छोड प्रत्यक्ष उखेडा है।

उत्तरपक्ष–अगर हमारे कहे हुए दृष्टांत कल्पना मात्र हैं तो तुम्हारे गुरुजी का दृष्टांत है कि हुक्का पा के पेट दुखते और मरते हुए को राखे यह किस नगर की बात है, या किसन कान से सुना है. कि सोजने को हुक्का पा के पेट दुखते और मरते हुए को राखे अगर कहो कि यह तो दृष्टांत है तो हमारा भी दृष्टांत है. तिलका छोड उखेडने का लेख है वैसे गौतम स्वामीजी को गोशाले का उत्तर देने स गोशाल ने साधों को जलाने का भी लेख है. तो दृष्टांत से दृष्टान्त और लेख से लेख समझ के पक्ष छोड़ना अच्छा है।

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी को तो ऐसा मालूम हो जावे कि यह हमारे गंगा नदियों का उत्तर देने से आश्रव करेगा तो उत्तर ही नहीं देवे. परंतु वह तो आगम्य काल का अनर्थ को नहीं जाने जिससे ज्ञानरूप भाव से उत्तर देवे तो उनका कुछ भी दोष नहीं।

उत्तरपक्ष–अगर तुम्हारे साधू आगम्य काल का दोष को नहीं जानते इससे उत्तर देवे उसमें दोष नहीं तो गोशालाजी को तिलका छोड़ भी आगम्य काल का दोष नहीं जाणे के भगवंत ने बताया. ऐसी तुम्हारे गुरुजी की ही खास श्रद्धा है तुमको मालूम होगा या नहीं होगा. तो भी हम पुरावा लिखते

भ्रमविध्वसन का ८२ मा पत्र में (ज्यो उपयोग देवे अने जाणे तिल उखेलणा कसी हम जाणे तो तिल वतावेज क्याने पिण उपयोग दिया विनाए कार्य किया छै) यह तुम्हारे गुरुजी का कहना है और हम तो कहते है कि भगवान् आगम व्यवहारी अतिशय ज्ञानी है यह अपने ज्ञान में जैसा देखे वैसा करै अल्पज्ञ पुरुषों की समझ का दोष है. जिससे आगम व्यवहारी महाज्ञानो में दोष निकाले क्योंकि गोशाला का चरित्र फुरमाया. उस वक्त तो परमेश्वर सर्वज्ञ केवली ज्ञानी थे और जानते भी थे कि यह चरित्र सुन के गोशाले का महा क्रोध उपजेगा. तो फिर भगवत ने गोशाले का चरित्र क्यों फरमाया तब तुमको भी कहना पडेगा कि भवितव्यता टाली ना टले. परमेश्वर तो उपकारी उपकार करते है तो वैसे ही समझ लेना कि छद्मस्थपने में भी भगवान् के ४ ज्ञान अति निर्मल और केवली नहीं परन्तु केवली समान सिद्धात में कहे है और उपकार दृष्टि से उपकार किया परन्तु भवितव्यता टाली नहीं टली. इति. " तजोकुवाद भजो अप्रमाद " ॥ इति तिल छोड उखेडने का यथार्थ निर्णयः ।

तथा तुम्हारी कल्पना है कि श्रीभगवान ने तेजु शीतल लेश्या प्रकट करके गोशाले को वचाया. और लेश्या फोडने में जघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पच क्रिया कही है परतु शीतल लेश्या का तो वहा पर नाम मात्र भी नहीं है. तेजु लेश्या और शीतल लेश्या दोनों लब्धि अलग २ है और सूत्र पन्नवणाजी में तो तेजस् समद् घात फोडती समय में जघन्य तीन क्रिया और उत्कृष्ट पच क्रिया का पाठ है. परतु

शीतल लेश्या का वहां पाठ ही नहीं और दूसरा यह भी कम समझ और जिनागम को यथावत् नहीं जानने का दोष है जो क्रिया लगने से चूके समझना क्योंकि सूत्र में दशवां गुण ठाणे तक समाय क्रियां लगे ऐसा लेख है तो कहो सर्व समाय क्रिया लगने वाले चूकने में हो सकते है कभी नहीं अगर चूकने में समझते होवो तो तुम्हार गुरुजी से पूछना कि छठा गुणस्थान का स्वामी छद्मस्थ साधु नहीं उतरते हैं या आहार विहारादिक हलन चलन रूप व्यापार में कितनी क्रिया लगती है और वह क्रिया लगने मे चूकते हैं कि नहीं सो विचारनाजी तथा इसके आगे जो तुम्हारे प्रश्नोत्तर के पृष्ठ चौथे ३ी पक्ति चौदमी से लेके पक्ति २५ मी तक का लेख में मतलब यह है कि छद्मस्थपने में भगवान ने गोशाले को दीक्षा देना तिलका छोड बताना तेजु लेश्या से गोशाले को बचाना यह तीनों कार्य किये और केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर इनहीं कार्य का अपने मुख से निषेध किया इति इसका प्रत्युत्तर यह तुम्हार। लिखना झूठा है क्योंकि सूत्र में भगवान ने ऐसा कदापि नहीं कहा है कि यह तीन कार्य मैने अच्छे नहीं किये. वल्कि उल्टा श्रीभगवान ने श्रीमुख से भगवतीजी के पन्द्रहवें शतक में फरमाया कि हे गोशाला मैने तेरे ऊपर उपकार किया. सो हमने ऊपर मूलसूत्र के पाठ से दिखाया है।

पूर्वपक्ष-लब्धि फोडना तो भगवान ने आज्ञा बाहिर कहा है. तो फिर खुद लब्धि फोड के गोशाले को बचाया तो यह निषेध हुवा ही है ।

उत्तरपक्ष-हे भाई तुमने ऐसा गोलमाल कथन करना ही

सीखा है क्योंकि तुम्हारे गुरूजी ने भ्रम विध्वसन में ऐसाही भ्रम रचा है. परतु हम तुमको पूछते हैं कि लब्धिमात्र फोडना आज्ञा बाहिर कहा कि कोई लब्धि फोडना कहा है अगर कहोगे कि लब्धिमात्र फोडना आज्ञा बाहिर कहा है तब तो केवल ज्ञानी की भी लब्धि कही है मनः पर्यय ज्ञान की भी लब्धि कही है अवधिज्ञान की भी लब्धि कही है. तो इन लब्धियों को भी आज्ञा बाहिर माननी पडेगी. तो यह कभी होता ही नहीं कि अवध्यादि ज्ञान की लब्धि का भी फोडना आज्ञा बाहिर है और अगर कहा कि कोई लब्धि को फोडने का प्रायश्चित्त है तब तो सूत्र में शीतल लेश्या की लब्धि का प्रायश्चित्त है ही नहीं. आज्ञा बाहिर कहीं भी नहीं कही है।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते हैं कि लब्धि तो मायी फोडे परतु अमायी न फोडे।

उत्तर पक्ष-हे भाई सूत्र भगवतीजी का तीसरा शतक उद्देश चौथा में वैक्रिय लब्धि का खुलासा पाठ है परतु शीतल लेश्या की लब्धि का नहीं शका होवे तो देख लेना जो मायी होता है उसको वैक्रिय करने का भाव होता है तिसका कारण सूत्र में खुलासा है कि जो मायी होता है वह अति सरस आहार करने के कारण से शरीर में अति बल की वृद्धि होने के कारण से उसको स्वच्छ रंग कुतूहल उत्पन्न होने से वैक्रिय लब्धि फोडे ऐसा सूत्र का मूलपाठ है तो वैक्रिय लब्धि के कथन का शीतल लेश्या का कथन कहना विरुद्ध है भगवान् ने गोशाला को बचाया सो तो करुणा करके और वैक्रिय का करणा तो कुतूहल रूप है सो यह तुम्हारा

लिखना ठीक नहीं कि लब्धि मायी फोड़े हां जरूर जो मायी साधु सरस भोजन पानादि करने के कारण से वैक्रिय लब्धि फोड़े वह आज्ञा बाहिर का कार्य है परंतु भगवान् तो परम संवेगवान ४ ज्ञान करके सहित थे और शीतल लेश्या लब्धि गोशाले पर दया अनुकंपा लाके साधु को बचाने के लिये प्रकट की है और शीतल लेश्या की लब्धि फोड़ना माया में या आज्ञा बाहिर सूत्र में कदापि नहीं कहा है।

पूर्वपक्ष-दया करके गोशाले को बचाया ऐसा कहां कहा है।

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई सूत्र भगवतीजी का पन्द्रहवां शतक में यह पाठ है सूत्र।

तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए, वेसियायणस्स, बालतवसिस्स, साउसिण, तेयलेस्सा, तेय, पडिसाहरण, ट्ठयाए, एत्थणं, अतराअहं, सीयालिय, तेयलेस्सं, णिसिरामि, इति॥

अस्यार्थः॥ तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए के० तिवारे हुं हे गोतम गोशाला मखलि पुत्र ने अनुकंपा ने अर्थे दया ने-अर्थे वेसियायणस्स, बाल, तवसिस्स, के० वैश्यायन बाल तपस्विनी अज्ञान कष्ट कारकनी-साउसिण, तेयलेस्सा, तेय, पडिसाहरण, ट्ठयाए, एत्थणअतरा के० तिका उष्णतेजो लेश्या नातेम मवे सहरवाने अर्थे दूर हरवाने अर्थे इहां बिचाले-अहं, सीयालिय, तेयलेस्सं, णिसिरामि, के० में शीतल तेजुलेश्या प्रेतमूकी इति सूत्रार्थः

अब देखो सूत्रमें तो श्रीभगवान ने श्रीमुख से

कि हे गौतम मैंने गोशाले को दया अनुकंपा करके बचाया, तो भाई दया करके बचाना तो धर्म में है तो गोशाला तो साधू था उसका बचाने में पाप तुम क्यों कर कहते हो।

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी तो गोशाला को बचाना मोह अनुकंपा में कहते हैं

उत्तरपक्ष-हे भाई इस सूत्र के मूलपाठ में तो मोह अनुकंपा का नाम ही नहीं है फिर तुम्हारे गुरुजी कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष-इस विषय में हमारे गुरुजी टीका की साक्षी बतलाते है.

उत्तरपक्ष-हे भाई तुम्हारे गुरुजी की टीका की साक्षी वैसी ही है कि जैसी गोशाला जी की दीक्षा देने में टीका बतलाई है और अर्थ छोड के मन मान्या भावार्थ कुछ कर लिया वैसी ही टीका यहां बतलाई है तथापि हम बतलाते है तुम्हारे भ्रम विध्वसन के पत्र ७१ में टीका लिखके अर्थ लिखाही नहीं, और समीक्षा में थोडा सा अर्थ लिख दिया सो बतलाते हैं.

टीका-(मैं पण इम कह्यो ते गोशाला नो रक्षण भगवत ने कियो ते सरागपणे करी अनै स्वानुभूति सुनक्षत्र मुनिनों रक्षण न कह्यो ते वीतरागपणे करी एतो गोशाला ने वचायो ते सराग पणो कह्यो तो ए सराग पणा में धर्म किम होय) इति.

अब विचारो भाई की प्रथम तो तुम याद रखणा कि सूत्रमें तो सराग पणो का नाम ही नहीं है, और टीकाकार जी ने लिखा है तथापि विचारना कि टीका की साक्षी देते हो. परतु टीका कार जी की श्रद्धा तो तुम्हारी जैसी भगवान को

चूकने की नहीं थी, केवल तुम तेरे पथियों को भ्रमके प्रताप से दीखता है.

पूर्वपक्ष–अगर चूकने की श्रद्धा टीकाकार जी की नहीं होती तो टीका में ऐसा क्यों कहा कि गोशाले को सरक्षण सरागपणा करके भगवान ने करा.

उत्तरपक्ष–हे भाई टीकाकारजी ने तो सशय छेदने निमित्त यथातथ्य अर्थ की घटना करी है परतु तुम्हारे गुरुजी ने उलटी श्रद्धी है सो हम टीका लिख के बतलाते है परतु तुम याद रखना कि जहा हम टीका की साक्षी बतावें वहा ऐसा मत कहना कि हम टीका नहीं मानते है क्योंकि यहा पाठ में सराग का कथन नहीं है और टीका में सराग पने का कथन है परतु मूल सूत्र के पाठ में नहीं है तो भी तुम्हारे गुरुजी ने टीका का आश्रय लिया है इमसे चेताते हैं अब सुनिये टीका लिखते हैं।

टीका–इह च यद्गोशालस्य सरक्षणं भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकर स्त्वाद्भगवतः यच्च सुनक्षत्र सर्वानुभूति मुनि पुगवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीव कत्वादवश्य भावि भावत्वा द्वेत्यवसेयमिति ॥ टीका ॥

टीकार्थः—यहा तो यह जो गोशाला की सरक्षण भगवान ने किया वह सरागपणा करके भगवान् का दयारूपी एक रसपणा से ज्यो तो सुनक्षत्र सर्वानुभूतिजी ज्यो श्रेष्ठ मुनि है उनकी रक्षा नहीं करेंगे सो वीतरागपणा करके लब्धि का जीव का पणा का अभाव से अथवा भवितव्यता का अभाव से यह वार्ता जाननी इति टीकार्थ।

अब देखो टीकाकार जी ने तो लिखा कि गोशाला का संरक्षण भगवान् ने सरागपणे दया का रस से किया. तो दया का कारण तो धर्म में है तो फिर तुम टीका का नाम लेके भगवान को चूकना क्यों कहते हो?

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजीने भ्रम विध्वंसन में लिखा है कि सरागपण में धर्म नहीं होता।

उत्तरपक्ष—हे भाई यह कथन पहिले हम सूत्र साक्षी से सिद्ध कर दिया है कि छद्मस्थपना का धर्म तो सरागपणे से होता है क्योंकि ४ चारित्र पाच संजय इनको भगवान ने सरागी कहे हे सूत्र भगवतीजी का शतक २५ मा उद्देश छठा और सप्तम में हैं तो कहो यह सराग सयम में धर्म है कि नहीं।

पूर्वपक्ष-सराग सयम में तो धर्म है ऐसा हम भी मानते हैं क्योंकि अभी पचम काल के जन्मे तो वीतराग संयमी होते ही नहीं किंतु सराग संयमी होते है और सराग सयमी में पाप मानिये तब तो पचम आरा में धर्म ठहरे ही नहीं इससे सराग संयम भी धर्म में है।

उत्तर पक्ष—तो हे मित्रो वैसे ही तुम क्यों नहीं विचारते हो कि श्रीभगवान् भी सामायिक चारित्री सराग सयमी थे इससे टीकाकारजी ने सरागी पने से गोशाला को बचाने का लिखा तो सराग सयमी का कार्य तो सराग पने से ही होता है और वह धर्म के कार्य में धर्म में है इससे गोशाले को सराग पने से दयाभाव से बचाया तो उसमें भी धर्म है इस तरह न मानोगे तो फिर सराग सयम में धर्म ठहरेगा ही नहीं देव गुरु धर्म पै राग रखणा वह तो धर्म में है नहीं तो फिर सर्वोतु

भूतिजी अणगार ने श्रीभगवान पै आक्रोश करता हुवा गोशाले को धर्माचार्य के अनुराग करके रोका कि हे गोशाला भगवान तेरे उपकारी हैं तू इनसे द्वेष मत कर तो कहो भाई सर्वानुभूतिजी अणगार को श्रीभगवान ने बोलने की मनाई करी थी तो भी धर्माचार्य के अनुराग से बोले तो उनको धर्माचार्य पैं राग रखने से धर्म हुवा कि पाप क्योंकि मूलपाठ में है कि सूत्र-तेणं, कालेणं, तेणं, समएणं, समणस्स, भगवउ, महा वीरस्स, अंतेवासी, पाईणं, जाणवए, सव्वाणु, भूई, णाम, अणगारे, पगइ, भद्दए, जाव, विणाए, धम्मायरियाणुरागेणं, एयमट्ठ, असद्दहमाणे, उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठेइत्ता । इति

इसका अर्थ सुगम है और पहिले लिख चुके है यहां मूलपाठ में कहा कि सर्वानुभूतिजी धर्माचार्य के राग से गोशाले का वचन भगवान को अवर्ण वाद बोलने रूप को सहन नहीं कर सके तब उठके गोशाले से बोले तो कहो भाई सर्वानुभूतिजी का श्रीभगवान पर राग करना धर्म है कि पाप में है ।

पूर्वपक्ष- सर्वानुभूतिजी का तो भगवान पर राग करना धर्म में है, क्योंकि हमारे गुरूजी ने भ्रमविध्वंसन के ६२ मा पत्र में लिखा कि —अने ज्यो आज्ञा बारे हुवे तो भगवान तो पहिले जाणता हुता. जेहुं बरजाऊ छूं पिण एतो बोलसी तो आज्ञा बारे थासी. इम बोल्या आज्ञा बारे जाणे तो भगवान बोलवारो क्यां ने कहे जो आज्ञा बारे हुता जाणे तो भगवान साधा ने आज्ञा बारे क्यों न कीया तथावली बोल्या पिछे पिणनिषेधता जे म्हारी आज्ञा बारे बोल्या इसो काम कोई साध

करज्यो मती इम कहितासो इम विण कह्यो नही भगवान् तो अफूटा दोनों साधू ने सराया. विनीत कह्या छे. ते पाठ लिखी छे. इहा भगवत ने सर्वानुभूति ने प्रसम्यो घणो विनीत कह्यो तिमि सुनक्षत्र मुनि ने विनीत कह्यो ॥इति॥

उपरोक्त भ्रमविध्वंसन का लेख है जिससे सर्वानुभूतिजी का बोलना भगवान पर अनुराग करना यह तो सर्व काम धर्म के है क्योंकि सर्वानुभूतिजी तो श्री भगवान के आज्ञा के आराधिक थे और जो सर्वानुभूतिजी को राग करने में दोष होता तो फिर वह आराधिक कैसे होते. इस से सर्वानुभूतिजी का अनुराग धर्म में ही जानना चाहिये.

उत्तरपक्ष-तो हे भाई ऐसे ही गुरु जी को समझादेवो कि सरागपणे में धर्म नही है ऐसी श्रद्धा नहीं रक्खे और भ्रमवि-ध्वंसन का ७१ मा पत्र में सरागपणे में धर्म नहीं ऐसा लिखा सो शुद्ध कर लेवो. और जैसे सर्वानुभूतिजी सरागी थे जिससे परमेश्वर पर सरागपणा किया वह धर्म में है वैसेही भगवत श्री महावीर जी ने दया में सरागपणा करके गोशाले को बचाया सो सरागी का देव गुरू धर्म पर सरागपणा भी धर्म का कारण है. जब भगवान सरागी थे जिस से दया धर्म के राग से बचाया, परतु अन्य राग से नहीं.

पूर्वपक्ष-दया रूप राग से बचाया ऐसा कहा लिखा है.

उत्तरपक्ष- इसी सूत्र की टीका में कहा है सो तुम्हारे गुरू जी ने टीका तो लिखी परंतु अर्थ नहीं किया, सो हमने टीका अर्थ दोनों लिख दिया है, कि (दयैकरसत्वात्) दया रूपी एक रसपणा से यह टीका का लेख है, और मूल सूत्र पाठ

में भी लिखा है सो विचार के पक्ष छोड़ना ठीक है. और गुरूं जी को भी समझादेना चाहिये कि सर्वानुभूतिजी का धर्माचार्य के ऊपर राग करना धर्म में है तो परमेश्वर की दया का रस रूप राग धर्म में क्यों नहीं मानते हो.

पूर्वपक्ष-अगर गोशाले को बचाने में धर्म हुवा तो फिर श्री भगवान के सामने गोशाला ने तेजुलेश्या से दो साधुवों को भस्म किया, उससमय उनको क्यों न बचाया.

उत्तरपक्ष-हे भाई यह शंका तो टीकाकार जी ने मेटही दी है कि वीतराग लब्धि से उपजीवना नहीं करते हैं क्योंकि केवलज्ञानी है सो निश्चय ही जानते हैं कि इनका मृत्यु आगया जिससे उपजीवना नहीं किना परतु इतनी तो विचारो कि श्रीभगवान जानते थे कि यह दोनों मुनि गोशाले से बोलें बगेर नहीं रहेंगे और गोशाला इनको भस्म करेगा तो फिर इन दोनों संतो को विहार क्यों न कराया, या अलग दूसरे ठिकाने क्यों नहीं भेज दिये, क्योंकि लब्धि फोड के बचाने में तो तुम पाप मानते हो, परतु विहार कराने में तो पाप नहीं था क्योंकि विहार कराना तो तुह्मारे गुरु जी भी धर्म में मानते हैं तो फिर विहार क्यों न कराया.

पूर्वपक्ष-उन दोनों साधुवों का आयुष्काल आ गया था और भगवान नें जान लिया था कि इन दोनों साधुवों की घात गोशाला से ही जरूर होगी टाली नहीं टलेगी, तिससे विहार न कराया, परतु आनद साधुके साथ गौतमादि साधुवों को कहलाया कि गोशाले से धर्म की चर्चा मत करना क्योंकि गोशाला ने साधुवों से मिथ्यापणा द्वेषभाव को अंगीकार किया

है यह साधुवों की रक्षा के वास्ते कहलाया, क्योंकि हमारे गुरु जी ने भी भ्रमविध्वंसन में ६३ मा पत्र में लिखा कि, (गोशाले कह्यो हुं बालनाक सुंत बालवारा कारण माटे भगवान् साधाने बोलणो वर्ज्यों छै) इससे भगवान् ने रक्षा निमित्त वर्ज दिया, परंतु होन हार नहीं टरे.

उत्तरपक्ष-हे भव्य ऐसे ही तुम समझ लेवो कि श्रीपरमेश्वर ने तो साधू की रक्षा करने में धर्म जाना है, तबही आनंद साधू के साथ गोशाले से बोलने का साधवों को मनादि किये हैं, परतु भवितव्यता का क्या, सो तुम ऐसी व्यर्थ तर्कना मत करो, कि भगवान ने दो साधुवों को क्यों न बचाये, फिरयह भी विचारो कि सूत्र समवायांग जी का ३४ वां समवायाग में श्रीभगवान के ३४ अतिशय का वर्णन है, तिसके मूलपाठ में कहा कि भगवान् विचरे जहां २ पच्चीस योजन तक अति शीत मार मरगी नहीं होवे, देवता मनुष्य तिर्यच के परस्पर वैरभाव नहीं जागे, तो फिर भगवान के समव सरण में गोशाला ने उपसर्ग कैसे करा.

पूर्वपक्ष-यह तो भवितव्यता से हुवा. जिसमे इस बात को आश्चर्य भूत हुई सिद्धांत में कही है.

उत्तरपक्ष-ऐसेही तुम समझ लेवो कि श्रीभगवान ने सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि की रक्षा होणहार से नहीं करी होनहार टाले नहीं टलता है, साधू साध्वी की रक्षा करने का धर्म तो श्रीभगवान ने बताया है तिससे सूत्र ठाणांग का पंचमा ठाणे का उद्देशा दूसरा में कहा कि साधू साध्वी को कादा में खुची हुई को पानी में डूबती हुई को ग्रहण कर लेवे तो साधू

भगवान की आज्ञा को नहीं उलंघे तो देखो साधू की रक्षा करने में पाप होवे तो साधू उसको जल से क्यों निकाले, परंतु पाप नहीं, तथा सूत्र व्यवहार के दूसरा उद्देश में कहा कि जिस साधू को नवा साधू पना आवे, और दोष वाला होवे और रोग से गिलान हो गया होवे, तो उसे नवी दीक्षा आवे, ऐसा दोषवान साधू को भी जबतक उसका रोग नहीं मिटे तब तक गच्छ बाहिर करना नहीं कल्पे, किंतु बहुत उत्साह सहित समुदाय के साधुवों को उस सदोष साधू की व्यावच करणी कल्पे, यह कथन मूलपाठ में है, अब देखो भाई साधू को नवीन साधू पणा योग्य है, तथापि रोगी अवस्था में होवे तो उसको समुदाय बाहिर नहीं करे, क्योंकि रोगी को समुदाय से अलग करने से साधु को करुणा नहीं रेवे, और जगत मे धर्म की निंदा होवे, इससे परमेश्वर ने रोगीला होवे तो नवीन दीक्षा योग्य सदोष साधू की भी अन्य साधू को भी व्यावच करने का कल्प बताया, परन्तु गच्छ से बाहिर करना परमेश्वर ने नहीं बताया, तो फिर हे भाई गोशाला भी साधू था, और वैश्यायन बाल तपस्वी उसको जलाता था, तिसवक्त गोशाले को भगवान् अपना शिष्य जान के करुणा भाव से बचाया, जैसे साध्वी को जल से मणाती को करुणा करके, काढे तो साधू को दोष नहीं, तैसेही वैश्यायन बालतपस्वी के तेजु लेश्या की अचित्त अग्नि से, बलते हुए अपने शिष्य गोशाले को भी बचाने में दोष नहीं किंतु करुणारूप धर्म में है—

पूर्वपक्ष–गोशाले को साधू कहा कहा है.

उत्तरपक्ष-प्रथम तो तुमने प्रश्नोत्तर के चौथे पृष्ठ पर लिखा कि, श्रीभगवान् ने गोशाले को दीक्षा दी और दीक्षा देना तुमने माना तो गोशाला साधू होही चुका, तथा तुह्मारा भ्रमविध्वंसन का ८३ मा पत्र पर लिखा है, गोशाले को साधू माना है, और साधू को भगवान् ने वचाया सो धर्म में है परंतु चूकने मे कदापि नही, वस इसके आगे जो तुह्मारा चौथा पृष्ठ २६ मी पक्ति से लेकर पचम पृष्ठ २० मी पक्ति तक का जो लेख है वह पूर्व पक्षादिक क्रिया से प्रत्युत्तर लिखते हैं.

पूर्वपक्ष-खैर हमारी भगवान् को चूकने के विषय की सूत्र साक्षी सत्य नही ठहरी तो आप हमको सिद्धांत का पाठ ऐसा वतलावो कि श्रीभगवान् नहीं चूके.

उत्तरपक्ष-हे भाई चूकना सिद्ध ही नहीं तो नहीं चूकना तो कुदरती ही सिद्ध हो गया. तथापि हम तुमको सूत्र की साक्षी वतलाते हैं. सूत्र आचाराग का पहिला स्कंध का ८ मा अध्ययन की ८ मी गाथा में खुलासा पाठ है सो सुनिये।

सूत्र-णचाणंसे, महावीरे, णोविय, पावग, सयमकासी, अणेहिंविण, कारित्था, कीरंतपि, णाणु, जाणित्था, इति।

अस्यार्थः-णच्चाणमे, महावीरे, के० हेयोपादेय स्वरूप जाणी नै तेणें भगवत श्री महावीर-णोविय, पावगं, संयमकासी, के० आपण में पाप न कीधो-अणेहि, विणकारित्था, के० अनेरा पासे न कराव्यु—कारत, पिणाणु, जाणित्था, के० अनेरे करता अनुमोद्यो नहीं इम त्रिविध त्रिविधे श्री महावीर देवे पाप निषेध्यो ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में कहा कि श्री महावीर देव ने पाप किया

नहीं. कराया नहीं. करते को भला जाना नहीं. तो तुम समझ लेवो कि भगवान् को चूके का आल देना अच्छा नहीं तथा इसी उद्देश की १५ मी गाथा में पाठ है कि (छउम स्थोवि, परक्कममाणो, णपमाय, सयपि, कुव्वित्था, इति)

अस्यार्थः-छउमत्थोवि, परक्कममाणो, के० छद्मस्थ छतो पिण विविध अनेक प्रकार संयमानुष्ठान विषे पराक्रम करता. णपमाय, सियपि, कुव्वित्था, के० एके वार प्रमाद कषायादिक न करे स्वामी इणपरे प्रवृत्या इति सूत्रार्थः ।

अब देखो भाई छद्मस्थपने में भगवान् ने एक वार भी प्रमाद पाप नहीं किया. तो फिर तुम्हारा लिखना सर्वथा असभव हुवा. कि भगवान छद्मस्थपने में चूके. सूत्र की प्रतीत होवे तो कपोल कल्पना को त्याग करना ही ठीक है.

पूर्वपक्ष-इसका अर्थ तो हमारे गुरुजी ऐसा करते हैं कि यह तो सुधर्म स्वामी ने भगवान् का गुण वर्णन किया है. इससे गुण वर्णन का प्रकरण में गुण ही होता है । अवगुण की अपेक्षा यहा नहीं किया ।

उत्तरपक्ष-हे भाई यह कहना भी सूत्र को अच्छी तरह से नहीं जानने का है क्योंकि सूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि सुधर्म स्वामी ने गुण के प्रकरण में गुणहीज करे. अवगुण को छोड़ दिये.

पूर्वपक्ष-जब सूत्र में क्या कहा है ?

उत्तरपक्ष-हे भाई आचाराग का नवमाऽध्ययन का वर्णन शुरु हुवा तहा ऐसा पाठ है

सूत्र-आहा, सूय, वदिस्सामि, जाहासे, समण, भगवं, उट्ठाए, इति ।

अस्यार्थः-आहा, सूय, वदिस्सामि, के० श्री गुरु शिष्य
मते कहे छे जिसा मैं साभल्यो तिम हु कहेस्यो । जाहासे, समण
भगव, उट्ठाए, के० जिमते श्रमण भगवंत महावीर स्वामी
उग्रविहार आदरी विचरे इति सूत्रार्थः ।

अब देखो सूत्रकृत सुधर्म स्वामी तो ऐसे कहते है कि
मैने जैसा श्रमण भगवत महावीर स्वामी का विचरणा यानि
जैसे विहार किया. जैसा मैंने सुना तैसे मैं कहूंगा ऐसा कहा
है परंतु ऐसा नहीं कहा कि मै भगवान का गुण २ वर्णन
करूगा. और ऐसा भी नहीं कहा कि अपनी मति से भगवान
का गुण वर्णन करूगा. सुधर्म स्वामी ने तो साफ कहा कि
जैसा मैंने सुना वैसा यथातथ्य कहूगा. क्योंकि गणधरों को
तो सिखाने वाले तीर्थंकर ही है (अत्थं, भासइ, अराहा
सुत्तं, गुथइ, गणधरा) इति वचनात् और तीर्थंकर जो स्वरूप
कहते हैं वह यथातथ्य ही कहते हैं परंतु चूके को नहीं चूका
ऐसा कदापि नहीं कहते हैं क्योंकि वीतराग होने के बाद सूत्र
प्ररूपने से कोई शंका करे कि भगवत के गुण भगवत ने
सुधर्म स्वामी को कैसे सिखाये क्योंकि आपके गुण आप मुख
से नहीं कहैं तिसका उत्तर हे भव्य विना सुने तो (आहासुत्तं)
शब्द सूत्र में कहा ही कैसे और सूत्र में कहा तो सुधर्म स्वामी
के गुरू तो महावीरजी ही थे सो दीपिका में भी कहा है कि
(आर्य सुधर्म स्वामी के जम्बू स्वामी ने पृच्छते कथयति
यथाश्रुतं वदिष्यामि) इति अर्थः ।

आर्य सुधर्म स्वामी है सो पूछने वाले जम्बू स्वामी के
ताई कहते है कि जैसे मैने गुरुमुख से सुना वैसेही कहूगा इति

अब देखो भाई दीपिका में भी कहा है कि सुधर्म स्वामी जम्बू स्वामी के ताई ऐसे कहते भय कि जैसा मैंने गुरुमुख से सुना वैसा मैं तुझे मते कहूगा तो देखो सुना तैसा कहा तो गणधर तो सूत्र तीर्थकर से ही सुन के रचे है और यह शका तुम्हारी है कि आपके गुण आप कैसे सिखाये तो भाई भगवत ने अपने गुण करने का न कहा परंतु जैसे आप छद्मस्थपने में विचरे थे वैसा हाल सुनाया तिसको सुन के सुधर्म स्वामी ने सूत्र मे गूथा तो भगवत वीतरागी थे जो चूके होते तो कभी नई गोपते परतु नहीं चूके नहीं चूके नहीं चूके सिद्धांत प्रमाण से नहीं चूके।

पूर्वपक्ष–हमने गुण के विषय में गुण ही होवे उस में कोणीक राजा की साक्षी दी है कि कोणीक राजा पिता का अविनीत था. परंतु सुधर्म स्वामी ने गुण के वर्णन में माता पिता का विनीत कहा।

उत्तरपक्ष–हे भाई प्रथम तो यह साक्षी ही सूत्र के अजानपने की है क्योंकि सूत्र में कोणीक को विनीत कहा उस वक्त वो विनीत ही था परतु अविनीत को विनीत नहीं कहा क्योंकि सूत्र निरयावलीका में कहा है कि पहिले तो कोणीक ने पिता को राज्य का लोभ से पिंजरे में देदिया. पीछे माता के समझाने से श्रेणिक राजा पैं अत्यन्त देवगुरु सरीसा प्रेम लाये और पिंजरा खोलने को स्वय गये परतु होतनकाल से राजा ने उलटा समझा कि मुझे यह पुत्र मारने को आता है ऐसा जान के तालपुट जहर खाके मरगया. तत्पिछे कोणीक ने बहुत शोच किया. सो सूत्रपाठ दिखाते है।

सूत्र–अहोणं, मए, अधन्नेण, अपुन्नेण, अकयपुन्नेणं, दुठकयं, सेणियं, राय. पिय, देवगुरु, जणग, अचतनेहाणु, रागरत्त, नियल, बधणं करत्तेणं इति ।

अस्यार्थः–अहो २ मे अधन्येन पूज्य रहित अकृत पुन्य दुष्ट पणो कीधा में श्रेणिक राजा देव गुरु सरीसो अतिहि स्नेह ने अनुरागी ने वेडी बंधन कीधा हुतो ॥ इति सूत्रार्थ

अब देखो सूत्र के मूलपाठ मे कोणीक ने श्रेणिक को पिंजरे में देने का सोच किया और फिर अगाड़ी इसी सूत्र में कहा है कि राजा कोणीक को राजगृह में रहते पिता का शोक बहुत होता हुवा तिस्से राजगृह नगर को छोड चंपानगरी में जाके बसे यह कथन सूत्र का मूलपाठ में है ग्रथ बढ़ने के भय से हमने नहीं लिखा है शंका होवे तो देख लेना अब विचारो कि सुधर्म स्वामी ने कोणीक को विनीत सो राजगृह से चंपा में गये बाद कहा क्योंकि उवाई सूत्र में अधिकार चंपा नगरी का है परंतु राजगृह का नहीं सो कोणीक पहिले अविनीत था सो सूत्र में अविनीत कहा पीछे विनीत हुवा सो विनीत कहा जैसे कि सूत्र राव प्रश्नेणि में राजा प्रदेशी पहिले तो महा अधर्मी था सो अधर्मी कहा फिर केशी स्वामी के समझाने से धर्मी हुवा तो धर्मी कहा वैसे ही कोणीक अविनीत था तो अविनीत कहा फिर माता चेलणा के समझाने से विनीत हुवा तो विनीत कहा वर्तमान काल में कोई पुरुष पापी होवे तो पापी कहा जावे फिर पाप छोड़ के धर्म अंगीकार कर लेवे तो धर्मी कहा जावे यह क्या नीति की बात है कि एक वक्त कोई खोटा काम कर लेवे तो फिर

उसको उमर तक खोटा कहना चाहे वह धर्मी होगया होवे तो भी पापी कहना नहीं २ बुद्धिमान को जिस वक्त जैसा होवे उस वक्त वैसा ही कहना चाहिये नहीं तो फिर प्रदेशी राजा को भी तुम को पापी कहना पड़ेगा।

पूर्वपक्ष-प्रदेशी राजा पाप छोड़ के पीछे महा धर्मवान हुए है।

उत्तर पक्ष-बस वैसे ही कोणीक राजा भी अविनीत पणा को छोड़ के श्रेणिक को देवगुरु सरीसा समझा है सो विनीत ही है तिस्से सुधर्म स्वामी ने उवाइ में श्रेणिक के अतकाल किये पीछे चपा नगरी आये बाद विनीत कहा है सो कोणीक का नाम ले के गुण के प्रकरण में गुण ही हो सकते है ऐसा कहके भगवान महावीर स्वामी दोष सिद्ध करने को सूत्र की विपरीत अर्थ करने की चेष्टा करनी मिथ्या है क्योंकि कोणीक को सुधर्म स्वामी ने ऐसा नहीं कहा कि कोणीक ने सर्व भव में माता पिता का अविनय किया ही नहीं सूत्र में तो वर्तमान में जैसा कोणीक था वैसा कहा और भगवत महावीर स्वामी का कथन तो जैसा यथातथ्य सुना वैसा कहा कि भगवत ने छद्मस्थपने में एकही वार पाप नहीं लगाया तो कोणीक के विषय का कथन और भगवान के विषय का कथन एक जैसा नहीं है तो सूत्र साक्षी सहित महावीर प्रभु दीक्षा लिये बाद नहीं चूके यह सिद्धात से सिद्ध हुवा ॥ इति प्रत्युत्तर दीपिकाया प्रथम प्रत्युत्तर समाप्तम्॥

❀ प्रश्न दूसरा प्रारंभ ❀

साधूजी के सिवाय दान में एकांत पाप कहते हो सो पाठ दिखलावो.—

उत्तर तेरे पंथियों का— श्री भगवान महावीर स्वामी से गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि, असंयति अव्रती को सूझता असूझता सचित्त अचित्त, अशन पान (खानपान) देवे दिवावे देते हुए को अनुमोदना करे तो काई हुवे.

उत्तर — (एगतसोसे, पावे, कम्मे, कज्जति,) एकात पाप कर्म होवे किंचित् निर्जरा नहीं। यह पाठ भगवती सूत्र के अष्टम शतक के छटे उद्देश में है यह तेरे पाथियों का उत्तर है.।

अब सत्यासत्य का निर्णय सुनिये. हे तेरे पथी मित्रों यह तुम्हारा उत्तर गोलमाल सूत्र से विरुद्ध है जो सूत्र पाठ अर्थ टीका में कदापि नहीं मिले. ऐसा क्योंकर लिख दिया. परतु तुम क्या करो तुम्हारे को तो तुम्हारे गुरुजी ने गोलमाल वार्ता सूत्र का नाम ले के सिखाई वही तुमने पुस्तक में छपवा दी है परंतु हमारा यह कहना है कि सूत्र की वार्ता को विना विचारे सूत्र का नाम ले के छपवानी नहीं थी. परंतु खैर शुक (सुवे) को जैसा पढाने वाला बुलावे वैसे ही सुवा बोले. खैर हुवा सो हुवा परन्तु अब सूत्र भगवतीजी का अष्टम शतक का छठे उद्देश पाठ अर्थ टीका सहित लिख दिखाते हैं सो एकाग्रचित्त होकर के ध्यान लगा के श्रवण करिये।

समणो, वासगस्सण, भंते, तहारूव, असजय, अविरय, अपडिहय, पच्चरकाय, पावकम्मे, फासुएणवा, अफासुएणवा, एसणिज्जेणवा, अणेसणिज्जेणवा, असण, पाण, खाइम, साइमेण, पडिलाभे, माणस्स, किंकज्जई, गोयमा, एगत, सोसे, पावे, कम्मे, कज्जइ, णत्थिसे, काइ, निज्जरा कज्जइ, ॥ इति ॥.

अस्यार्थः—समणो, वा, मगस्सण, भंते, के०—श्रमणोपासक नइहे भगवन् तहारुव, के०—तथा रूपचारित्र गुण करी रहित. असजय के० असयति, अविरय, के० अविरति, अपडिहय, पच्चरकाय, पावकम्मे, के० पचख्यान थी पाप कर्म जिणई इत्यादिक गुण करी रहित पात्रनो विशेषण कह्यु ते मतइ फासुएणवा, के० फासुक, अचित्त, अफासुएणवा, के० अफासुक सचित्त सजीव-एसणिज्जेणवा, के० एषणीय दूषण रहित अणे सणिज्जेणवा, के० अनेषणीय दूषण सहित एहवा, असण, पाण, खाइम, साइमेणं, के०,-अन्नपाणी खादिम सादिम पडिलाभे, माणस्स, किंकज्जइ, के० प्रति लाभ तो थको देतो थको तेहने काइ फल हुवे. इति प्रश्न।

उत्तर-गोयमा, के० हे गौतम-एगत, सोसे, पावकम्मे, कज्जइ, णत्थि, सेकाई, निज्जरा, कज्जइ, के०—एकात से तेहने पाप कर्म हुवइ एतले गुण रहित नइ फाशुक अफाशुकादिक दान ते पाप कर्म फल कह्यो. अने निर्जरा ने अभाव कह्यो. पणि तिहा गुरु सम्प्रदाय इए जाणु जे मोक्षनो कारण तेन हुइ पणि अनुकपादान कि हाई निषेध्यो नथी सूत्र मेई सयति नइ दान कह्यो. ते मोक्षार्थे इकह्यो छै तो पणि गृहस्थी

नइ अनुकंपादान अने उचितदान देवानो निषेध नथी. उक्त च (मोरकत्थजं, दाण, तंपइएसो, विहीमखाउ, अणुकंपा, दाण, पुण जिणेहिं. नकयाइं, पडिसेद्धंति ।

पुनरुक्तच (अभयं, सुपत्तदाण, अणुकंपा, उच्चिय, कित्तिदाणाइ, दुन्नवि, मोरकोभणिउ तिन्निविभोगा, इयदिति ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अव टीका भी सुनिये. टीका-सूत्र त्रयेणापि चानं नमोक्षार्थ मेव दान तच्चिचितिंतं. यत्पुनरनुकंपादानमौचित्य दान वा तन्नचितितं निर्जराया स्तत्रानपेक्षणीमत्वाद नुकं पौचित्ययौ रेव चापेक्षणीयत्वादिति. उक्तच-मोरकत्थ, जंदाणं, तंपइएसो, विही, ममरकाउ, अणुकंपा, दाणपुण, जिणेहि, नकयावि, पडिसेद्धंति इति टीकार्थः ।

इन सूत्र तीनों करके, यानी समणो वा सग फासुक एपणीक आहार. तथा रूप के मुनि को प्रति लाभे. और समणो वा अफासुक अनेपणीक तथा रूप के मुनि को प्रति लाभे. और समणोपासक तथा रूप के असंयति अव्रतीको प्रतिलाभे. इन तीनों सूत्रों करके मोक्ष के अर्थ जो दान देणा तिनका चिंतना करी गई और फेर जो अनुकंपादान है. उन की यहा चिंतना नहीं करनी. निर्जरा की तहा अपेक्षा नहीं होने से, अनुकंपा और औचित्य इनकी ही अपेक्षा होने से. यह कहा भी है कि मोक्ष के अर्थ जो तथा रूप के असयति अव्रती मिथ्यात्व के भीखधारी को धर्म बुद्धि करके दान देवे तिसकी यह विधि कही है. यानी एकात पाप कहा है. पुनः जो अनुकपा करके दुखी भूखा को अन्नादिक देना तिसका

तीर्थंकर ने कोई भी जगह निषेध नहीं किया है इति टीकार्थः।

अब विचारो कि भाई सूत्र के अर्थ में और टीका में तो साफ लिखते है कि तथा रूप के असयति अव्रती का गुरु बुद्धि से मोक्षार्थ देवे उसको एकात पाप कहा. परन्तु अनुकपा करके दुखी आदिक को देवे उसमें एकात पाप तीर्थंकर ने कहा भी नहीं कहा. ऐसा टीका अर्थ दोनों में साफ खुलासा है. तो हे मित्रों तुमने तथा रूप के असयति अव्रती को मोक्षार्थ देवे उस अर्थ को छोड के गोलमाल भावार्थ लिख दिया कि असंयति अव्रती को देवे दिवावे देते हुए को भला जाणे तो एकांत पाप होवे. ऐसा विपरीत अर्थ का लेख मूल पाठ प्राचीन अर्थ टीका सर्व से विरुद्ध लिखा है. सो हमने मूलपाठ प्राचीन अर्थ और अभयदेव सूरिजी कृत टीका की जो विक्रम संवत् ११३० के लगभग वनी है वह ऊपर लिख दी है तो अहो देवानुप्रिया विचारो कि सैंकडों वर्षों का प्राचीन अर्थ और टीका से विरुद्ध अर्थ कि जो मूल पाठ से ही नहीं मिले ऐसा पक्षपात से किसी के सिखलाने से नहीं लिखना. क्योंकि इससे आत्मा को भी इस लोक परलोक में नुकसान और दूसरे मनुष्य भी जैनमार्ग की निंदा करें ऐसा अनुचित सिद्धात विरुद्ध काम की हिम्मत नहीं चलानी थी. जरा परभव का भी भय रखना था. परन्तु खैर अब भी सूत्र अर्थ टीका को देख करके अशुद्धता मेटो.

पूर्वपक्ष–हमतो ऐसा कहते हैं-कि अव्रती अपचखाणी जिसके व्रतपचखाण नहीं होवे उन मगता भिखारी आदि सर्व को मोक्षार्थ नहीं जानके किंतु, करुणा करके दान देवे

उसमें भी एकात पाप होता है, और साधूपणा का गुण करके सहित यानी संयमवंत को दान देवे, उसमें एकांत धर्म कहते हैं, परतु भेष का कारण कुछ नहीं.

उत्तरपक्ष—हे मित्र ऐसी तुह्मारी श्रद्धा न होवे कि भेष का कारण कुछ भी नहीं तो तुह्मारे तेरेपंथियों के भेष के सिवाय अन्यभेष यानी लिगवान् साधू का दान सन्मान करने वाले को तुह्मारा गुरुजी और तुम पाप क्यों श्रद्धते हो, क्योंकि सिद्धात में तो तीनों भेषयानी स्वलिंगी बीतराग के साधू का भेष में अन्य दर्शन तापसादिक का भेष में और गृहस्थी का भेष में इन तीनों भेष में भाव चारित्र होता है, ऐसा सूत्र में खुलासा लिखा है, सो सूत्र का पाठ लिखते है ध्यान लगा के सुनिये. सूत्रपाठ.

पुलाएण, भते, किं, सलिगे, होज्जा, गिह, लिंगे, होज्जा, गो, दव्वलिंग, पडुच, सलिंगे, वा, होज्जा, अणलिंगेवा, होज्जा, गिहिलिंगेवा, होज्जा, भावलिंग, पडुच, णियम, सलिंग, होज्जा, एवं, जाव, सिणाए इति सूत्र भगवती जी का श० २५ मा उ० छठा में है.

अस्यार्थः—पुला कहे भगवन् पोताने लिंगे हुवे अथवा अन्य लिंग में हुवे, इति प्रश्न उत्तर-हे गौतम द्रव्य लिंगइ असारी स्वलिंग रजोहरणादिक भेप में हुवे कुतीर्थिकतापसादिक ने लिंगे हुवे गृहस्थ ने लिंगे हुवे, भाव लिंग ज्ञानादिक आसरी निश्चय स्वलिंगेज हुवेइम यावत स्नातक लगे कहेवो,। इति सूत्रार्थः

अब इस सूत्रपाठ में देखो कि द्रव्यलिंग यानी भेष आश्रयी ६ हीनियठे साधू ये भेष और अन्य दर्शनिक सन्यासादिक

का भेष और गृहस्थ स्त्री पुरुषादिक का भे . यानी तीनों भेष में होते है या भगवती जी का २५ मा शतक ७ मा उद्देश में, सामयिक १ छे दोष स्थापनीया २ सूक्ष्म सपराय ३ यथाख्यात ४ यह चारित्र भी भेष आश्रयी तीनों भेष में होते है, ऐसा मूलपाठ में है, तो हे मित्रो तुम और तुह्मारे गुरु अपने भेष के सिवाय अन्य भेष यानी दूसरे को दान देने में पाप क्यों समझते हो, क्योंकि जब तुम भेष का कारण नहीं मानो और केवल गुण औगुण कोहीज मानोगे, तो सूत्र वचन के विराधिक ठहरोगे कदाचित तुम कहो कि गृहस्थ के लिंग में साधूपना तो पावे है, परतु कोईक में होता है सो हमको अवध्यादिक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं, परतु केवल ज्ञानी जी महाराज छद्मस्त किसी को गृहस्थ के लिंग में भाव चारित्र आया देखा तो वदनादिक अपने साधू से सभोग करने की आज्ञा देवे कि नहीं या श्रावक लोगों को वदना दानादिक कार्य की आज्ञा देवे कि नहीं तब तो तुमको भी कहना पडेगा, कि दान वदनादिक तो भेषसहित साधू को, और व्यवहार में महाव्रत पालने वाले को दान मान करने में एकात धर्म है उनका दान मान करने की आज्ञा दी जाती है परतु भेष विना नहीं, तो हे भाई जैसे साधू को लिंग और गुण सहित को गुरुबुद्धि से मोक्षार्थे वदनादिक करने में एकात निर्जरा करी है. तैसे ही लिंग और मिथ्यात्वी कुपात्र को गुरुबुद्धि से मोक्ष के अर्थ ही देने में एकात पाप कहा है. परंतु अनुकपा करके देने में नहीं. क्योंकि इसी भगवती जी के अष्टमा शतक का छठा उद्देश में तीन पाठ चले हैं तिसमें प्रथम पाठ तो श्रमणोपासक श्रावक, तथा रूप के समण माहण

को फासुक एपणीक ४ आहार से प्रतिलाभे. उसको एक
निर्जरा कही है और दूसरे पाठ में श्रमणोपासक तथा रूप
समण माहण को अफासुक अनेपणीक प्रतिलाभे तिस
अल्पपाप और वहुत निर्जरा कही है. इस दूसरा पाठ
व्याख्या सूत्र के अर्थ और टीका में विस्तारपूर्वक अ
विधान से कही है. सो उसको देख के समझ लेना.
बढ़ने के कारण से हमने यहां नहीं लिखा. और तीसरा प
में श्रमणोपासक तथा रूप असंयति अव्रती मिथ्यात्वी को
आहार फासुक अफासुकादि करके गुरुबुद्धि से मोक्ष के अ
प्रतिलाभे तो एकांत पाप होवे. अब जरा सूत्रों के अर्थ
समदृष्टि करके विचारो कि तीनों ही पाठ में तहारूव श
है. और पडिलाभमाणे शब्द है इससे स्पष्ट ही दीखता
कि तथा रूप के समण माहण यानी. भेप व्यवहार गु
करके सहित कुफासुक एपणीक आहार श्रावक प्रतिलाभे
एकांत निर्जरा कही है. वैसे ही तथा रूप के असंयति अव्र
यानी मिथ्यात्व का भेप करके सहित और असयम. अव्र
मिथ्यात्व, और कुपात्र पणा का अवगुण करके सहित को मो
के अर्थ देवे तो, एकांत पाप श्रावक को लागे, परंतु जैसे व्यवहा
में गुणरहित केवल भेप धरवा वाला साधू, या निश्चय में गुण
सहित परंतु गृहस्थी आदि के भेप में रहा को दान देने
एकांत निर्जरा नहीं है और भेप गुण सहित को दान देने
एकांत निर्जरा कही है वैसेही मिथ्यात्व का केवल भेप
परंतु कुपात्र पणा का अवगुण नहीं है अवढ़जी सन्यासी
या उनके शिष्यवत, या मिथ्यात्व कुपात्रपणे का अवगुण

परतु मिथ्यात्व का भेप मिथ्यात्व का उपदेशक गुरु नहीं हुवा तो इन दोनों को दान देने में एकात पाप नहीं है, तो भद्रिक दुखी दरिद्री मरते हुए को दानदेने में तो एकात पाप होवे ही कहा से, और मिथ्यात्व का भेप धरा है, और मिथ्यात्व के ही अवगुण का पथ प्ररूपणादिक का होवे. उसको मोक्ष के अर्थ गुरुबुद्धि से देवता श्रावक को एकात पाप कहा है परतु करुणा करके देने में नहीं और अगर तुम हठवाद करके कहोगे कि भेपरहित असयति या दुखी दरिद्री को देने में एकात पाप होवे तो फिर तुमको साधू का भेप रहित गृहस्थ के भेप वाले भाव चारित्री को दान देने में एकात निर्जरा माननी पडेगी सो तुह्मारे गुरु जी का किया भ्रमविध्वसन में अन्य तीर्थी का लिंग में केवल ज्ञान उपजे तो तो भी वदना करना नहीं मानी है. सो लिखते हैं. भ्रमविध्वसन का १०८ मा पत्र में (अन्य तीर्थिना भेप में केवल ज्ञान उपजे ते उपदेश देने नहीं. जो साधू श्रावक केवली जाणे तो पिण ते अन्य लिङ्ग थकी तिण ने प्रत्यक्ष वदना. नमस्कार करे नहीं. तेहने अन्यमति नो लिंग छे ते माटे) अब विचारो कि भेप का कारण नहीं होवे तो यहा तुम्हारे गुरुजी केवलीजी महाराज अन्य दर्शनी का लिंग में होवे तो साधु श्रावक वदना नहीं करे ऐसा क्यों माना. तो सिद्ध हुवा कि भेप का कारण जरूर है. अब यहा भेप के ४ भागे उत्पन्न होते हैं सो सुनिये प्रथम भाग में निश्चय में भाव साधू और भेप करके सहित दूसरे भग में निश्चय में अभवि मिथ्यात्वी और व्यवहार साधू आचार और भेप करके सहित तीसरे भंग में निश्चय में तो साधू भावा चारित्र सहित व्यवहार

मे गृहस्थी को भेप तथा अन्य लिङ्गी को भेप. चौथा भग में ३६३ मत पाषडी को भेप अरु निश्चय में मिथ्यात्वी असंयति अब विचारो कि इन ४ भांगे में से तथा रूप का साधू न्याय मे और तुम्हारे गुरुजी का लेख से पहिले दूसरे भागे में ठहरते है ॥

क्योंकि भ्रमविध्वंसन के १७१ मा पत्र में लिखा कि व्यवहार शुद्ध अभविकुभी साधू जान के वदेतो पाप न लागे, तो सिद्ध हुवा कि, २ भागे वाले को श्रावक फासुक ४ आहार दान देवे तो एकांत निर्जरा होवे, और तीसरा भगवाले को देने में एकांत निर्जरा नहीं होवे, क्योंकि भाव साधू है, परंतु भेप अन्य दर्शनी का है तथा रूप असंयति भी नहीं है, क्योंकि भाव साधू है, और चौथे भंगवाले मिथ्यात्व भेप करके सहित और मिथ्यात्वी असंयति कुपात्र पने के अवगुण करके सहित उनको गुरु और मोक्ष का अर्थ जान करके ४ आहार देवे उसको एकात पाप लागे, मिथ्यात्व पुष्ट होने के कारण से, परंतु मोक्ष का अर्थ नहीं जानके मागते हुये भूखादिक को करुणाभाव से देवे तो एकात पाप में नहीं है. क्योंकि करुणा करके देने का निषेध तीर्थङ्कर ने कदापि नहीं कहा है ऐसा स्पष्ट भगवतीजी का अष्टम शतक उ० छठे का अर्थ और टीका का लेख है सो हमने पहिले लिखा है. यासूयगडाग का ११ मा अध्ययन का मूलपाठ में भी लेख है सो आगे लिखेंगे।

पूर्वपक्ष-तुमने पहिले लिखा वह लेख तो सिद्धात से नहीं मिलता है. क्योंकि भगवतीजी का अष्टम शतक छठा उदेश में तो समणोपासक तथा रूप का असयति अव्रती को दान देवे

उस मे एकांत पाप कहा है और गुरू बुद्धि से मोक्ष के वास्ते तो श्रावक असयति अव्रती को दान देवे ही नही और देवे तो उसको श्रावक नहीं कहना वह तो मिथ्यात्वी है, इस मे यहा तो ससार खाते मगता, अभ्यागत असयति ने देवे तिस मे ही एकान्त पाप है.

उत्तरपक्ष-हे भाई तुम्हारे भोलापन के आक वाक कथन में बडा आश्चर्य आता है कि तुम बिना विचारी तर्कना उठाते हो परतु तुम क्या करो तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रम विध्वसन के २२ में पत्र में ऐसा ही कथन करा है सो लिखते है (ए अन्य तीर्थीना भेष सहित असजति ते तुमे कहो छो तो ते अन्य तीर्थी ने श्रावक नो रूप प्रत्यक्ष दिशे तेहने श्रावक साधू किम जाणे एतो साक्षात् अन्यतीर्थी ने श्रावक तो साधू जाणे नहीं अने इहा दान देवे ते श्रमणोपासक श्रावक कह्या छे (समणो, वासएण, भते) एह वु पाठ छे ते माटे अन्य तीर्थी ने श्रावक तो साधू जाणे नहीं वली इहा सचित्त सूजतो असूजतो देवे कह्यो तो श्रावक साधू जाणने सचित्त न असूजतो आहार किम वेरावे ते माटे एतो सामति मिले नहीं) इति. यह तुम्हारा गुरुजी का लेख है अब सावधान होके यथावस्थित सूत्र न्याय सुनिये. प्रथम तो इस भगवतीजी के पाठ में समुच्चय पूछने का कथन है सो अशुभ कर्म के जोर से कोई भी श्रावक तथा रूप के असयति अव्रती कुपात्र मिथ्यात्वी को मोक्ष के अर्थ गुरु बुद्धि मे प्रति लाभे उसको एकात पाप होवे परंतु सर्व श्रावक प्रति लाभे नहीं तिसपर सूत्र श्री समवायागजी के २१ में समवायाग में साधू को २१ सबले दोष बताये कि

यह २१ काम करने से साधू को सबला दोष लागे वह थोड़े से लिखते हैं सुनिये.

सूत्र–राइ, भोअण, भुजमाणे, सबले, ३ अहाकम्म, भुजमाणे, सबले, ४ आउट्टियाए, पाणाइवायं, करेमाणे, १२ आउट्टियाए, मूल, भोयणंवा, कद, भोयणवा, तया, भोयणवा पवाल, भोयणंवा, पुष्फ, भोयणंवा, फल, भोयणवा, हरिय, भोयणवा, भुजमाणे, सबले, १८ ॥ इति ॥

अस्यार्थः–रात्रि भोजन करते थके सबलो दोष लागे. आधाकर्मी भोजन भुजता थका सबल दोष लागे आ कोटी प्राणातिपात करता थका पृथिव्यादिक ने हणतो सबला दोष लागे. आकुटीय करी मूल भोजन, अथवा कद भोजन अथवा त्वचाकहिये वृक्षनी छालतेहनो भोजन. अथवा प्रवाल भोजन अथवा पुष्प भोजन अथवा फल भोजन अथवा हरीय भोजन करता थका सबलो दोष लागे ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब विचारना चाहिये कि यहा सूत्र पाठ में कहा कि साधू रात्रि भोजन करे तो सबले दोष लागे या आधाकर्मी आहार भोगवे तो सबलो दोष लागे. जाण के हिंसा करे पृथिव्यादिक जीव की तो सबलो दोष लागे. जाणतो थको कद मूलादिक सचित्त कची वनस्पति खावे तो सबलो दोष लागे.

तोअब विचारना चाहिए कि साधु रात्री भोजनादिक कार्य कैसे करे और कर नही तो सूत्र में कैसे कहे तथा ५२ अनाचीर्ण दशमी कालिक का तीसरा अध्ययन मे कहा है वहां भी ऐसा पाठ है सूत्र (मूलए ३१ सिंगवेरय ३२) कहता

साधू सचित्त मूलो ३१ सचित्त आदो ३२ खावे तो अनाचारी लागे तो साधू होके सचित्त मूला आदा कैसे खावे और सूत्र में यह बात कैसे लिखी ऐसा कोई तुम्हारे को पूछे तब तो तुमको भी उत्तर देना पडेगा कि साधू को मूलादिक सचित्त खावना तो नही परंतु कोई कर्मो के उदय से मतिभ्रष्टपणा सू खाय जावे तो सबलो दोष लागे पीछे आलोयणा इडलिया सो शुद्ध होवे तो वैसे ही यहा क्योंनही विचारते कि श्रावक भेष सहित असयती अव्रती को साधू जाणके मति लाभणा तो नहीं परतु कर्म के उदय से परमत का आडम्बर देख के कोई भोला श्रावक अन्य दर्शनी को साधू जाण के प्रतिलाभे तो एकात पाप मिथ्यात्व का लागे और आलोयणा से शुद्ध होवे तथा तुम्हारे गुरुजी की तर्कना है कि श्रावक साधू ने सचित्त असूजतो जाण के ४ आहार कैसे वैरावे तिसका समाधान जरा तो नजर लगा के देखो कि साधू खुद सचित्त कदादिक का और को त्याग करावे ने पोते कोईक साधू जाणता थका कर्म का उदय भावसे सचित कदादिक खाय जावे या सबलो दोप सेव लेवे है तो फिर श्रावक साधू जाणने ४ आहार कोई कर्म के उदयसे गुरु बुद्धि से देवे उसमे क्या आश्चर्य है भाई तुम अपने गुरु जी को समझावो कि ऐसे सूत्र की वार्ता को जानकरके भी लोकों को भ्रमावणे वास्ते विपरीत कथन नहीं करे और भ्रम विध्वसन में विपरीत कथन करा है सो शुद्ध करे. और तुम लोग भ्रमविध्वसन का प्रतिबंध यानी हठ मत करो उसकी विरुद्धता अत्यन्त है. हम कहा तक लिखें यहा तो इतनाही कहना है. कि जैसे कोईक साधू को २१ स

वले दोप और ५२ अनाचीर्ण सेवने की रजा भगवान् की नहीं और कर्म के उदय भाव से दोप सेव लेवे तो एकांत पाप लागे वैसे ही श्रावक को गुरु बुद्धि से मोक्ष के अर्थ कुतीर्थी का भेपधारी को दान देना नहीं देवे तो एकात पाप में समझना तथा फेर सुनियेकि सिद्धांत में कोई श्रावक पहिले तो भगवत की आज्ञा सहित उग्र विहारी विचरे और पीछे आज्ञा बाहिर अनेक पाशत्थ विहारी जिन आज्ञा बाहर होवेतो भी उनको समणो पासक श्रावक कहे है श्रावक की प्रव्रज्या के पालनहार कहे सो सूत्रपाठ लिखते है सुनिये सूत्रभगवती जी का दशमा शतक उद्देश चौथे में सामहस्ती नामा अणगार ने श्री गौतम स्वामी जी से पूछा कि हे पूज्य चमरने असुरेन्द्र असुरकुमार राजा ने ताय तीसगा देवता है तब गौतम स्वामी जी कहते हुये, ॥

सूत्रपाठ —— एवं, खलु; सामहत्थी, तेण कालेण, तेणंसमएण, इहेव, जंबूद्दीवेदीवे, भारहे, वासे, कायदी, णाम, णंयरी, होत्था, वणउ, तत्थण, कायंदीए, णयरीए, तायत्तीसं, सहाया, गाहावइ, समणोवासगा, परिवसति अट्ठा, जाव, अपरिभूया अभिगय, जीवाजीवा, उवलद्ध, पुणपावा, वणउ, जावविहरंति, तएणते तायत्तीसं, सहाया, गाहावइ, समणोवासगा, पुव्विउग्गा, उग्गविहारी, सविग्गा, सविग्गाविहारी, भविता, तउपच्छा, पासत्था, पासत्थ, विहारी, उसण्ण उसण्ण, विहारी, कुसीला, कुशील, विहारी, अहाच्छंदा, आहाच्छंद, विहारी, बहूइ, वासाइ, समणो, वासग, परियाग, पाउणंति, पाउणतित्ता, मासियाए, सलेहणाए, अत्ताण,

जूसंतिर त्ता, तीसंभताइ, अणसणए, छेदॆतिरत्ता, तस्सठाणाम्स, अणालोइय, अपडिकता, कालमासे, कालकिचा, चमरस्स, असुरिदस्स, असुररणे, तायत्तीसगा, देवत्ताए, उववणा ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्यार्थः- इम निश्चय हे सामहस्ती अणगार ते काल न विपे ते समय ने विषे एहीज जबूद्वीप नामा द्वीप ने विपे काकन्दी इसे नामा नगरी हुइ तेनो वर्णन करवो. तिरा काकन्दी नगरी ने विपे तेत्रीसुमित्र साह्यना कारक कुटुम्बना नायक समणोपासक वसै छै ऋद्धिवत पावत किणही पएभविन स किये जाएया छै.

जेणे जीव अजीव नो स्वरूप जेणे ओलख्या छै पुन्य अने पाप वर्णन करवो यावत् विचरे छै तिवारे तेत्रीस सहाय्य कारक मित्र कुटुबना नामक समणोपासक पहिला उत्कृष्ट भाव थकी उग्रविहारी उत्कृष्ट आचारवत संवेगता मात्तमार्ग प्रवृत्ते रुडो अनुष्ठान पालीने तिवारे पीछै ज्ञान दर्शन चारित्र थकी बाहिर वर्ते छै पासत्थानो ज आचार समाचारी ने विचरे छै थाकी नीयरे थाका आजन्म शिथिलाचारी कुत्सित शील माठो आचार ते ज्ञानादिक आचारना विराधवा थकी कुशीलचारी आजन्मलगी विराधक स्वइच्छा आपणे छादे चाले जाव जीव लग यथा छादेहिज एवा थकी घणा वर्ष लगे समणो पासक पर्याय पाले पालीने पदरेह दिनना सलेपणाए आत्माने सेवे सेवी ने, त्रीस, भक्त अण सणे करी छेदे. छेदीने तेह स्थान कने आलोया विना पडिक्कमा विनाकाल समये काल करी

ने चमर ने असुरेन्द्र ने असुर राजाने त्राय त्रिसक देव मंत्री स्वर देव पणे उपना ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब इस सूत्र पाठ से विचारो कि ज्ञान दर्शन से बाहिर वर्तने वाले और प्रवचन से विरुद्ध अपने छंदे चलने वाले जाव जीव शुद्धि भी आलोयना प्रायश्चित्त का नहीं लिया. तथापि उनको समणोपासक और अनेक वर्ष की श्रावक की प्रवज्या के पालने हारे कहे. तो फिर हे मित्रों तुम कहते हो कि श्रावक तो असयति को साधू जानके नहीं देवे देवो तो श्रावक नहीं. या तुम्हारे गुरुजी ने भ्रमविध्वसन में लिखा कि अन्य तीर्थी ने श्रावक साधू जाणे नहीं तो फिर अन्य तीर्थी ने श्रावक साधू नहीं जाणे तो इस सूत्रपाठ में भगवान के मार्ग से उपणे वर्तने वाले को श्रावक क्यों कहें. अब कहो तुम्हारे गुरुजी का कथन सच्चा है कि श्रीमुख से भगवान का फरमाया. वह सच्चा है. हम तो त्रिलोकीनाथ का कथन ही सच्चा श्रद्धते और कहते है कि जैसे ज्ञान और समकित से बाह्य वर्तने वाले को भी पाठ में समणोवासग यानी श्रावक कहे है और ज्ञान समकित से बाह्य वर्तना तो एकांत पाप में ही है वैसे ही भेप सहित अन्य तीर्थी को गुरु बुद्धि से मोक्ष के अर्थ श्रावक प्रतिलाभे देवे तो एकात पाप ही है. परंतु उन को भी श्रावक कहे है सो बुद्धिमान समझ लेवेगा. इति ।

पूर्वपक्ष–भगवतीजी का शतक दशमा उद्देश चौथा में तो तीस श्रावक विराधिक पासत्थे का अधिकार है. परतु शतक अठमा उद्देश छठा में तो विराधिक श्रावक का कथन नहीं करा है ।

उत्तरपक्ष-अरे मित्र सूत्र मे तो दोनों जगे विराधिक पण का ही कथन है. क्योंकि भगवती शतक दशमा उदेश चौथा में ज्ञान समकित से पासत्थे होने से विराधिक एकात पाप का कार्य है. वैसे ही भगवती शतक अष्टम उदेश छठा में तथा रूप के यानी भेष सहित कुपात्र अन्य तीर्थी को मोक्ष अर्थे गुरु बुद्धि से दान देने से एकात पाप कहा है सो प्रकट समकित ज्ञान का पासित्थापना है और नहीं आलोवे तो विराधिक पणा भी है सो टीका में स्पष्ट लिखा है।

टीका-(यस्य सूत्र त्रेयणापि चानेन मोक्षार्थे मेवयद्दान तच्चिंतितमिति)

अर्थ-इन तीनों सूत्रों करके मोक्ष के अर्थ जो दान देना तिनको चिंतना करी गइ ॥ इति टीकार्थः ॥

अब विचारो कि टीकाकारजी तो साफ लिखते है कि इन तीनों सूत्र में यानी समणोपासक तथा रूप के श्रमण महान कु फासुक सूजता आहार प्रति लाभे उसमें एकात निर्जरा कही. और वैसे ही तथा रूप के समण महान को अफासुक अनेषणिक ४ आहार प्रतिलाभे उसमें अल्प पाप और बहुत निर्जरा कही है. और वैसे ही तथा रूप के असयति अव्रती मिथ्यात्वी को प्रतिलाभे उसमें एकात पाप कहा इन तीनों सूत्रों में मोक्ष के अर्थ दान देने की चिंता यानी घटना करणी. अब विचारो कि श्रावक अन्य तीर्थी कुपात्र को मोक्ष अर्थे दान देवे तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्व भोग है. उसमें एकात पाप कहा है और टीका में खुलासा करते हैं कि मोक्ष के अर्थ देवे उसका कथन है. परतु करुणा करके देवे उसका

कथन यहां नहीं है. ऐसा टीका में भी कहा है. (यत्पुनरनु कंपादानमौचित्य दान वा तन्न चिंतित) अनुकंपादान और उचित दान देन का यहां चिंता नहीं करी यानी अनुकंपादान और उचित दान देने का यहां कथन नहीं है. इति ।

यथा करुणा करके देने का तीर्थंकर ने कदापि निषेध नहीं करा. ऐसा टीका में गाथा कही. और और अर्थ में भी कहा है (मोरकत्थं, जंदाण, तपइएसो, विहिसमरकाउ, अणु-कंपा, दाण, पुण, जिणेहिन, कयावि, पडिसिद्धति.) ॥१॥ इसका अर्थ पहिले लिख चुके है.

अब विचारो कि इस गाथा में खुलासाअर्थ है कि मोक्ष के अर्थ कुपात्र मिथ्यात्वी को देने में एकांत पाप की विधी कही है परंतु अनुकपा करके दान देने का तीर्थंकर ने कदापि निषेध नहीं करा है अब पक्षपात छोड के विचारो कि तुम्हारा उत्तर प्रश्नोत्तर में लिखा सो सिद्धांत टीका टबा से विरूद्ध है कि नहीं है मित्र ऐसे विना विचारे गुरु जी का सिखलाया गोलमाल उत्तर सिद्धात से विरुद्ध लिखने छपवाने की कार्-वाई मत करो क्योंकि यह महा पाप है इससे हम तुम्हारे हितार्थ के लिये कहते हैं आगे तुम्हारी समझ होवेगी सो काम आवेगी परतु सत्य सुनने से राग द्वेष नहीं करना.

पूर्वपक्ष—हमतो टीका की वात नहीं जानते है मूल सूत्र में होवे सो मजूर करते है.

उत्तरपक्ष-अरे भाई जरा अपने गुरु जी का रचा हुआ भ्रम विध्वंसन को तो देखो कि वहुत जगह टीका दीपिका अवचूरिका की साक्षी क्यों लिखी है अगर मूलपाठ ही मंजू-

रथा तो टीकादिकों का कथन क्या लोकों को भ्रम पाडने के वास्ते करा है या भ्रम विध्वसन के ८२ मा पत्र पै भगवत ने गोशाला जी को सराग से ग्रहण करने की कल्पना सिद्धि करने के लिये झट पट टीका की साक्षी क्यों लिख दी क्यों कि मूलपाठ में तो सरागपने का कथन ही नहीं है फिरपाठ बिना टीका मजूर तुमने क्यों करली और फिर टीका लिखके भी विरुद्ध और अधूरा अर्थ लिख दिया. तिसका खुलासा हमने प्रथम प्रश्न में कर दिया है और टीका अर्थ भी जैसा है वैसा लिख दिया है तो हे मित्रो अपने मत को सिद्ध करने के वास्ते तो टीका का विपरीत अर्थ करके साक्षी दे देनी और दूसरा कोई सत्य अर्थ करके टीका की साक्षी देवे तो बदल जाना कि हमतो टीका नहीं मानते हैं अगर ऐसी हट करोगे तो विद्वानों की गणना में न गिने जाओगे और जैनी तो समझेगे ही परतु कोई विद्वान तीसरा मतका मध्यस्थ भी यह तुम्हारी बात विचारेगा तो तुमको सत्य वादी नही गिने गा और, यह टीका तो सूत्र के अनुसार ही है और अगर यहा इस टीका के अनुसार अर्थ नहीं करोगे तो बहुत सिद्धात के पाठ का उल्लघन यानी उत्थापन हो जावेगा सो थोडा सा लिख के बताते है सूत्र सूयगडाग जी के अध्ययन ११ मा में १७ मी गाथा में स्पष्ट लिखा है कि सावद्य दान की निषेधना या स्थापना नहीं करनी सो सूत्र गाथा लिखते हैं सुनिये.

सूत्र-तहागिर, समारम्भ, अत्थि, पुन्नति, णोवए, ! अहवा, णत्थि, पुन्नति, एवमेय, महपभ्भय, ॥ १७ ॥ इति

गाथार्थः ।। हवे ए स्वरूप विशेष दीपावे छे अहो मुनि
श्वर आ अमारे अनुष्टाने पुण्य छे किंवा नथी एम पुंछ्या थ
(तहा के०) ते साधू (गिर समारम्भ के०) एवी वाणी व
के आ समारंभ करवामा (अत्थि पुन्नंति णोवए के०) पुण
छे एम पण मुखथकी कहे नहीं (अहवा के०) अथ
(णत्थि, पुणति, के०) एमा पुण्य नथी एम पण मुख थ
कहे नहीं (एवमेय, महब्भय, के०') एम एवेन प्रकार ने दो
ना हेतु, तथा महा भय ना कारण जाणीने एवी भाषा
बोले, ।। १७ ।। इति सूत्र गाथार्थः ।।

अब विचारना चाहिये कि यहा सिद्धांत में स्पष्ट लिख
कि कोई गृहस्थ आके पूछे कि हे महाराज हमारे पानी व
पौ मडाने में दानशालादिक अनुष्ठान में पुन्य है कि नहीं. त
पुन्य है या नहीं है ऐसा साधू कुछ भी नहीं कहे. और क
तो दोष रूप महा भय का कारण हारा होवे. और तुम करुण
करके देने में एकात पाप कहते हो इससे तुम्हारी श्रद्धा सि
द्धात से विरुद्ध है क्योंकि सिद्धात में पुन्य नहीं ऐसा क
तो महाभयकर शब्द कहा है, या तुमने लिखा कि सूयगडा
के ११ मे अध्ययन की २० मी गाथा मे कहा कि गृहस्थ
को दान देवे उसका प्रशंसा करे तो छ काय की हिंसा होय
यह भी तुमने गोलमाल भ्रमरूप लिखा है. क्योंकि सूत्र में त
प्रशसा भी नहीं करणी और निषेध भी नही करना. यान
भिखारी मगते को देने में पुन्य नहीं है ऐसा भी नही कहन
और पुन्य है ऐसा भी नहीं कहना. और तुमने आदि गाथ
का अनुमोदना. नहा तो लिख दिया. और उसी गाथा

पिछले दो पद में दान देने का निषेध यानी अनुकपा करके दुखी भूखा को दान देने में पुन्य नहीं है तो उस पाप कहने वाले को भी पापी और वृत्ति छेदन का करने वाला कहिये. उस अर्थ को तुमने छोड दिया. और एकात पाप कहने लग गए. ऐसे सूत्र की आधी गाथा तो माननी और आधी को छोड के भ्रमरूप उत्तर देना बुद्धिमान का काम नहीं परतु जिसको परलोक का भय नहीं होवे वह तो अपने मतपक्ष सिद्ध करने के वास्ते सूत्र का नाम ले के विपरीत लेख लिख ता नहीं डरे अब हम उसी वीसवीं गाथा को सपूर्ण लिख दिखाते है सो सुनिये ॥

सूत्र गाथा—जेय दाण पससति वह मिच्छति पाणिण जेयण पडिसेहति वित्तिच्छेयकरतिते इति.

अथ सूत्रगाथार्थ:-(जयदान. पस, संति, के०) ते माटे जे कोई पारमार्थ नो आजाणयति दाननी प्रशसा करते (वह मिच्छति, पाणिण; के०) ते प्राणी नाबधनी इच्छा करे छे (जेयण, पडिसेहंति, के०) अने जे यति दान आपवानो निषेध करे (विचिच्छेयं, करतिते, के०) तो ते यति अनेक जीवोनी आजीविकानो छेद करे छे ॥ २० ॥ इति गाथार्थ ।

अब विचारो कि सिद्धात में तो यह कथन है कि जो कोई साधू सावद्यदान की प्रशसा करे तो प्राणी की हिसा अनुमोदने वाला कहिये. और जो कोई दान देने का निषेध करे तो वृत्ति का छेदने वाला अतराय देने वाला कहिये तो परमेश्वर की तो मौन रखने की आज्ञा है कि सावद्यदान में हा ना कछु भी नहीं कहना. पुन्य है ऐसा भी नहीं कहना पुन्य

नहीं है ऐसा भी नहीं कहना. यह भी इसी सिद्धांत में २१ मी गाथा में है तो सावधान हो के सुनिये.

सूत्रगाथा– दुहउवि, त्ते, णभासंति, अत्थिवा, नत्थिवा, पुणो आंय, रयस्से, हेच्चाण, निव्वाण, पाउणंतिते, इति सूत्र गाथा. ॥

अथ गाथार्थः– (अत्थिवा, नत्थिवा, के०) अस्ति वा नास्ति एम न कहे. एटले पुन्य छे किंवा पुन्य नथी एवी. (दुह उवि के०) बन्ने प्रकार नी वाणी ने (पुणो, के०) वली (तेणभासति के०) ते साधु भाषे नही एम के थकी (रयस्य , के०) कर्म रूपरजतेनो (आय, के) लाभ ते ने (हित्वा, के) जाणीने तेवी वाणीने उच्चार करवानो त्याग करे (निव्वाण, पाउणतिते, के०) जे साधू निर्वाण प्रेत पामे एटले अनवद्य भापक एवो साधू संसार रहित थाय॥ इति

अब देखलो कि सिद्धांत मे तो सावद्यदान में पुन्य नहीं या पुन्य कहना कर्म बंधन का कारण है. और तुम मंगता भिखारी को देने में एकांत पाप कहके सूत्र का नाम क्यों लेते हो. सूत्र में तो पुन्य नहीं है ऐसा भी नहीं कहना कहा है तो फिर तुम एकांत पाप कहके जिनाज्ञा को उलंघ के मिथ्या प्ररूपणा क्यों करते हो.

पूर्वपक्ष– यह वर्तमान काले कोई दातार मंगतादिकों को देता होवे जद मौन राखणी देता ने वर्जनो नही, पण उपदेश में एकांत पाप बतावे तो कांही दोष नही.

उत्तरपक्ष– हे मित्रो ऐसा सिद्धांत का विरुद्ध अर्थ क्यों करते हो परंतु तुम क्या करो तुम्हारे भ्रमविध्वंसन का भ्रम

का प्रताप है क्योंकि भ्रमविध्वसन के २८ मा पत्र में वृत्ति छेद का अर्थ उलटा कराहै. सो दिखाते हैं (वृत्तिच्छेद,करतिते) (वि, के०) वृत्तिछेद वर्तमान काले पामवानो उपाय तेहनो नो विघ्न करे ते अविवेकी इति. यह अर्थ तुम्हारे गुरू जीतमल जी ने भ्रमविध्वसन में वर्तमान काले पामवानो उपाय यह अक्षर मनके मते बनाए मालुम देते हैं. तिस कारण से विपरीत है. क्योंकि नहीं तो यह पाठ से मिलता है और पारसचद्र सूरिजी कृत टबे में है टबा में तो ऐसी व्याख्या है कि (वित्तेछेय, करतिते, के०) तो ते यति अनेक जीवोंनी आंजीवका नो छेद करे छे यह अर्थ बहुत पड़तों से मिला के लिखा है. या बबई के छाप का सूयगडागजी भीमसी माणक ने बहुत शुद्ध करके छपराया है उस में भी यही अक्षर हैं अब बडा आश्चर्य आता है कि मत की रूढ़ के लिये मन माना नवीन झूठा ही अर्थ भोलों को भ्रम में डालने को रच लेते हैं तो परमेश्वर के वचनों का डर नहीं तो तिसका क्या करिये, तथा भ्रमविध्वसन के २६ मा पत्र के पृष्ट में लिखा कि (अने वर्तमान काले निषेध्या वृत्ति छेद कही. पिण उपदेष मे वृत्ति छेद नही दान देवे ते लेवे छे. ते वेला निषेध्या वृत्ति छेद हुवे) इति भ्रमः ॥

अब बड़ा आश्चर्य आता है कि वर्तमान काल का नहीं तो पाठ में नाम है नहीं अर्थ में है तो फिर तेरे पाथियों के पूज्यजी ने वर्तमान काल की मिथ्या कल्पना क्यों करी.

पूर्वपक्ष-टीका में वर्तमान काल का पाठ लिखा है

उत्तरपक्ष-हे मित्र टीका में तो नहीं लिखा परन्तु-तुम्हारे

गुरुजी ने टीका का अशुद्ध अर्थ लिख के भ्रम रचा है सो टीका दीपिका दोनों लिख के बताते हैं

टीकाः (प्राणिनां वृत्तिच्छेद वर्तनो पाय विघ्न कुर्वतीति)

टीकार्थः जीवों की वृत्ति आजीविका का छेद आजीविका का उपाय का विघ्न न करे ॥ इति ॥

अब विचारो कि टीका में तो वर्तमान काल का कथन नहीं है परतु तुम्हारे गुरुजी ने वर्तन शब्द का अर्थ वर्तमान काल ऐसा अपनी कल्पना से किया है सो एकांत विपरीत है क्योंकि तुम्हारे गुरुजी से दीपिका के कर्ता संस्कृत में प्रवीण थे और टीका के अत्यन्त मानने वाले थे और टीका से विपरीत अर्थ कहा भी नहीं करा है केवल ज्यादा संस्कृत पढा न होवे उसके लिये सरलता के वास्ते दीपिका बनाई है उसमें भी वर्तमान काल का अर्थ नहीं है सो दीपिका लिखते है (प्राणिना वृत्तिच्छेद आजीविका विघ्न कुर्वतीति) अर्थ प्राणी जीवों की वृत्ति यानी आजीविका का छेद यानी विघ्न करे इति दीपिकार्थः ॥

अब विचारो कि टीका दीपिका का एक सा ही अर्थ है केवल टीकाकार जी ने तो वर्तन शब्द से आजीविका का अर्थ लिखा है और दीपिकाकार जी ने आजीविका का ऐसा सरल अर्थ ही लिखा है क्योंकि संस्कृत में आजीविका शब्द के दोनों पर्यायवाची शब्द है परतु आजीविका शब्द सरल है इससे दीपिकाकार जी ने सरल लिखा है परतु तुम्हारे गुरुजी सरीसा विरुद्ध अर्थ वर्तमान काल ऐसा तो किसी ने नहीं करा है और वर्तमानकाल अर्थ करने से सिद्धांत को भी

टेप यानी धक्का लगता है क्योंकि सिद्धात में तो कोई प्रश्न पूछै उसका उत्तर देने की विधि बतलाई है परतु कोई देता होवे उसका निषेध नहीं करना ऐसा नहीं लिखा है एतो तुम्हारे गुरु जी की कपोल कल्पना है सो तुम्हारे सरीसे अल्पज्ञ ही मानते हैं परतु विद्वान निरपेक्ष तो कभी नहीं मानते है.

पूर्वपक्ष-दान शालादिक दान का प्रश्न पूछे उस वक्त पुन्य पाप नहीं कहना ऐसा सिद्धात में कहा कहा है.

उत्तरपक्ष-तुमने नहीं सुना होवे तो सुनो और विपरीत धारा होय तो शुद्ध धारो हम लिख के प्रकट करते है कि इसी सूयगडाग के ११ मा अध्ययन की १६ मी और १७ मी गाथा में जहा दान शालादिक दान के प्रश्न है वह ही लिखते हैं सो ध्यान लगा कर सुनिये.

सूत्र गाथा-हणत, णाणु, जाणेभ्का, आयगुत्ते, जिइंदिरा ठाणाइ सति, सड्ढीण, गामेसु, नगरेसुवा', ॥ १६ ॥ तहागिर, समारम्भ, अत्थि, पुन्नति, णोवए, ॥ अहवा, णत्थि, पुन्नति, एवमेय, महब्भय ॥ १७ ॥ इति

गाथार्थः—(ठाणाइ सति, सड्ढीण, के०) श्रद्धावत ना स्थान, श्रद्धावत, धर्मवतना आश्रय (गामेसु, नगरे सुवा के०) एवा ग्राम ने विषे अथवा नगर ने विषे साधु रह्या छे त्यानो आश्रीत कोई एक कूप खनन सत्रु कारकादिक नो करावनार एवो पुरुष साधू ने पूछे जे एवामा धर्म छे किंवा न थी एव पूछ्या थका (आयगुत्ते, जिइदिये. के०) आतम गुप्त तथा जितेन्द्रिय एवो साधु (हणत, णाणु, जाणेभ्का, के०) आ-

रंभे करी प्राणी हणाता होय तेवा कार्य ने अनुमोदे नहीं जे एतु रुडु काम करे छै राम कहे नहीं ॥ १६ ॥ हवे ए स्वरूप विशेष दीपावे छै अहो मुनीश्वर आ अमारे अनुष्ठाने पुन्य छै किंवा न थी एम पुछ्या थका (तहा के०) ते साधू (गिर समारम्भ के०) एवी वाणी कहे के आसमारभ करवामा (अत्थि पुन्नेति के०) एमा पुण्य न थी एम पण मुख थकी कहे नहीं (एवमेय, महब्भय के०) एम एने प्रकार ने दोपना हेतु तथा महा भय ना कारण जाणी ने एवी भाषा न बोलो ॥ १७ ॥ इति गाथार्थ : ??

अब विचारना चाहिये कि सूत्र में खुलासा लिख दिया कि कोई ग्राम नगर में किसी श्रद्धावत के स्थान पर रहे साधू को कोई श्रद्धावत पूछे कि मेरे पानी के दान अर्थ कूप खुदवाना और अन्नादि के दान अर्थ दानशाला करानी है इसमें पुन्य होवे कि पुन्य नहीं तब मुनि पुन्य और पुन्य नहीं दोनो न कहे कहे तो महा भयकर पाप का कारण है अब विचारो कि गुरुजी का वचन है कि देने वाला देवे और लेने वाला लेवे उस वक्त वर्तमान काल में निषेध नहीं करना यह तुम्हारे गुरु जी का लेख सिद्धात से विरूद्ध है कि नहीं जरापक्ष छोड़ के विचारो कि सूत्र में तो कोई प्रश्न पूछे उसवक्त मौन रक्खे और तुम कहते हो कि देती वक्त मौन रक्खे और प्रश्न पूछे तो एकात पाप बतावे ऐसा तुम्हारी श्रद्धा तो सूत्र से नहीं मिलै देखो तुम्हारे गुरु जी की श्रद्धा है कि देने वाला देवे और लेने वाला लेवै उसवक्त निषेध नहीं करना फिर यह बात कैसे मिले क्योंकि कूप खनने का प्रश्न में भी शास्त्र में मौन

रखना कहा परंतु एकांत पाप नहीं कहा, तो कहो कूप को कैसे देवे, प्तो जब मिले कि पानी का प्यासा पानी मांगे तब देने वाला कहे कि ठहरजा, कुवा खोदके पानी पिलाऊ, तिस वक्त साधु को मौन राखनी, तो यह बात होती है.

पूर्व पक्ष—यह बात तो नहीं होती क्योंकि कूप खोदके पानी पिलाना यह बात बिलकुल असंभव है

उत्तरपक्ष-तो वैसे ही तुम्हारे गुरुजी का वर्तमान काल का अर्थ करना असंभव है क्योंकि कुवा खोदने का प्रश्न शास्त्र में हैं. इससे तुम्हारी श्रद्धा सूत्र से नहीं मिलें क्योंकि एकांत पाप कहे उसको महाभयंकर दोष लगता है तो फिर एकांत पाप को प्ररूपे, लिखे, छपावे उनका तो क्या होगा. अब ऐसी श्रद्धा कदापि कथन करे अब मध्यस्थ होवो तो विचार लेवो कि दान की अंतराय तीनों काल में नहीं करना, परंतु एक वर्तमान काल का अर्थ सूत्र अर्थ टीका दीपिकादिक सर्व से विरुद्ध है सिद्धांतकी आसना होवे तो समझ लेवो. अब कोई भद्रिक प्रश्न करे कि सूत्र भगवतीजी का ८ मा शतक का छठा उद्देश में तो तथा रूप के असंयति अव्रति को प्रतिलाभ ने ना पाप कहा और सूयगडांग के ११ में अध्ययन में कूप खोदनादिक सावद्यदान में पुन्य नहीं है ऐसा कहे तो उसको महा भयंकर कर्म बंध का कारण कहा, यह सूत्र की परस्पर सूत्र से विरुद्धता हुई तिसका क्या समाधान है तिसका उत्तर. हे भाई इसीसे हम कहते हे कि भगवतीजी में एकांत पाप भेष सहित मिथ्यात्वी का गुर्वादि महत को गुरु समझ के मोक्ष के अर्थ दान देवे उसको एकांत पाप कहा, क्योंकि

ऐसे मिथ्यात्व के महंत को अन्नादिक मे प्रतिलाभने से मिथ्यात्व पुष्ट होता है जिससे मिथ्यात्वादिक पाप लगते है परंतु अनुकंपा करके गरीबादिकन को देने में एकांत पाप नहीं इसी हेतु मे ही इस भगवती जी सूत्र का पाठ का अर्थ में भी लिखा है कि मोक्ष के अर्थ गुरु बुद्धि से मिथ्यात्व के महंत को प्रतिलाभे उसको पाप लगे परंतु अनुकंपा दान और उचित दान का निषेध तीर्थंकर ने कहां भी नहीं किया है ऐसा साफ अर्थ में लिखा है तथा इसी सूत्र की टीका जो अभयदेव सूरि जी ने संवत् ११ से के लगभग रची है उसमें भी ऊपर माफिक लिखा है सो हमने टीका ऊपर लिख दी है टीका टबा मे एक सरीसा ही कथन है और वही सूत्र के पाठ से मिलता है इसमे भगवती जी में एकांत पाप कहा सो मिथ्यात्व के महंत को मोक्ष के अर्थ देवे तो पाप लगे और अनुकंपा का निषेध नहीं और सूयगडांग में सावद्यदान पाणी अर्थे कूप खनन भोजन अर्थसत्रुकार दानशालादिक कार्य में साधु को पाप नहीं कहना, क्योंकि अनुकंपा दान तीर्थंकर ने निषेध करना वर्जित किया है और सावद्यदान में पुन्य है ऐसा भी नहीं कहना क्योंकि कूप खनन में जीव हिंसादिक होवे, उसकी अनुमोदना लागे इस हेतु से बस ऐसे सूत्रों के सापेक्ष वचन हैं तिसमे सूयगडांग और भगवतीजी का कथन की परस्पर विरुद्धता नहीं है. हां अलबत्ता सूत्र भगवती जी का अर्थ ८-१० वर्ष की प्राचीन टीका को छोड़ के मन माना नवीन अर्थ सूत्र मे विरुद्ध करके कहे कि साधु के सिवाय सर्व को देने में पाप है तिसकी श्रद्धा से सूयगडांग का पाठ उत्थप जावेगा या

इस सिवाय प्रश्न व्याकरण के पाठ को भी उत्थापनहारे ठहरेगा. क्योंकि प्रश्न व्याकरण के दूसरे आश्रवद्वार में दान को निषेधे उसको झूठ बोलने वाला कहा है सो सूत्रपाठ सुनिये सूत्र-वित्तिछेय, करइ, मादेह, किंचिदाण. ॥ इति ॥

अस्यार्थः- (वित्तिच्छेय, करइ, के०) भिक्षाचरादिक वृत्ति नो छेद करो मादेह, किंचिदाण, के०') मा देस्यो काइ पिण दान ॥ इतिसूत्रार्थः-

अब विचारो कि भाइ सूत्र मे तो साफ लिखा कि वृत्ति का छेद करे या दान देने का निषेध करे. उसको झूठ बोलने वाला कहा जो दान देने में एकात पाप बतावे जो सूत्र के प्रमाण से झूठ बोलने वाले की पक्ति में गिने जावेंगे परतु सत्यवादी नहीं.

पूर्वपक्ष-इस पाठ का अर्थ हमारे गुरुजी ऐसे करते हैं कि वृत्ति छेदना तो उसको कहते है कि देना वाला देव और लेने वाला लेवे उस वक्त में कोई देने वाले को मना करे तो झूठ बोलने वाला कहिये और दान का अर्थ ऐसे करते हैं कि साधु को दान देने का निषेध करे उसको झूठा बोला कहिये परतु साधु सिवाय दूसरे को दान देने में पाप कहे तो दोष नहीं ऐसा कहते है.

उत्तरपक्ष-हे भाई ये दोनों अर्थ स्वकपोलकल्पित सूत्र से विरुद्ध है सो वर्त्तमान का कहना विपरीत है. सो तो हमने सिद्धात पाठ अर्थ टीका दीपिका से पहिले अच्छी तरह स सिद्ध किया है. और साधु को दान देने का निषेध करने मे झूठ लागे अन्य को निषेध करने में नहीं. उसका निर्णय

एकाग्र चित्त करके सुनिये. हे भाई! यहा सूत्र में तो किंचित् मात्र दान को यानी थोडा भी दान निषेधे उसको झूठा बोला कहा. परंतु सुपात्र साधु को दान देने का निषेध करे, उसको झूठा बोला कहिये ऐसा कथन तो सूत्र मे हेही नहीं तो ऊटपटाग अर्थ क्यों करते हो.

पूर्वपक्ष–जब सुपात्र को दान देने का निषेध करे उसको झूठा बोला कहिये ऐसा न्यारा पाठ कहा है.

उत्तरपक्ष–हे भाई न्यारा पाठ इसी दूसरे आश्रवद्वार में पहिले आचुका है सो लिखते है सूत्र पाठ सुनिये।

सूत्र एव, झपति, मुसावादि, तम्हा, दाण, व्वय, पोस हाण,तव, सजम, वभचेर, कलाण, मादियाण, नत्थि, फल इतिः-

अस्यार्थः–एम कहे सो मृषावादी।

अब बिचारो कि इस मूल पाठ मे प्रकट देख लेवो कि मुक्ति के अर्थ दान, शील, तप, पोषा, सयम, ब्रह्मचर्यादिक कल्याणकारी, स्वर्ग मोक्ष की क्रिया को फल नहीं, ऐसा कहे उस को मृषावादी कहिये. यह पेश्तर मुक्ति के अर्थ परलोक साधन की क्रिया का कथन कहकर फिर बहुत सा कथन दूसरा कहके आगे को यह पाठ है विचिछेय, करह, मादेह, किंचिदाण,) यह पाठ अलग चला है कि भिखारीदिक नी वृत्ति नो छेद करो मा देस्यो काइ पिण दान. ऐसा कहे वह झूठाबोला है यह कथन न्यारा है तो अब भ्रम को छोड के समझ लेवो कि साधु को मुक्ति खातर दान देणा निषेधे तो उसको भी झूठाबोला मृषावादी कहिये. और मगता भिखारी को देने का

निषेध करे तो उसको भी मृषावादी झुठाबोला कहिये यह सूत्र में प्रकट खुलासा पाठ है तो फिर मंगता भिखारी को देने में एकांत पाप कहने वाले की श्रद्धा से यह पाठ प्रश्न व्याकरण का उत्थप जायगा.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते हैं कि मंगता भिखारी को देता देख के निषेध नहीं करना परंतु आगम्य काल में पाप बतावे तो दोष नहीं इसको पुष्ट करने के वास्ते भ्रम विध्वंसन के पत्र २६ वें में सूयगडांग का दूसरा स्कंध के पंचमाध्ययन की ३२ मी गाथा की साक्षी देते है कि (दक्षिणाय, पडिलभा, अत्थिवा, नत्थिवा, पुणो,) इस पाठ से कहते हैं कि गृहस्थ देणहारदेवे और लेणहार लेवे उसवक्त पुन्य है अथवा पाप है. ऐसा नहीं कहना चाहिये. इति ॥

उत्तर पक्ष– हे भाई यह इस सूत्र का पाठ भी तुम्हारी श्रद्धा को बाधित करने वाला है. क्योंकि इस सूत्र के पाठ में भी मौन राखणा कहा परंतु आगम्य आसरी दान देने का एकांत पाप कहना या मंगता भिखारी आदिक को दान देने काल त्याग करने में दोष नहीं, ऐसा नहीं कहा है, इससे यहां भी तुम्हारी श्रद्धा अटकी, परंतु सिद्ध नहीं हुई. और सूत्रों का तो सापेक्ष कथन है. कोई ठिकाने वर्तमान काल का कथन है, कोई ठिकाने तीनों काल का कथन है. तिस में वर्तमान का एक जगे के अर्थ का तो ग्रहण करलेना और दूसरे जगे तीनों काल में दान को नहीं निषेध करने का कहा उसको नहीं मानना बुद्धिमान् निर्पक्ष जैनधर्मी का नहीं है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरूजी भी पाप पुन्य का हिसाब यानी

सेव बताते है, परन्तु गरीब को दान देने का त्याग
कराते है

उत्तर पक्ष-हे भाई यह बात तो प्रसिद्ध है कि तु
गुरूजी त्याग कराते है परन्तु तुम्हारे जैसे भोले भाई
बात को छिपाना चाहते है सो छिप नहीं सकती. क्योंकि
बातें तुम्हारी पुस्तकों में छप गई सो हम लिखा दिखा
देव गुरू धर्म की ओलखण नामा पुस्तक नं २ में १२
की १२ मी ढाल की ४२ मी गाथा यथा.

(इवरत में दान देवण तणो कोई त्याग करे मन
जीतणरो पाप निरंतर टालियो तिणरी वीर बखाणी बुद्ध
इति गाथा गाथार्थः इस व्रत में अर्थात् साधु के सिवाय म
भिखारी आदिक को दान देवण का त्याग करे तो नि
पाप टले और भगवान उसकी बुद्धि बखाणी. इति गाथार्थ

यह जोड तुम्हारे भीषम जी कृत है. अब विचारो
तुम्हारे गुरूजी का निषेध उपदेश एक तुम्हारे साधु के सिव
मगता भिखारी आदिक को सर्व को दान देने का त्य
कराने का है कि नहीं, प्रत्यक्ष बात छिप नहीं सकती है अ
वीर बखाणी बुद्ध ऐसा भगवान् का नाम दाननिषेध
बताना वृथा है. क्योंकि भगवत ने तो सिद्धांत उपासक द
में या आवश्यक में श्रावक के १२ व्रत के अतिचार वर्ज
करने फरमाये हैं वो पहिले व्रत के ५ अतिचार टालना क
सो सुनिये

सूत्र-थूलयस्स, पाणाइवाय, वेरमणस्स, समणो
सएण, पच, अइयारा जाणियव्वा, नसमायरियव्वा, तंजह

वह व य न्छविन्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए, ॥ इति ॥

अब देखो श्रावक को पहिले व्रत के पच अतिचार वर्जन करने तिसके पच मे अतिचार मे कहा कि (भत्तपाण, वोच्छेए) अब विचारना चाहिये कि श्री भगवान् न तो आनदादिक सर्व श्रावक को यह पच अतिचार नहीं आदरणे लायक कहे है और आदरे तो उस श्रावक को दोष लागे इस पचमें अतिचार में भगवत न मगट फरमाया कि माणी जीव का भात पाणि यानी खान पान का विराज नहीं करना करे तो व्रत में दूषण लागे तथा टीका में भी साफ खुलासा है.

टीका (भत्तपाणवोच्छे एत्ति अशन पानि या मदान) इति टीकार्थ-:भत्तपान का छेद उसको कहते है कि पशु आदिक को भोजन नहीं देना. इति अब विचार करना चाहिये. कि टीका में भी साफ लिखा कि माणी जीव पशु आदिक को भात पाणी नहीं देवे तो अतिचार लागे तो हे मित्रों ! तुम्हारे गुरुजी कहते है कि साधु के सिवाय दूसरे को देने के त्याग करे तो (उसकी गिर वखाणी वुद्ध) त्याग करने वाले श्रावक की भगवान् ने वुद्धि वखाणी और श्रीभगवान ने तो श्रावक को सूत्र में उपदेश दिया कि पशु आदिक को भात पाणी नहीं देवे तो व्रत मे अतिचार यानी दूपण लागे तो कहो भाई श्रीभगवान् के वचन को सत्य श्रद्धना चाहिये कि तुम्हारे गुरु भीषमजी की कपोल कल्पना को. हे मित्रों हमतो परमेश्वर के वचनों को ही सत्य मानते है और तुमको भी हित से कहते है कि हे देवानुमियाओं तुमभी विचार करो कि कि श्रीभगवान्ने तो श्रावक को अतिचार दिखलाये जिसमें

कहा कि भात पाणी पशु आदिक को नहीं देवेतो भी पापलागे, तो जो देने का त्याग करावे उसको क्या होता है सो बुद्धि बलसे बुद्धिमान विचार लेवो, और यहभी ख्याल-करो कि सूत्रमें कहा कि वृत्तिछेदकरो भिखारियोंको कहीं भी दान मत देवा, ऐसा कहा उसको भी झूठ बोलने वाला कहा. तो फिर साधु के सिवाय और कू दान देनेका त्याग करावें और त्याग कराने में धर्मश्रधे तो उन गरीबों को दान देनेका त्याग कराने वाले की श्रद्धा भी कैसे रही और श्रद्धा विना सयम भी नहीं रहा, तथा जो श्रावक के दान देने के त्यागमें धर्म मानते है तो उसकी भी श्रद्धा सिद्धात से उलटी होने से समकित् पणा श्रावकपणा कदापी नहीं रहा, इसवास्ते हम हित से कहते हैं कि तुम सिद्धात के वचनों को विचार के शुद्धाश्रद्ध धारन करो यहीं आत्मा सुधारने का धर्म है और इतनी वार्ता तो एक थोडा सा आवश्यक सूत्रको जानने वाला भी श्रावक समझता है कि जो श्रावक पशु आदिक को भात पाणी नहीं देवें तो पहिला व्रतमें अतिचार लगे है. और तुह्मारे तेरे पथियों की पुस्तक में भी पहिले व्रत के पंन में अतिचार में लिखा है यथा (भात पाणी ना विच्छेद कीधा होय तस्स-मिच्छामिदुकड) पुस्तक न २ पृष्ट २०६

यह देखो कि तुम तेरे पथी श्रावकलोग भात पाणी पशु आदिक को नहीं दिया हो तिस पापका मिच्छामिदुकड भी लेते हो और फिर पशु आदिक को भात पाणी देनेका त्याग करने में धर्म भी मानते हो. यह परस्पर श्रद्धा तुह्मारी तुह्मारा ही लेख से विरुद्ध होती है. अब भी विचार करके समझ लेवो तथा तुह्मारा यह लिखना है.

कि सूत्र नसीथ जी के १५ वें उद्देशा में बोल ७४ तथा ७५ वें में कहा कि गृहस्थ "असण, पाण, खादिम, सादिम, वत्थ, पडिग्गह, कम्मल, पाय पुच्छेण, यह आठ बोल कहे सो देवे दिवावे, देतेहुए को भला समझे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे इसका प्रत्युत्तर

यहां भी तुमने सुत्त, तणीया, अत्थ, तणीया, पणा धारणा करा क्योंकि सूत्र में तो साधु को आहार आदिक गृहस्थी को देना नहीं कल्पे ऐसा मूल पाठ में है और तुमने साधु का नाम छोड के समुच्चय ही लिख दिया इससे यह लेख तुम्हारा विपरीत है तिसका खुलासा हम अगाडी प्रश्न तीसरे के प्रत्युत्तर में करेंगे. क्योंकि तीसरा प्रश्न के उत्तर में तुमने इसीनसीथजी का १५ मा उद्देश का ७४ वा बोल की विपरीत पणे से साक्षी दी है तिस हेतु से तथा तुम्हारा यह लेख है कि सूत्र विपाक के पहिले अध्ययन में गौतम स्वामी जी ने श्री भगवान महावीर स्वामी से पूछा कि हे स्वामी मृगा लोडा ने पूर्वभव में क्या कुपात्र को दान दिया कि जिससे इस भव में ऐसा दुखी हुवा. इति प्रश्नोत्तर का पृष्ट ७ मा.

इसका प्रत्युत्तर ध्यान लगा के सुनो कि प्रथम तो विपाक सूत्र में तीन पाठ एकहीज कोटी में चले हैं परन्तु केवल कुपात्र दान का हीज नहीं वह ऐसे है ध्यान लगा के श्रवण करो

सूत्रपाठ-किंवादच्चा, किंवाभोच्चा, किंवा सायरित्ता

अस्यार्थः मृगा लोडलेने कौन अशुद्ध कुपात्र को दान दिया कोण अभक्ष्य मांसादिक भोगव्या कांई कुव्यसनादिक कीधा इति.

अब देखो सूत्र का तो आशय यह है कि कौन कुपात्र को दान दिया यानी कौन से चोर वेश्या को कुकर्म का साज रूप दान दिया या उत्तम मुनि को अशुद्ध आहार जहरादिक जैसे नागसरी ब्राह्मणी ने धर्मघोस मुनि को कडुवा तुवा दिया वैसा अशुद्ध दान मृगा लोडले ने क्या दिया या क्या मांसादिक खाया या वेश्यागमन, चोरी जुआदिक क्या कुव्यसन सेव्या जिससे ऐसा दुख मृगा लोडले ने पाया ऐसा भावार्थ सूत्र में है परतु सूत्र में ऐसा नहीं कहा कि साधू के सिवाय और को दान दिया जिससे ऐसा दुख पाया इति.

और हमारा प्रश्न तो यह था कि साधू के सिवाय दान देने में एकात पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ और तुमने कुपात्र चोरादिक को चोर्यादि कुकर्म सावद्य रूप दान देने का उत्तर वताया सो यह विरुद्ध है.

पूर्वपक्ष–हमतो साधू सिवाय सर्व को कुपात्र कहते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई साधू सिवाय सर्व को कुपात्र कहोगे तब तो तुम्हारी श्रद्धा से तो श्रावक भी कुपात्र ठहरेंगे फिर कुपात्र को तो चोर वेश्या सरीसा कहे है तो फिर तुम श्रावक को भी चोर वेश्या सरीसे श्रद्धोगे तो फिर चोर की सगत करे तो चोर सरीसा कहा है और वेश्या का वास में ही साधू को जाने की मनाई है यानी परिचय मात्र करना नहीं श्रावक की सभा में भी साधु बैठते हैं सगत करते है और श्रावक के घर पर तो साधु आहारादिक निमित्त जाते है और फिर सूत्र स्थानाग जी के चौथे ठाणे के तीसरा उद्देश में श्रावक को साधू के माता पिता सरीसा कहे हैं.

(अम्मापिइ समणे) इति सूत्रम् तो फिर साधूको श्रावक का परिचय करना भगवान ने फरमाया है और तुम श्रावक को चोर वेश्या सरीसा कुपात्र श्रद्धोग तो फिर चोर का परिचय करने वाले को सूत्र प्रश्न व्याकरण का तीसरा आश्रवद्वार में चोर कहा है तो फिर साधूजी भी चोर ठहरेगा और वेश्या की संगती से सूत्र दशमी कालिक का ५ मा अध्ययन में कुशीलिया कहा है. तो साधू भी तुम्हारे श्रद्धा से कुशीलिया ठहरेगा. ऐसे कहने से और श्रद्धने से तो सर्व धर्म नष्ट हो जावेगा फिर कुपात्र को तो शिष्य करने में तुम्हारे गुरुजी ने पाप श्रद्धा है. सो तो तुमने गोशाले को दीक्षा देने में पाप माना है. और तुम श्रावक को कुपात्र श्रद्धोगे तब तो तुम तुम्हारे गुरुजी के शिष्य यानी साधूश्रावक होते हो. और तुम्हारे गुरुजी तुमको शिष्य करते हैं.इसमें भी तुम्हारे गुरुजी में तुम पाप लगना श्रद्धोगे क्योंकि तुम तेरेपंथी श्रावक अपने आप को कुपात्र मानते हो इस हेतु से या कुपात्र को ज्ञान भी नहीं सिखाना और तुम्हारे गुरुजी तुमको ज्ञान सिखाते हैं. तो इसमें भी पाप मानना पडेगा इत्यादिक वहुत कथन श्रावक को कुपात्र मानते अटकेंगे.

पूर्वपक्ष—श्रावक को शिष्य तो भगवान् ने भी किया है और ज्ञान भी सिखाया है.

उत्तरपक्ष—हे भाई यह वात जरूर सत्य है परतु भगवान् ने श्रावक को कुपात्र नहीं कहे है. किंतु धर्मी धर्मरागी गुणपात्र रत्नभाजन समान रत्न की माला समान साधू के माता पिता समान इत्यादिक महा गुणपात्र कहा है. परतु

कुपात्र कहीं भी नहीं कहा है इससे तुम्हारा साधु के सिवाय सर्व श्रावक को कुपात्र मानना अत्यन्त विरुद्ध है कुपात्र तो चोर वेश्यादिक कुकर्मी है. जिससे सूत्र विपाकजी में चोरी आदिक कुव्यसन का सेवणा मद्य मांसका भक्षण करना और चोर वेश्यादिक कुकर्मी को कुकर्म का साजरूप यानी चोरी आदि कुकर्म कराने को दान का देना यह तीनों बोल सरीसे है परन्तु गरीब मगना भिखारी को रोटी देना और चोरी करना पर स्त्री सेवनादिक कुव्यसन का करणा एक सरीरा कभी नहीं होता है तिस वास्ते कुपात्र तो चोर वेश्या या अधर्म का उपदेशक है और श्रावक तो क्या परतु मगतादिक को भी कुपात्र कहने का कोई सिद्धात टीका अर्थादिक में नहीं है हा अलवत्ता मंगतादिक दीनवृत्ति करके आजीविका करने वाले को अपात्र कहे है सो करुणा भावना के देने में एकांत पाप नहीं कहा है परतु हे भव्यों एक और भी आश्चर्य कारी बात है कि तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रम विध्वस में भोलों को भ्रमाने के वास्ते विपाकजी सूत्र का पाठ भ्रम रुप लिखा सो वह भी बहुत विचारने लायक है

पूर्वपक्ष—बताइये हमारे गुरुजी जीतमलजी ने क्या भ्रम रूप पाठ लिखा है

उत्तरपक्ष—हे भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रम विध्वंसन के ३२ पत्र पै सूत्र दुःख विपाक का पाठ मृगा लोडले के पूर्व भव के पूछने का लिखा है तिस जगह ऐसा पाठ लिखा है सो जैसा अक्षर भ्रम विध्वंसन में है.

वैसा ही लिखते है कि नाम एवा, कि गोत्त एवा, कय

रंसि, गामसिवा, नगरसिवा (किवादन्चा) इतना पाठ तो सूत्र का लिख दिया और इसी पाठ के आगे का जो पाठ है कि (किवा भोन्चा, किवासमायरिना) इतना पाठ को छोड के फिर आगे का पाठ लिख दिया सो यह है. (पुराणं, दुच्चिणणाण, दुप्पडिकत्ताण, असभाण, पन्चाण, कम्माण, पावग, फलविति, विसेसे, पच्चाण, भवमाणे, भोच्चा,) इति सूत्रम

अब विचारिये भाई जीतमलजी ने आगे पीछे का तो पाठ लिखदिया और बीच का पाठ जो (किवाभोचा) किंवा समायरित्ता) यह ११ अक्षर सुत्रपाठ के क्यों छोडदिये. तो अनुमान होता है कि जीतमलजी ने ऐसा सोचा होगा कि मेरे गुरु भीषमजी की श्रद्धा तो ११ मी पड़िमाधारी उत्कृष्ट साधु सरीसा श्रावक को भी कुपात्र कहने की है और यहा सूत्र में तो कुपात्र को दान देनेका पाठ के अगाडी के पाठ मे तो यह कथन है (किंवाभोचा के०) मृगा लोडलाने मास आदिक क्या खायें (किंवा समायरित्ता के०) मृगालोडला ने चोरी करना परस्त्री और वैश्यागमन करना. शिकार करना. आदिक क्यों कुव्यसन आचरण किये. यह कथन सूत्रमें है तो सूत्रमें तो स्पष्ट है कि कुपात्र को दान देना और मासका खाना चौर्यादि कुव्यसन सेवना यह तीनों काम एक कोटीमें है. और अब मेरे गुरु भीषमजी की श्रद्धा तो. इग्यारमी पडिमा यानि साधू सरीसी वृत्ती धारन करने वाला उत्कृष्ट श्रावकको कोई दातार निर्दोष अन्न पानी देवे तोभी कुपात्र दान में गिनने की है और कुपात्र दान तो मास खाना शिकार करना.

सरीसा है सुत्रमें कहा है. जो मैं यहां भ्रमविध्वंसन में विपाक सुत्रका सपूर्णपाठ दिखा देउंगा. तब तो मेरा गुरु भीषमजी की श्रद्धा को माननी लोकों को कठिन पडजायगी. क्योंकि मांसका खाना. चोरीका करना. और पचेन्द्री जीवको शिकार खेल के मारना तिस सरीसा पडिमा धारी को अन्नादिक फासुकएषणिक देना. ऐसी श्रद्धाको कितनेक लोग नहीं मानेंगे तो मैं अपने गुरुजी भीषमजी की श्रद्धा को लोगों के हृदय में जमाने को सूत्र विपाकजी का पाठ मृगालोडला के पूछने का विषय का कुपात्र का दान देनेका पाठ तो लिख दू और इस के अगाडी मास खानेका चोरी आदिके कुव्यसन सेवने का सूत्रपाठ इसकोटी में है तोभी अपना मतपक्ष जमाने को ११ अक्षरों को छोडके आगे का पाठ लिखदूं जिस से मेरे गुरु भीषमजी की श्रद्धा जो है कि साधुके सिवाय हर किसी को दान देवे वह कुपात्र में है इस श्रद्धाको भोले लोग झट धारन कर लेवेंगे ऐसा सोच के जीतमलजी ने भोले लोगों को भ्रमाने के लिये भ्रमरूप सुत्रका पाठ लिख दिया होगा. नहीं तो ऐसा जैन सिद्धांत को चोरी रूप महाप्रायश्चित् का काम कौन करे जो बीचके ११ अक्षर छोडके आगे पीछे का पाठ को लिखे. पाठकगण विचारना कि भ्रमविध्वंसन में तेरे पंथियों के पूज्य जीतमलजी ने कैसा भ्रम भरा है. परंतु ध्यान में रखना साधू सिवाय सब कुपात्र नहीं है किंतु कुपात्र तो चोर वेश्या कुकर्मी होते है तिनको कुकर्म कराने को जो कोई दानमान करे उसको कुपात्र दान कहना चाहिये और चोरी करनादिक कुव्यसनादिक का सेवना और साधूके सिवाय किसी को अनुकंपा

ला के दान देना एक सरीमा मानोगे तो फिर प्रदेशी आदिक महा विचक्षण श्रावक ने भी भिक्षाचरों को दान दिया तो वे भी तुम्हारी श्रद्धा से चोरी करना सिकार खेलनादि सरीसा मानना पडेगा तो यह बात प्रत्यक्ष से और आगम प्रमाण से दोनों से विरुद्ध है इससे मृगा लोंढला की पूछा सूत्र में है तिसको ग्रहण करके साधु सिवाय सर्व को देने में पाप मानना विपरीत हे इति।

तथा तुम्हारा इसी प्रश्नोत्तर के ८ मापृष्ट में लिखा गृहस्थी असंयति अव्रती अन्यतीर्थी के देने में भगवान के वचनों से लाभतो दूर रहा. प्रत्युत. पाप बन्धन सिद्ध होता है. इसका प्रत्युत्तर. हे भाई पाप का तो साधू वार २ निषेध करते है. और सिद्धांत में तो कहा कि दान को निषेधे तो झूठा बोला कहा है तो फिर पाप सिद्ध होता तो सूत्र सूयगडाग के ११ में अध्ययन में सत्तुकारादि दान में पुन्य नहीं है ऐसा भी नहीं कहणा. एकांत पुन्य है ऐसा भी नहीं कहणा यह क्यों फरमाया क्योंकि जो एकात पाप होता तो फिर साधू को पुन्य है या पुन्य नहीं है ऐसा नहीं कहके पाप है ऐसा कहते क्योंकि पाप को पाप कहने में क्या दोष है और भी इन सर्व साक्षी से विशेष साक्षी इस विषय की सूत्र से देते हे सो सुनिये. सुत्र राय प्रश्रेणि में चित्त नामा श्रावक ने केसी स्वामी जा महा राज से अर्ज करी सो पाठ सूत्र का लिखते हैं सुनिये.

सूत्र तजइण, देवाणुप्पिया, पएसिस्सए, रन्नो, धम्म, माई खेज्जा, बहुगुणतर, खलुहोज्जा, पएसिस्सरन्नो, ते सिण, नट्ठु णन्य, दुप्पय, चउप्पय, मिग, पसु पखि, सिरीसिवाण, १ तज

इण, देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो. धम्म, माइक्खेज्जा, वहुगुण तरं, होज्जा, तेसिवहुण, समण, माहण, भिरकुयाणं, २ तंजइण देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो, वहुगुणतर, होभ्फा, सयस्स, वियण, जणवयस्स, ॥ ३ ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्यार्थः- ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहीस्यो तो घणो गुण निश्च होसे. ते के हने गुण होस्ये ते कहे छे प्रदेसीराजा ने धर्म कहिस्यो तो घणो गुण होसइ इह घणा नइ द्विपद चतुष्पद मृग पशु पंखी उदर नवलादिक एतलाने. तुमे प्रदेसीने धर्म कहीस्यो तो प्रदेसी राजा जीव वध थकी निवृतस्ये ते माटो द्विपद चतुष्पद घणाने गुण थास्ये ॥ १ ॥ ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहीस्यो तो घणो गुण होस्ये ते थकी भलु फल होस्ये ते घणा श्रमण साक्यादिक ब्राह्मण भीक्षा चर ने घणो गुण होस्ये. ॥ २ ॥ ते माटे जो हे देवानुप्रिया प्रदेसी राजा ने धर्म कहेसो तो घणो गुण होस्ये पोताना देशनों पणिगुण होस्यै धर्म साभली प्रदेशी पोताना देशने विषे कर भर आकेरा नहीं प्रवरतावस्ये ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो यहा सूत्रपाठ में कहा कि हे पूज्य प्रदेशी राजा को धर्म सुणावोगा तो वहुत लाभ होवेगा क्योंकि हमारा प्रदेसी राजा को धर्म सुनाने से द्विपद चतुष्पदादिक जीव को वहुत गुण होवेगा तथा भिखारी मगता को वहुत गुण होवेगा. तथा देश को भी डड छोडने से वहुत गुण होगा.

अब विचारो कि जो एकांत पाप की श्रद्धा जैसीकि तुम तेरेपथियों की श्रद्धा है वैसे जेकर चित्त श्रावक की श्रद्धा होती

तो केशी श्रमण महाराज से ऐसी अर्ज क्यों करते कि तुम्हारे धर्म सुनाने से मंगता भिखारी आदि को भी गुण निपजेगा यह मत्यक्ष तुम्हारी यानी तेरेपाथियों के श्रावकों की और चित्तजी श्रावक की श्रद्धा एक नहीं है या तुम्हारा गुरु सरीसी केसी श्रमण महाराज की भी श्रद्धा नहीं थी जेकर होती तो केसी श्रमण महाराज उसी वक्त कहते कि हे चित्त अपणी श्रद्धा तो असयति अव्रती मगता भिखारी कुं साता वास्ते उपदेश देने की नहीं अपणा उपदेश तो मदेशी को तारणे का है. सो तो नहीं कहा बल्कि निषेध मात्र भी नहीं करा. इस्से केशी श्रमण महाराज तुम्हारे गुरू यानी तेरा पंथियों के गुरु सदृश श्रद्धावान् नहीं थे. किंतु तीर्थंकर महाराज की सत्य श्रद्धावान् थे जिस्से कहा कि हे चित्त ४ कारण धर्म सुनने के हैं, उसमें एक भी कारण में वर्ते नहीं तो मैं धर्म कैसे सुनाऊं. तब चित्त ने कहा कि हे महाराज मैं मदेशी को घोडा फेरने के कारण से ले आऊंगा. सो आप धर्म सुनाना, तब केसी श्रमण महाराज ने कहा कि जाणसी यानि अवसर जाणसी. अब विचारो कि चित्त जी श्रावक, और केसी श्रमण महाराज की एक सी श्रद्धा है. नहीं तो निषेध कर देते, तो विचारो कि मगता भिखारी को दान देने में गुण नहीं है तो चित्त श्रावक जी केसी श्रमण महाराज के धर्मोपदेश देने से मगता भिखारी को दान देने रूप, या जीव मरते हुये बचने रूप गुण कैसे कहा. तथा फेर भी इस राय प्रश्रेणि सूत्र में जहां मदेशी राजा ने श्रावक पणा धारके दूसरे दिन व्याख्यान सुनके जाणे लगा, तब श्री केशी श्रमण महाराज ने जो कहा है

इए, देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो. धम्म, माईखेज्जा, वहुगुण तरं, होज्जा, तंसिवहुण, समण, माहण, भिरकुयाण, २ तजइण देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो, वहुगुणतर, होभा, सयस्स, वियण, जणवयस्स, ॥ ३ ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्यार्थः- ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहीस्यो तो घणो गुण निश्च होसे. ते के हने गुण होस्ये ते कहे छे प्रदेसीराजा ने धर्म कहिस्यो तो घणो गुण होसइ इह घणा नइ द्विपद चतुष्पद मृग पशु पंखी उदर नवलादिक एतलाने. तुमे प्रदेसीने धर्म कहीस्यो तो प्रदेसी राजा जीव वध थकी निवृतस्ये ते माटो द्विपद चतुष्पद घणाने गुण थास्ये ॥ १ ॥ ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहस्यो तो घणो गुण होस्ये ते थकी भलु फल होस्ये ते घणा श्रमण साक्यादिक ब्राह्मण भीक्षा चर ने घणो गुण होस्ये. ॥ २ ॥ ते माटे जो हे देवानुप्रिया प्रदेसी राजा ने धर्म कहेसो तो घणो गुण होस्ये पोताना देशनो पणिगुण होस्यै धर्म सांभली प्रदेशी पोताना देशने विषे कर भर आकेरा नहीं प्रवरतावस्ये ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो यहा सूत्रपाठ में कहा कि हे पूज्य प्रदेशी राजा को धर्म सुणावोगा तो वहुत लाभ होवेगा क्योंकि हमारा प्रदेसी राजा को धर्म सुनाने से द्विपद चतुष्पदादिक जीव को बहुत गुण होवेगा तथा भिखारी मंगता को बहुत गुण होवेगा. तथा देश को भी दंड छोडने से बहुत गुण होगा.

अब विचारो कि जो एकांत पाप की श्रद्धा जैसीकि तुम तेरेपंथियों की श्रद्धा है. वैसे जेकर चित्त श्रावक की श्रद्धा होती

तो केशी श्रमण महाराज से ऐसी अर्ज क्यों करते कि तुम्हारे धर्म सुनाने से मगता भिखारी आदि को भी गुण निपजेगा यह प्रत्यक्ष तुम्हारी यानी तेरेपथियों के श्रावकों की ओर चित्तजी श्रावक की श्रद्धा एक नहीं है या तुम्हारा गुरु सरीसी केसी श्रमण महाराज की भी श्रद्धा नहीं थी जेकर होती तो केसी श्रमण महाराज उसी वक्त कहते कि हे चित्त अपणी श्रद्धा तो असयति अव्रती मंगता भिखारी कु साता वास्ते उपदेश देने की नहीं अपणा उपदेश तो प्रदेशी को तारणे का है सो तो नहीं कहा वल्कि निषेध मात्र भी नहीं करा. इस्से केशी श्रमण महाराज तुम्हारे गुरू यानी तेरा पथियों के गुरू सदश श्रद्धावान् नहीं थे. किंतु तीर्थंकर महाराज की सत्य श्रद्धावान् थे जिस्से कहा कि हे चित्त ४ कारण धर्म सुनने के है, उसमें एक भी कारण में वर्ते नहीं तो मैं धर्म कैसे सुनाऊं. तव चित्त ने कहा कि हे महाराज मै प्रदेशी को घोडा फेरने के कारण से ले आऊंगा. सो आप धर्म सुनाना, तव केसी श्रमण महाराज ने कहा कि जाणसी यानि अवसर जाणसी. अब विचारो कि चित्त जी श्रावक, और केसी श्रमण महाराज की एक सी श्रद्धा है. नहीं तो निषेध कर देते, तो विचारो कि मगता भिखारी को दान देने में गुण नहीं है तो चित्त श्रावक जी केसी श्रमण महाराज के धर्मोपदेश देने से मगता भिखारी को दान देने रूप, या जीव मरते हुये वचने रूप गुण कैसे कहा. तथा फेर भी इस राय प्रश्रेणि सूत्र में जहा प्रदेशी राजा ने श्रावक पणा धारके दूसरे दिन व्याख्यान सुनके जाणे लगा, तव श्री केशी श्रमण महाराज ने जो कहा है

इण, देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो. धम्म, माईखेज्जा, बहुगुण तरं, होज्जा, तेसिंबहुण, समण, माहण, भिरकुयाणं, २ तंजइणं देवाणुप्पिया, पएसिस्सरन्नो, वहुगुणंतर, होज्झा, सयस्स, विषए, जणवयस्स, ॥ ३ ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्यार्थः- ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहीस्यो तो घणो गुण निश्च होसे. ते के इने गुण होस्ये ते कहे छे प्रदेसीराजा ने धर्म कहिस्यो तो घणो गुण होसइ इह घणा नइ द्विपद चतुष्पद मृग पशु पंखी उंदर नवलादिक एतलाने. तुमे प्रदेसीने धर्म कहीस्यो तो प्रदेसी राजा जीव वध थकी निवृतस्ये ते माटो द्विपद चतुष्पद घणाने गुण थास्ये ॥ १ ॥ ते माटे जो अहो देवानुप्रिया प्रदेसी राजा प्रते धर्म कहीस्यो तो घणो गुण होस्ये ते थकी भलु फल होस्ये ते घणा श्रमण साक्यादिक ब्राह्मण भीक्षा चर ने घणो गुण होस्ये. ॥ २ ॥ ते माटे जो हे देवानुप्रिया प्रदेसी राजा ने धर्म कहेसो तो घणो गुण होस्ये पोताना देशनों पणिगुण होस्यै धर्म सांभली प्रदेशी पोताना देशने विषे कर भर आकेरा नहीं प्रवरतावस्ये ॥ ३ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो यहासूत्रपाठ में कहा कि हे पूज्य प्रदेशी राजा को धर्म सुणावोगा तो वहुत लाभ होवेगा क्योंकि हमारा प्रदेसी राजा को धर्म सुनाने से द्विपद चतुष्पदादिक जीव को बहुत गुण होवेगा तथा भिखारी मगता को बहुत गुण होवेगा. तथा देश को भी डंड छोडने से बहुत गुण होगा.

अब विचारो कि जो एकांत पाप की श्रद्धा जैसीकि तुम तेरेपथियों की श्रद्धा है. वैसे जेकर चित्त श्रावक की श्रद्धा होती

तो केशी श्रमण महाराज से ऐसी अर्ज क्यों करते कि तुम्हारे धर्म सुनाने से मगता भिखारी आदि को भी गुण निपजेगा यह प्रत्यक्ष तुम्हारी यानी तेरेपाथियों के श्रावकों की और चित्तजी श्रावक की श्रद्धा एक नहीं है या तुम्हारा गुरु सरीसी केसी श्रमण महाराज की भी श्रद्धा नहीं थी जेकर होती तो केसी श्रमण महाराज उसी वक्त कहते कि हे चित्त अपणी श्रद्धा तो असयति अव्रती मंगता भिखारी कु साता वास्ते उपदेश देने की नहीं अपणा उपदेश तो प्रदेशी को तारणे का है. सो तो नहीं कहा बल्कि निषेध मात्र भी नहीं करा. इस्से केशी श्रमण महाराज तुम्हारे गुरू यानी तेरा पथियों के गुरू सदृश श्रद्धावान् नहीं थे. किंतु तीर्थकर महाराज की सत्य श्रद्धावान् थे जिस्से कहाकि हे चित्त ४ कारण धर्म सुनने के हैं, उसमें एक भी कारण में वर्ते नहीं तो मैं धर्म कैसे सुनाऊ. तब चित्त ने कहा कि हे महाराज मै प्रदेशी को घोडा फेरने के कारण से ले आऊंगा. सो आप धर्म सुनाना, तब केसी श्रमण महाराज ने कहाकि जाणसी यानि अवसर जाणसी. अब विचारो कि चित्त जी श्रावक, और केसी श्रमण महाराज की एक सी श्रद्धा है. नहीं तो निषेध कर देते, तो विचारो कि मगता भिखारी को दान देने में गुण नहीं है तो चित्त श्रावक जी केसी श्रमण महाराज के धर्मोपदेश देने से मगता भिखारी को दान देने रूप, या जीव मरते हुये बचने रूप गुण कैसे कहा. तथा फेर भी इस राय प्रश्रेणि सूत्र में जहा प्रदेशी राजा ने श्रावक पणा धारके दूसरे दिन व्याख्यान सुनके जाणे लगा, तब श्री केशी श्रमण महाराज ने जो कहा है

और प्रदेशी राजा ने जो कहा है, वह सूत्र पाठ लिखते हैं सो ध्यान लगा के एकाग्र चित्त से श्रवण कीजिये ॥

सूत्र पाठ–माणं, तुम्ह, पदेसी, पुव्विरमणिज्जे, भवित्ता पच्छा, अरमणिज्जे, भविस्ससि. जहा, वणसडेइवा, जावखल वाडेइवा, तएणं, पदेसीराया, केसीकुमार, समणं, एवंवयासी, नो, खलुभंते, अहं, पुव्वि, रमणिज्ज, भवित्ता, पच्छा, अरमणिज्जे, भविस्सामि, जहा, वणसडेइवा, जावखलवाडेइवा, अहणं, सेयविया, पमाखाइ, सत्तगामसहस्साइ, चत्तारिभागे, करिस्सामि, एगभाग, बलवाहणस्स, दलिस्सामि, एगभाग, कोठागारेचो, स्सामि, एगंभाग, अंतउरस्स, दलइस्सामि, एगेणं, भोगेणं, महइ, महालिया, कूडागार, साल, करिस्सामि तत्थणं, बहूहिं, पुरिसहे, दिणभत्ति, भत्तवेयणेहिं, विउल, असणं, पाणं, खाइम, साइमं, उखडावेत्ता, बहूणं, समणं, माहाणं, भिखुयाणं, पथीय, पहियाणय, परिभाए, २ बहूहिं, सीलव्वय, पचखाण, पोसहो, ववासेहिं, जाव, विहरस्सामि, त्तिकट्टुजामेवादिस, पाउब्भूए, तामेव, दिस, पडिगए, ततेणं, पदेसीराया, कल्लपाउ, जावतेजसा जलंते. सेयविया, पामोखा ति, सत्तगामसहस्साइ, चत्तारि, भाएकरेत्ति, एगं, भागं, बल-वाहणस्स, दलइनि, जाव, कूडागारसाल, करेति, तत्थणं, बहूहिं, पुरसेहिं, जावउवखुडावे, त्ता, बहूणं, समणाणं जा, व, परिभाए, माणे, विहरति ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्यार्थः–रखेतु प्रदेसी पूर्व रमणीक हुइ ने पछइ अर मणीक होइ वनखडनी परे १ जावत् नृत्यसाला इखुवाड २ खलवाड ३ तिवारे प्रदेसी राजा केसी कुमार श्रमण प्रतइ इम

वोल्यो नहीं निरचइह पूज्य हु पूर्वइं रमणीक हुइ ने. पछइ अरमणीक होइस्यउ जिमते इखनखड जावत पूर्ववत् खलवाडा नी परे हिवइडा थकी हु सेविया प्रमुख सात सहस्र गाम महारा छइ तेह चिहु भागई करिस्यइ एक भाग ने हाथी घोडादिक ने देस्यउ एक भाग कोठार नइ निमित्तइ मुकस्यउ एक भाग अतःपुर नइ देस्यउ १ भाग भातसाटइ एतलेइ दान वास्ते आपस्यउ विस्तीर्ण अमण पाण इत्यादि ४ प्रकारे च्यार आहार निपजावी घणानइ श्रमण ते सन्यासी, ते ब्राह्मण भिक्षा चरनइ, पथी या रटाउ ने माहणादिक नइ विहची देता देता घणा शुभाचार बार व्रत प्रत्याख्यान नवकारसी प्रमुख, पोषध उपवासे करी सहित जावत् आपणो आत्माभावतो थको विचस्यउ इमकहो जेह दिसी थकी आव्युहुतउ तणीजादिसि पाछउ गयउ तिवारे प्रदेसी राजा काली प्रगट जावत् तेजीकरी जाज्वल्यमान सूर्य उगइ थकइ सेतिनका प्रमुख सात सहस्र गाम न इचार भाग करे. एक भाग हाथी घोडा रथ निमित्तइ देइ जाव पूर्ववत् कूडागार साला करावइ तिहा घणा पुरुष जावत् अशनादिक च्यारी आहार निपजावइ ने घणा श्रमण सन्यासी प्रमुख न ब्राह्मण जाव पूर्ववत् विह चीदतो थको विचरे छइ ॥ इति सूत्रार्थ । अब देखो यहा सूत्र पाठ में कहा कि केसी श्रमण महाराज ने कहा कि हे प्रदेशी तुम पेस्तर रमणीक होके पीछे अरमणीक मत होना वन खडादिवत् तब प्रदेशी राजा ने कहा कि हे महाराज मे पहिले रमणीक होके पीछे अरमणीक नहीं होउगा मे मेरे सितब का आदि द ७००० ग्राम के चार भाग करूगा तिसमे एक भाग

तो हस्ती घोडादिक कटक को देऊगा. एक भाग कोठार भडार में देऊगा, एक भाग अतःपुर को देऊगा, और एक भाग की मोटी दान शाला मडाऊगा, तहा चार प्रकार का आहार निप जा के बहुत से श्रमण साक्यादि ब्राह्मण भिखारी मगतादिक को देऊगा और अपने व्रतादिक को पालता भी रहूगा. ऐसा कहके घर को गए. फिर प्रातःकाल होते ही पूर्व कथित राज्य के ४ भाग करके राज्य को चौथे हिस्से को दान देता थका प्रदेशी राजा विचरता भया. अब विचारो कि प्रदेशी राजा हाथी घोडा अतःपुर भडार का तो श्रावक हुवां पहले भी सार सभार करता था. परन्तु मगता भिखारी का तो राजा शत्रु था क्योंकि यह कथन पहिले ही चित्त जी ने अर्ज करी वहा हो चुका है. तो विचारना चाहिये, कि जो मंगतादिक गरीब को दान देने में एकात पाप होता तो या कुछ भी गुण नहीं होता तो राजा प्रदेशी श्रावक पण पाया पीछे दानशाला क्यों मड वाता और तुम्हारी श्रद्धा अनुसार इतना पाप क्यों बाधता क्योंकि राजा से किसी ने जबर्दस्ती से नहीं दिलवाया. अपितु अपनी इच्छा से दिया है. और केसी स्वामी जी महाराज की तुम्हारे गुरुजी जैसी श्रद्धा होती तो राजा को त्याग क्यों नहीं करा देते. क्योंकि हाथी घोडा भडार अतःपुर को तो श्रावक हुवां पहिले ही देता था. तथा दिया विना ससार का निर्वाह नहीं होवे. परन्तु मगतादिक को तो देने का त्याग सूखे निभ जाते. और केसी श्रमण महाराज, ऐसा भी क्यों नहीं कह देते कि हे राजा धर्म पाके निरर्थक मगता भिखारी को देने का पाप क्यों बाधता है. क्योंकि तुम कहते हो कि लेणेवाला लेवे और देणे वाला देवे, उस वक्त में निषेध नहीं करणा

उपदेश में दान देणे में पाप बताके त्याग करावे तिस का अटकाव नहीं. वडा धर्म होता है ऐसा तुम्हारे गुरु जीतमलजी भीषमजीका कथन है सो हमने ऊपर तुम्हारे ग्रथ की साक्षी से लिखा है. तो फिर केसी श्रमण महाराजने प्रदेशी को त्याग क्यों न कराये एकात पापका उपदेश क्यों दिया नहीं, क्योंकि यहा तो नहीं तो कोई मगता लेनेवाला खडाथा नही प्रदेसी राजा देता था तो फिर निषेध केसी स्वामीजी ने कैसे नहीं कराया परन्तु निश्चय जानो कि केसी स्वामीजी की श्रद्धा दान निपेध करणे की तीनों काल में नहीं जिससे निपेध नहीं करा इस्से तुम्हारी श्रद्धा केसी स्वामीजी की श्रद्धा से एक अशमात्र भी नहीं मिलती है कदाचित् तुम ऐसा भी तर्क करो कि यह तो राजाओं का कामहै सो हमेसाही करते रहते है, जेसा हाथी घोडा के पोपने सरीसा वोभी पाप है तो यह भी तुम्हारी कल्पना है सो सूत्रसें नहीं ठहरती है. क्योंकि राजाओं की रीत होती तो प्रथम श्रावक नहीं था. तब दान शाला क्यों नही होती, क्योंकि हाथी घोड़े अन्तःपुर भडार तो श्रावकपणा पाने के पेश्तर ही थे. और दान शाला ता नवीन कराने का अधिकार सूत्रमें खुलाशा हैं. तो दानतो श्रावक हुवा बाद दिया है. पहिले नहीं और हाथी घोडा पोपने सरीसा मगता भिखारी का दान नहीं होता है क्योंकि हाथी घोडा सें तो राजाको स्वार्थ है. परन्तु मगते भिखारी से क्या स्वार्थ है. क्या वह फौज में लड़ाई के काम आते हैं. क्या राजा को पैदास देते हैं नहीं २ उनको तो केवल करुणा भाव से देना है. सो हाथी, घोडा सरीसा किसी तरह सिद्ध

नहीं होता है. यह तो करुणा दान में है तथा तुम्हारे तेरेपथियों का मत चलाने वाले भीषमजी का उपदेश दान निषेध का है. सो भी जरा सा यहा पर प्रकट करते है. देवगुरु धर्म ओलखाण नामा पुस्तक नं० २ ढाल १२ मी भीषमजी कृत गाथा.

(इवरत में दान देता थका पडे श्रावक जीरे मनधडकजो काम पड़े इवरत में दान रो जब तो ही समीसर्म जी. पीछे करो पिछतावो तेहनो कायकठी लापडे कर्म जी ३६ इवरत में दान देवातणो टालो परो करे उपायजी. जाणे कर्म बंधे छे माहरे मोने भोगवता दुख थायजी. ४० इवरत में दान देता थकां बंधे आठों ही पाप कर्म जी) इत्यादिक ।

इन गाथाओं का भावार्थ सुनिये. व्रत में यानि साधु सिवाय मगतादिकन को दान देते थके श्रावक के मन में धडक पड जाय कि हाय मेरे को इन पापियों को कहा देना पड़ा कदाचित् शर्माशर्म देवे तो पीछे पश्चात्ताप करे कि हाय मैंने अव्रती मगतादिकन को दान दिया. मेरा क्या हाल होवेगा. मुझे धिक्कार होवो जो मैंने इन पापियों को दान दिया. ऐसा पश्चात्ताप करे तो उसके कछुक कर्म ढीले पडे ३६ अव्रती मंगतादिकन को देने का आप टाला करे अन्य को करावे किंतु मगतादिकन को साधु सिवाय दान देके मत डूबो. दान देने का टाला करते को भला जाणे तो अच्छा किया मंगतादिकन को दान नहीं दिया. क्योंकि श्रावक मन में जाणे कि अव्रती मंगतादिकन को देऊगा तो मारे आगे पाप कर्म बधेंगे. फिर मुझको भुगतणा पडेगा. जब मुशकिल होगा ऐसा जाण के टारा लेवे. अर्थात् नहीं देवे ॥ ४४ ॥

अव्रती मगतादिकन का देन में आठों पाप कर्म बंधे, जिस से नहीं देना, यह कथन उक्त गाथा का भावार्थ हुवा, अब जरा बुद्धिमान् पुरुष विचारिये कि भीषमजी की श्रद्धा का श्रावक तो वही होगा, कि जिसके मगतादि अव्रती को दान देता धडका पडजाय, या कोई राज पचायत का लाज मे देना पड तो वह तो पश्चात्ताप करे, वह श्रावक भीषमजी की श्रद्धा के अनुकूल है परतु उत्साह से किसी के, विना शर्माशर्म से अपनी खुशी से देवे वहतो श्रावक भीषमजी की श्रद्धा के अनुकूल रहा ही नहीं, तो हे मित्रों उक्त तुम्हारे गुरु भीषमजी का लेख प्रदेशी राजा श्रावक से मिलावो कि उस प्रदेशी राजाजी ने जो नहीं तो शर्माशर्म से दिया नहीं धडका खाया. कि हाय मेरे को कहा देना पडा, यह भी नहीं, उलटा अपनी खुशी से राज्यका चौथा हिस्सा दान पुन्य में दिया, या तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा, दानदेने में एकातपाप और आठों पाप कर्म अशुभ बधते है ऐसी श्रद्धा है तो फिर प्रदेशी राजा. श्रावक पणा पाये बाद यह काम क्यों किया और केसी श्रमण महाराज ने रोका क्यों नहीं, कि हे प्रदेशी धर्म पायके यह महा पाप कर्म क्यों बाधता है. जैसे कोई पुरुष धर्म में नहीं समझने से पहिले तो मद्य मास नहीं खावे और सिकार खेलना चोरी करना परस्त्री सेवनादिक अधर्म नहीं करे. और धर्म पाया बाद पूर्वोक्त अधर्म करे वह धर्मी कैसे होवे. या उसको गुरू महाराज क्यों नहीं समझावे. कि हे भाई अवतो तू धर्मी हुवा सो जो महापाप कुव्यसनादि पहिले नहीं करता वह अब नहीं करना चाहिये. और करता था वह छोडना

चाहिये वेमेही तुह्मारी श्रद्धा के लेखे तो जैसा मद्य मांस खाना चौरी परस्त्री सेवनादिक कुकर्म करना. और मगता भिखारी को देना. यह दोनों एक कोटी, यानी एक पंक्ती में गिनते हो तो प्रदेशी राजा श्रावक हुवा पेश्तर तो दान देताही नहीं था. सो यह मंगता को दानरूप महाभयकर पाप कर्म श्रावक हुवा पेश्तर तो राजा को तुह्मारी श्रद्धा से नहीं लागता था और अब प्रदेशी राजा श्रावक हुवा वाद दानशाला मडवाई तो फिर दान शाला तुम्हरी श्रद्धा से परस्त्री, चोरी वेश्यागमन सरीसा कुकर्म तुम्हारे गुरुजी गिनते है तो फिर तुह्मारी श्रद्धा अनुसार तो प्रदेशी राजा ने श्रावकपना क्या धारा मानों वडा पाप आरन किया कि जो पहिले दान शाला नहीं थी सो नवीन मडवाई और केसी स्वामीजी महाराज ने प्रदेशी को रोकया क्यों नहीं. कि ज्यो पहिले नहीं करता वह कुकर्म अवक्यों करता है.

पूर्वपक्ष-प्रदेशी राजा को तो हम श्रावक हुवा वाद वडे धर्मवान् मानते है और धर्मवंत होने से पहिले स्वर्ग में सूर्याभविमान् के मालिक महान् ऋद्धिवान् देव हुए है. और वहां चव के महा विदेह क्षेत्र में जन्म धारन करके सयम पाल सें मोक्ष जावेंगे. तिससे हम उनको अधर्मी नहीं मानते है.

उत्तरपक्ष-हे मित्र इससे ही हम कहते हैं कि मास खाना वेश्या परस्त्रीगमन करना. सिकार करनादिक कुकर्म सरीसा मंगता भिखारी को दान देना नहीं होता है और कुपात्र दान में भी नहीं है क्योंकि कुपात्र दान तो वेश्यागमन सिकार करने सरीसा सूत्र विपाक का प्रथम अध्ययन में कहा है. इस

हेतु से कुपात्र दान तो वेश्या चौरादिकों को कुकर्म कराने को देवे वह है और दुखी भूखा मगतादिकों को करुणा करके देना सो तो करुणा दान है. और सूत्र ठाणांग का दशमा ठाणा में भी दुखी को देना सो करुणा दान में है और करुणा दान देने में एकांत पाप नहीं है इससे हम कहते है कि हे मित्रों अब भी श्री भगवान् का मार्ग की श्रद्धा रखणी होवे तो विचारना कि गरीब अभ्यागत को दान देने में कुछ भी गुण न होता तो प्रदेशी राजा श्रावक पणा पाम्या पीछे दानशाला क्यों मंडवाता या एकांत पाप दानशाला मंडा के दान देने में होता तो केसी श्रमण महाराज त्याग क्यों न कराते. क्या केसी श्रमण महाराज ४ ज्ञान १४ पूर्वधारी से भी तुम्हारे गुरु भीखमजी को ज्ञान अधिक था. जो श्रावक को गरीबों को देने का त्याग कराते या त्याग का उपदेश देते. और ऐसी सावद्य जोडो करके कहते है कि श्रावक को साधु सिवाय दान देने का त्याग कराना चाहिये. यह सब कथन जैन सिद्धांत से विरुद्ध है.

पूर्वपक्ष-हमारे गुरुजी कहते है कि साधु सिवाय और को दान देने का त्याग अभिग्रह आनंद जी श्रावक ने करा है तिससे हम भी साधू सिवाय दान देने का त्याग का उपदेश देते है. और त्याग कराते है.

उत्तरपक्ष-हे भाई यह बात तुम्हारे गुरुजी की कपोल कल्पना की है परंतु आनंदजी ने ऐसा अभिग्रह धारण नहीं किया कि मैं साधू के सिवाय किसी को दान नहीं देऊंगा हां अलबत्ता यह अभिग्रह सूत्र उपासक दशा में पहिला

अध्ययन में आनन्दजी ने धारण करने का अधिकार है कि हे भगवान् अब मैं श्रावक हो गया हू इसलिये आज पीछे जैन धर्म के द्वेपी ऐसे जो अन्यदर्शनी के गुरु. अन्य दर्शनी के देव या जैन दर्शन से भ्रष्ठ होके जो साधु अन्य के दर्शन में जाके मिल गया. इन सर्व को मैं वंदना नमस्कार सत्कार सन्मान दानादिक नहीं करूगा, क्योंकि वह धर्म के द्वेपी होने से उनसे मैं बिना बुलाया बोलूंगा भी नहीं, यह अभिग्रह धारन करा सो धर्म के द्वेपी की सगत वर्जने के वास्ते है. परतु करुणा करके देने का नियम नहीं लिया है, औरफिर इस विषय में इतना विचार करना चाहिये कि १२ व्रतधारी जैसा आनद श्रावक हुवा वैसे १२ व्रतधारी प्रदेशी राजा भी हुवाथा. और राजा प्रदेशीने भी आनंद सरीसा अभिग्रह धारन किया था, परतु करुणा करके देने का नियम नहीं लिया है. जरूर लिया होता तो श्रावक हुवा बाद दान शाला क्यों मंडवाई,यह तो खुलासा दीख रहा है कि धर्म के द्वेपी श्रद्धा से भ्रष्ट को वंदना, नमस्कार, दान, मान गुरुबुद्धि से करना छोडा है. परतु करुणा करके नहीं देना ऐसा अभिग्रह किसी श्रावक ने नहीं लिया है बल्कि सूत्र में जहा २ श्रावक के गुण का वर्णन चलता है तहां २ यह पाठ है कि (अवंगुय, दुवारे)

अस्यार्थः (अवगुय, के०') जेहना घरना वारणा सदा उघाडा छै दान गुणे ॥ इति सूत्रार्थः

अब देखो सूत्र में श्रावक लोकों का ऐसा गुण श्री भगवान् ने बताया है, कि जिनके घर के द्वार, दुखी सुखी आदि को दान देने निमित्त खुले हुए हैं, तथा सूत्र भगवती जी का

दूसरा शतक पंचम उद्देश में, जहा तुंगिया नगरी के श्रावक का कथन है तहा टीकाकार जी ने भी इस पाठ की टीका में ऐसा लिखा है ॥

टीका-भिक्षुक प्रवेशार्थं औदार्यादस्थगित गृहद्वार इत्यर्थः टीकार्थः भिक्षुक लोगों के प्रवेश निमित्त उदारपणा से नहीं ढका है घर का द्वार जिनका. इति

यह देखो टीका में भी कहा कि भिक्षाचरों को अपने घर में आने वास्ते दान देने की उदारता से गृह के द्वार खुले रखे हैं जिन श्रावकों ने, तो विचारो भाई गरीब भिक्षाचरों को दान देने में महा कुकर्म या, एकांत पाप होता तो दान देना श्रावक का गुण में सूत्र में कथन कैसे करा. तथा कदा चित तुम्हारे गुरुजी कहदेवे, कि यह तो साधू को देने वास्ते द्वार खुले रखने का सूत्र में कहा है. तो यह बात भी स्वक पोलकल्पित विपरीत है क्योंकि साधू को दान देने का तो इस पाठ से न्यारा पाठ अगाडी इसी कथन में चला है इस हेतु से (अवगुय, दुवारे) इस पाठ का अर्थ तो भिखारी गरीबों को दान देने निमित्त श्रावक के घर का द्वार खुला है यह ही सत्य है तथा आणंद जीके साधू सिवाय दान के त्याग थे तो फिर चार हजार गायों को क्यों पोषते. या पुत्र को भार दिया तब सर्व न्यात को जिमाई तब उनका अभिग्रह रहा कि टूटा.

पूर्वपक्ष-इन कामों का तो आनंद जी ने आगार रखाथा

उत्तर-हे भाई! आगार तो अन्य दर्शनी की भक्ति का करने का अपना मन नहीं, और राजादिक जबरन से करावे उसको

कहिये और न्यात तो अपनी खुशी से आनद जी ने जिमाई है, परतु किसी की जबरन से नहीं, ऐसे ही प्रदेशी राजाने दानशाला मंडवाई सो अपने खुशी से, परंतु किसी के जबरन से या शर्म से नहीं. इससे स्पष्ट है कि आनदादिक श्रावकों ने जिन धर्म के द्वेषी अन्य दर्शनी के गुरु को या उनके देवकों. या भ्रष्ट साधू को वदना, नमस्कार, दान, मानादिक से परिचय करना छोडा, परतु साधू के सिवाय दान देना का अभिग्रहँ आनंद जी ने लिया, यह कहना व्यर्थ स्वकपोल कल्पित है.

अब हमारा इतना सूत्रपाठ अर्थ टीकादिक से खुलासा करणा इसी हित से है, कि हे मित्रों! तुम जैनी नाम धराते हो और जैन सिद्धात का नाम लेके कहते हो कि मगतादिक दुखी को देने मे एकात पाप है और सिद्धांत में कहा भी नहीं है, जिससे हमारा तुमको कामल आमंत्रणा से कहना है कि सिद्धात का अन्छता नाम ले के धर्म की हानि का काम करना नहीं चाहिये, क्योंकि जैन धर्म में करुणा करके दान देने का निषेध कहा भी नहीं है तिससे हमने इतने सिद्धात के पाठसे खुलासा किया है, अब कोई जैन मत से अन्य मन वाला प्रश्न करता है कि तुम्हारे जैन सिद्धात में जैन मत के साधू सिवाय दूसरे को अन्नादिक देने में पाप है ऐसा हम सुनते है सो यह बात कैसे है.

उत्तर–हे भव्य! यह वात जैन सिद्धात के अजाण की है, क्योंकि हमारे जैन सिद्धात में करुणा करके अन्नादिक देने का निषेध कहां भी नहीं है, परतु हे भाई तुमने यह वात जैन सिद्धात से उलटी श्रद्धा वाले से सुनी होगी, तिससे तुमको

यह शका उत्पन्न होती है, परतु यह बात सर्वथा व्यर्थ है हा उसका दान सन्मान करना वर्जित है, कि जो दया धर्म का द्वेषी है लोको को मिथ्या उपदेश दे के धर्म भ्रष्ट करने वाला होवे, तैसे को उत्तम समझ के जिमाना या सत्कार सन्मान करना वर्जित है यह हमारा जैन सिद्धात का लेख है, और ऐसे कुपात्र को देने का निषेध तो स्मृति पुराणादिक बहुत से ग्रथो में है. सो विद्वान् तो समझ लेते है, परंतु कोईक भद्रिक को नही मालूम होवे, और जैन ग्रथों के विरुद्धियों के वचन सुन के सत्य समझ लेवे उसके वास्ते हम मनुस्मृति की साक्षी देते है सो सुनिये कि जिसको वेद तुल्य बडे बडे विद्वान् सस्कृत विद्या के पारगत मानते है.

श्लोक—पापडिनो विकर्मस्थान् विडालवृत्तिकान् शठान् ।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाड्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥ १ ॥
श्लोक ३० मा मनुस्मृति चौथा अध्याय

इसका भावार्थ—पाखडी, विरुद्धधर्मी, बक वृत्ति का करने वाला, विडाल सरीसी वृत्तिवाला, शठ धूर्त कुहेतु का लगाने वाला, बुगले सरीसा कपट क्रियावान, इतने को वचन मात्र से भी अर्चा सत्कार करना नहीं चाहिये. इति.

अब विचारा कि ऐसे कुपात्र की सेवा तो तुम्हारे शास्त्र में भी वर्जित करी है. और हमारे सिद्धात में भी इस विषय का जो सूत्रपाठ है सो लिख दिखाते हैं.

सूत्र—पर पापड, पशसा, परपापड, सयवोवा. इति.

अस्यार्थः—परमत के पापडी आदिक दुष्ट कर्म के उपदेशक की प्रशसा और उससे परिचय करना वर्जित है. क्योंकि

ऐसे की संगति से गुणवान् भी निर्गुण हो जाता है, इस हेतु से परंतु करुणा करके दान देने का निषेध किसी जगह नहीं है (अनुकंपा, दाण, पुण, जिणेंहि, नकयावि. पडि सहित) इति वचनात् ॥ अनुकंपा दान की किसी तीर्थंकर परमेश्वर ने निषेध नहीं किया है. यह सूत्र भगवतीजी के अर्थ का लेख है सो तुम समझ लेना' अब पूर्व पक्षों का कथन करते है तथा तुम्हारा लेख प्रश्नोत्तर के ८ मा पृष्ट में है कि साधू के सिवाय दान देने में लाभ होवे तो साधू भिक्षा लावे उसमें से यदि किसी तरह बच जाय तो वह आहर हर किसी को देकर इस धर्म को हासिल कर सक्के है और आप के कहने मुताबिक यदि धर्म होता होवे तो साधू वैसा क्यों नहीं करते इसका प्रत्युत्तर--अरे मित्रों तुम जैनी नाम धराके जैन धर्म के अनजान सरीसा प्रश्न उठाया. परन्तु सावधान होके सुनिये इसका निर्णय दिखाते है कि प्रथम तो हमने इसका खुलासा पेश्तर कर दिया है कि साधू को तो एकांत पुण्य, या एकात पाप दोनों नहीं कहना. साधू को तो इसमें मौन रखणी हमारा तो तुमको कहना है कि भगवानने तो एकात पाप. अनुकंपा करके देने में नहीं कहा. एकात पाप कहे उसको पाप कर्म का बधन करा है सो हमने उपर सिद्धात पाठ से बतलादिया है. अब जरा बुद्धि बल होवे तो विचार लेवो कि जिन कामों का एकात पुण्य पाप का हमारा कहना भी नहीं है. तो देना कहां से हो सकता है. बहुत से काम मिश्रपक्ष के यानी पुण्य पाप करके सहित हैं. उनकी साधूलोक आज्ञा या निषेध नहीं करते.

पूर्वपक्ष आज्ञा तोनहीं देते परतु भगतादिकों के देने में तुम

नया शुद्धते हो.

उत्तरपक्ष–देनेमें जितनी करुणा या ममता पुद्गलों से उतारणो उतना पुन्य का विभाग है. और देने लेने रूप हिंसादि प्रवृत्ति उतना पाप है. इससे मिश्रपक्ष है क्योंकि प्राणि जीवों की करुणा में शुभयोग है. और भगवतीजी के ५ में शतक छठ्ठा उद्दशा मे वस्तु वेचने वाले को जहातक वस्तु अपने पास है वहातक भारी क्रिया लागे और वेचके देदी तब हलकी क्रिया लागे. तो विचारना चाहिये कि लोभ निमित्ते वस्तुको वेचेन से भारी क्रिया से हलकी क्रिया का लाभ हुवा तो अनुकंपा निमित्ते दया का प्रणाम से देवे उसको लाभ कैसे नहीं होवे.

पूर्वपक्ष–मिश्रपक्ष कहा कहा है

उत्तरपक्ष सिद्धात में सर्व कथन तीन पक्ष में समावेश होते हैं. वह ऐसे हैं. धर्मपक्ष की जिसमें साधूजी आज्ञा देवें और उपदेश दे के करावे. वहतो काम धर्मपक्ष में है. और अधर्मपक्ष कि जिस काम को साधूजी निषेध करें उपदेश देके उसको छोडावे, वह काम अधर्म पक्ष में है. और मिश्र पक्ष. कि जिस काम को साधू मुनि नहीं निषेध करे और नहीं स्थापन करें किंतु मौन रक्खे, क्योंकि पुन्यपाप अर्थात् धर्म अधर्म दोनों सामिल होने से एकात पाप निषेध या स्थापन नहीं करे.

पूर्वपक्ष–मिश्र पक्ष के कार्य कौनसे हैं कि जिन कामोंका साधूजी एकात निषेध या स्थापन नहीं करे.

उत्तरपक्ष–सुनिये भाई बहुत से कार्य सिद्धात में है सो हम थोडे से ही दिखाते है कि प्रथम रायप्रश्रेणीसूत्र में चित

सारथी ने केसी श्रमण महाराज से अर्ज करी कि मैं राजा प्रदेसी को घोडा फिराने के मिस से उसको साथ लेके आ ऊंगा, आप धर्म सुनाना अब देखिये कि राजाको धर्म सुनाना तो अच्छा है. परन्तु घोडा फिराने की हिंसा पाप में है, इसमे कैसी श्रमण महाराजने वहा ऐसा नहीं कहा कि तैने अच्छा काम विचारा, क्योंकि ऐसे कहने में घोडा फिराने की सावद्य क्रिया की अनुमोदना लागे और ऐसा भी नहीं कहा कि यह काम बुरा है, क्योंकि बुरा कहे तो राजा प्रदेसी को धर्म सुनाने रूप धर्म प्राप्ती की हानि रूप होवे, और चितजी अपने अवसर को जाणते थे सो अनेक योजन लग घोडों को दौडा के प्रदशी राजा को बाग में ले आये. यह प्रत्यक्ष मिश्र कार्य सूत्र राय प्रश्रेणिजी में है. धर्म सुनाने की दलाली का लाभ और घोडा दौडाने का खर्च रूप हिंसा हुई जिससे मिश्रपक्ष तथा सूत्र ज्ञाता जी के १२ में अध्ययन में सुबुद्धि प्रधान ने राजा जित शत्रु को पाणी का दृष्टांत यानी खाई का पानी को सुधार के राजा को समझाया और श्रावक किया, यह पानी का आरंभ है सो खर्च रूप हिंसा है. और राजा को समझाने का लाभ यह मिश्रपक्ष हुवा, तथा ज्ञाता जी का ८ मां अध्ययन में श्री मल्लीनाथ जी महाराज ने मोहन घर कराके पुतली के हेतु से छ मित्री राजा को प्रतिबोधे, प्रतिबोधने का लाभ और मोहनघर के खर्चरूप हिंसा, यह मिश्रपक्ष तथा ज्ञाताजी के पचंम अध्ययन में थावरचा पुत्र के दिक्षा के अवसार में श्रीकृष्ण महाराज ने ढंढोरा फिराया कि जो दिक्षा लेवे उसको श्रीकृष्ण जी आज्ञा देते हैं,

और पिछाड़ी वालों की सार संभार मै करूगा. यह सुन के हजार पुरुषों ने सयम लिया; यह सयम दलाली का तो लाभ और ढढेरे सम्बधी खर्च रूप हिंसा यह मिश्रपक्ष, तथा रायप्रश्रेणी में राजा प्रदेशी धर्म सुनके विना वदना करके जाने लगा, तब केसी श्रमण महाराज ने कहा, कि हे राजन्! तैंने ऐरे से टेढे टेढे प्रश्न किये, और अब विना खमाया कैसे जाने लगा, तब राजा ने कहा कि हे स्वामिन्! मै कल मेरा अतःपुरादि परिवार सहित मोटे मडाण से आके आपको वदना करके अपराध क्षमा कराऊगा, तब केसी श्रमण महाराज ने नहीं तो अच्छा कहा, क्योंकि अच्छा कहे तो राजा के आने की नगर शृगार की अतः- पुरादिक स्नान की. हाथी घोड़ों के आने जाने की अनुमोदना लागे और निषेध भी नहीं किया. क्योंकि निषेध करने से- जिन मार्ग का प्रभाव या राजा की भक्ति का अतराय होवे. इससे मिश्रपक्ष होने से केसी स्वामीजी महाराज ने हा नां कुछ भी नहीं कहा. राजा ने कोणीक के परेनडे आडम्बर से केसी श्रमण महाराजका दर्शन करके अपराध क्षमा कराया. यह भक्ति का लाभ और अतःपुरादि शृगार और आने जाने रूप खर्च सो हिंसा यह मिश्रस्थान तथा सूत्र रायप्रश्नेणि में केसी श्रमण महराज प्रदेशी को कहा कि हे प्रदेशी तू रमणीक हो के पीछे अरमणीक मत होना. तब प्रदेशीराजा ने राज के चार भाग किये एक भाग घोड़ा आदि का. १ दूजा भाग भडार कोठार में २ तीजा भाग अतःपुर को ३ चौथा भाग की दानशाला ४ दान के सिवाय तीन कार्य तो पहिले ही थे. परतु राजा का चौथे हिस्सा का दान देना यह

कार्य रमणीक पने का है. परंतु केसी स्वामीजी महाराज ने हां नां कुछ भी नहीं कहा. क्योंकि हां कहते तो भात पाणी निपजाणे रूप सावद्य की अनुमोदना लागे.

नां कहे तो राजा का करुणा भाव और द्रव्य से ममत्व उतार के दान देना उस लाभ का छेदन होवे तथा भिखारियां को अंतराय होवे यह प्रत्यक्ष मिश्र ठिकाना है. अब हृदय के नेत्र खोल के देखो कि राजाने परिवार सहित आके अपराध खमाउगा ऐसे कहा वहा भी मौन रक्खी और दान देनेका कहा वहा भी मौन रक्खी क्योंकि दोनों में सावद्य का सद्भाव है. और लाभ यानी धर्म का भी सद्भाव है. इससे साधुजन भिक्षाचरों को दान देवो, तथा आडंबर करके वंदने को आवो, दोनों कार्य में मौन रखते हैं, नहीं तो निषेध करते है और नहीं स्थापन करते, है यह वीतराग का न्यायमार्ग है. परंतु अब जरासा हे मित्रों ! तुम्हारे गुरुजी की श्रद्धा और प्रवृत्ति में ध्यान देवो कि उनकी श्रद्धा और प्रवृत्ति किस तरह की है. वह दिखलाते हैं सो सुनिये प्रथम करुणा करके दान देने का निषेध नहीं करना सो तुम्हारे साधुजी प्रत्यक्ष निषेधते है और त्याग भी करते है सो हमने ऊपर तुम्हारे गुरु भीषमजी की जोड है तिसकी ढाल की गाथा लिख दी है. अब देखो कि सिद्धांत में नहीं निषेध करना उसका तो निषेध कर रहे है और एकांत पाप बतलाते है और जो कोई आडंबर करके वंदना करने को आते हैं उसका निषेध या एकांत पाप तुम्हारे ग्रंथों में कहीं भी नहीं देखा है, उलटा यह सुनते है, कि तुम्हारे साधुजी तुमको उपदेश दे के त्याग कराते हैं कि हमारी पचकोश दश कोष वीस

कोश तक सेवा करनी या पूज्यजी जिस ग्राम में होवे उस ग्राम में शालभर में एक दो वक्त आके जरूर दर्शन करने ऐसे त्याग कराते हैं और तुम लोग वैसे करते भी हो, अब देखलो कि सिद्धांत में दान देनेका नहीं निषेध करना, उसका तो निषेध करते और त्याग कराते है. एकांत पाप बतलाते हैं देने वाले को महा पापी कुकर्मी मानते है और परमेश्वर ने दशकोश बीश कोशादिक गृहस्थ को संग रखने की मनाइ करी है उसका त्याग कराके संघ में रखते है.

पूर्वपक्ष-गृहस्थ को पंचकोश दश कोशादिक तक संग में रखने की मनाई किस शास्त्र में करी है?

उत्तरपक्ष-सूत्र नसीथजी के दूसरा उद्देश में खुलासा पाठ है कि गृहस्थी तथा अन्य तीर्थी के संग में जंगल में जावे, शय्यादिक की जगे जावे या गृहस्थ के संग आहार पानी लेने को जावे और ग्रामानुग्राम विहार करे तो उस साधु को एक महीने का प्रायश्चित्त आवे है, इसका मूलपाठ चौथा प्रश्न में लिखा है. अब पूर्वोक्त तीनों काम तुम्हारे गुरुजी करते हैं. तुम्हारे पूज्यजी शरीर चिंता को ठंड लेजावे.

वहा भी तुमलोक संग जाते हो और तुम्हारे पूज्य जी तुम्हारी भक्ति गिनते है और तुम निर्णय भी नहीं पूछते हो कि किस शास्त्र में यह कल्प भगवंत ने फरमाया है कि गृहस्थी के संग शरीर चिंता को जाना, जाना तो कोई भी सूत्र में नहीं कहा है. परन्तु जंगल गृहस्थी संगाते जानेवाले को भला जाणे तो चौमासी प्रायश्चित्त आता है अब नित्य चौमासी प्रायश्चित्त सेवने वाले को तुम्हारी श्रद्धा से साधु कैसे मानते हो. तथा

ग्रामानुग्राम भी तुम ऊंट घोडे गाडी में बैठ के पूज्य जी की भक्ति निमित्त संग रहते हो. और पूज्य जी तुमको त्याग दिला के संग रखते हैं और धर्म मानते है. देखो २ बड़ा आश्चर्य हैं, कि जिस काम को साधू को सफा मनाई करी है उस काम में तो तुम्हारे पूज्य जी भक्तिरूप धर्म मान कर तुम लोगों से सूखे भोजनादिक लेते हुये विहार करते है और तुम लोकभक्ति करते हो और बिचारे गरीब अभ्यागत दुखी भुखी को देने का त्याग कराते है और एकांत पाप बता के गरीबों की वृत्ति छेद करते है. बडा आश्चर्य है कि किस तरह ऐसी श्रद्धा बैठ जाती है हमने तो बुद्धिमानों के तोलने के लिये यह दोनों पक्ष स्पष्ट लिख दिये है. अब मध्यस्थ होगा तो तोल लेवेगा।

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो घोडा गाडी आदिक में बैठ के आने जाने को धर्म नही कहते हैं किंतु वंदनादिक को धर्म कहते हैं।

उत्तरपक्ष–जेकर आने जाने में धर्म नही कहते तो श्रावक को सामे आने के या साधु के संग में रहने के त्याग क्यों न करावे. उलटी दशकोश बीशकोश भक्ति करना ऐसा क्यों कहे।

पूर्वपक्ष–त्याग कराने से श्रावक की भक्ति भागे, इससे साधु के सामने जानेका आडंबर से जानेका त्याग नहीं करावे।

उत्तरपक्ष–हे भाई इसी से हम कहते हैं कि यह मिश्रपक्ष है खर्च सहित लाभ है, इससे प्रदेशी राजा को भी केसी श्रमण महाराज ने आडम्बर से आने की आज्ञा नहीं दी और नहीं निषेध किया. ऐसे ही दान देने की नहीं तो रजा दी, और नहीं निषेध किया. परंतु तुम्हारा गुरुजी श्रावक के संग विहार

करते, और त्याग दश वीश कोशादिक का कराके सग रखते है, यह सिद्धात में निषेध किया कार्य क्यों करते है तथा मगता दिक अभ्यागत को दान देने का निषेध क्यों करते हैं क्योंकि दान निषेध करे उसको झूठ बोला कहा है. या केसी श्रमण महाराज ने भी निषेध नहीं किया, तो तुम्हारे गुरु निषेध क्यों कराते हैं या त्याग क्यों कराते है, अब भी सोच समझ के अच्छी तरह बात करनी और सूत्र विरुद्ध को छोडना यह उत्तम धर्म है।

पूर्वपक्ष—मिश्रतो धर्म में होवे ही नहीं क्योंकि जहर और अमृत भेले होने से जहर होजावे वैसेही धर्मतो अमृत और पाप है सो जहर, वह दोनों शामिल होने से पापरूप होवे वैसे ही पुन्य है सो अमृत, और पाप है सो जहर. यह भी सामिल होने से पापरूप होवे.

उत्तरपक्ष—हे भोले भाई यह दृष्टात असत्य है. क्योंकि मिश्रपक्ष में तो श्रावक भी है. सूत्र सूयगडाग का दूसरा स्कध का दूसरा अध्ययन में तो सर्व श्रावक तुह्मारी श्रद्धा से डूबजावेंगे. क्योंकि विरताविरतिक कहे हैं सो हिंसादिक से निवृत्ते वह तो धर्ममें हैं और हिंसादिक से नहीं निवृत्त होना पाप में है. तिस से मिश्र स्थान होने से सकषाय साधुजी भी डूब जावेंगे क्योंकि क्रोध मान माया लोभ तो नवमा गुण ठाणा तक है. और क्रोध मान माया लोभ पापमें है और साधुका क्षमादि दश प्रकार का धर्मतो धर्म में है तो फिर सकषाय साधु में क्रोध और क्षमादि धर्म दोनों का सद्भाव है तो क्या सकषायि साधु भी डूब जावेंगे नहीं ऐसा कभी नहीं होता है, इससे यह

द्रष्टांत जहर अमृत का यहां नहीं मिले, वस हमारा तो मानना जैसा केसी श्रमण महाराज ने आडवर से वंदना करने को आने में और दान देने में ज्ञेय पदार्थ है यानी जानने योग्य है सो मौन रखी, वैसाही हमारा मानना है और मगतादिक को करुणा करके देना उसमें जितनी ममता पुद्गलों से उतार के देवे या करुणा दया आवे उतना शुभ योग्य पुन्य में है और हिंसादि सावद्य व्यापार होवे वह पाप में है, जिस काम का साधुजी निषेध नहीं करे या स्थापना भी नहीं करे, उसको मिश्रपक्ष कहना वह ज्ञेय पदार्थ जानने लायक है इति ।

इससे तुम्हारा लिखना है कि जो साधु के सिवाय दान में लाभ मानते हो तो बचा हुवा आहार दे के लाभ क्यों नहीं करते हो! इसका उत्तर ऊपर से संपूर्ण समझ लेना कि हम एकांत पुन्य नहीं कहते है अपितु मिश्रपक्ष है जिससे साधु को एकांत पुन्य कहने का या एकांत पाप कहने का ही कल्प नहीं तो, देने लेने का कैसे होसके, यह बुद्धि बल से समझ लेना, तथा तुम्हारा उलटा प्रश्न है कि गृहस्थी असंयति अव्रति अन्यतीर्थी इनको दान देने में धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो यह प्रश्न अनुचित है, क्योंकि हमारा एकांत मानना नहीं है जैसा सिद्धांत में मिश्रपक्ष कहा वैसा हम मानते हैं. और ऊपर लिख दिया है, तथा तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के पृष्ट ८ वें में है, कि श्री तीर्थंकर भगवान् का वर्षी दान देना जन्म महोत्सव के कलश का पानी ढोलना स्नान करने की रीति के समान है ।

यह भी अत्यन्त विना विचारी वात है. क्योंकि स्नानतो

इन्द्र महाराजनें जन्म महोत्सव में कराया, और दीक्षा महोत्सव पै पितादिक ने या इन्द्रादिक ने कराया. परतु परमेश्वरने निज हाथ से नहीं करा है. और दान तो भगवत ने निज हाथ मे एक करोड ८ लाख सो नई या मतिदिन १ वर्ष तक दिये है. जो एकान्त पाप होवे तो परमेश्वर तीन ज्ञानके धारनहार यह कार्य क्यों करें. या दीक्षा ले के केवल ज्ञान पाये बाद, जैसे संसार के विषय भोगको निषेध किया या स्नान का निषेध किया वेसे दानका भी निषेध क्यों नहीं किया? बल्की गृहस्थावास में तो श्रीभगवान् ने दान एक वर्ष तक दिया और केवलज्ञान उपजे बाद मरन व्याकरण के दूसरा आश्रवद्वार में दान निषेधे उसको भूठा बोला कहा है. या तीसरे संवरद्वार में दान की अतराय करे उसको चोरी करने वाला कहा, इस से यह उत्तर भी सूत्र विरुद्ध है, तथा तुह्मारे गुरुजी की प्ररूपणा है कि श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी नें एक वर्ष तक दान दिया जिस से १२॥ वर्ष तक भाभेर दुःख पड़े ऐसी ढाल सुनने में आती है कि (देवता से लीधा न मिनखाने दीधा, आपतो रहगया कोरारे. दानतणा कर्म उदेह आया. जद वीर में पड़िया फोडारे) इति।

व्याख्या. देवता से सोनईया ले के मनुष्यों को दिये उस से महावीरजी को फोड़े पडे, इति, यह कहना भी महा आशातना रूप है. क्योंकि ऐसा लेख किसी सिद्धान्त प्रकरण टीकादिक में नहीं है कि भगवत ने दान दिया. जिस से फोडे पडे. भगवत को ने पूर्व भव के बध कर्म भुगते यह कथन कल्प सूत्रादिक में है. और हठ करके कहो कि दानसे ही फो

दृष्टांत जहर अमृत का यहां नहीं मिले. बस हमारा तो मानना जैसा केसी श्रमण महाराज ने आडबर से वंदना करने को आने में और दान देने में ज्ञेय पदार्थ है यानी जानने योग्य है सो मौन रखी, वैसाही हमारा मानना है और मगतादिक को करुणा करके देना उसमें जितनी ममता पुद्गलों से उतार के देवे या करुणा दया आवे उतना शुभ योग्य पुन्य में है और हिंसादि सावद्य व्यापार होवे वह पाप में है, जिस काम का साधुजी निषेध नहीं करे या स्थापना भी नहीं करे, उसका मिश्रपक्ष कहना वह ज्ञेय पदार्थ जानने लायक है इति ।

इससे तुम्हारा लिखना है कि जो साधु के सिवाय दान में लाभ मानते हो तो वचा हुवा आहार दे के लाभ क्यों नहीं करते हो! इसका उत्तर ऊपर से संपूर्ण समझ लेना कि हम एकांत पुन्य नहीं कहते है अपितु मिश्रपक्ष है जिससे साधु को एकांत पुन्य कहने का या एकात पाप कहने का ही कल्प नहीं तो देने लेने का कैसे होसके, यह बुद्धि बल से समझ लेना. तथा तुम्हारा उलटा प्रश्न है कि गृहस्थी असंयति अव्रति अन्यतीर्थी इनको दान देने में धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो यह प्रश्न अनुचित है, क्योंकि हमारा एकांत मानना नहीं है जैसा सिद्धात में मिश्रपक्ष कहा वैसा हम मानते है. और ऊपर लिख दिया है, तथा तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के पृष्ट ८ वें में है, कि श्री तीर्थंकर भगवान् का वर्षी दान देना जन्म महोत्सव के कलश का पानी ढोलना स्नान करने की रीति के समान है ।

यह भी अत्यन्त विना विचारी वात है. क्योंकि स्नानतो

इन्द्र महाराजनें जन्म महोत्सव में कराया, और दीक्षा महोत्सव पै पितादिक ने या इन्द्रादिक ने कराया. परतु परमेश्वरने निज हाथ से नहीं करा है. और दान तो भगवत ने निज हाथ मे एक करोड़ ८ लाख सो नई या प्रतिदिन १ वर्ष तक दिये हैं. जो एकान्त पाप होवे तो परमेश्वर तीन ज्ञानके धारनहार यह कार्य क्यों करें. या दीक्षा ले के केवल ज्ञान पाये वाद, जैसे संसार के विषय भोगको निषेध किया या स्नान का निषेध किया वेसे दानका भी निषेध क्यों नहीं किया? वल्की गृहस्थावास में तो श्रीभगवान् ने दान एक वर्ष तक दिया और केवलज्ञान उपजे वाद प्रश्न व्याकरण के दूसरा आश्रवद्वार में दान निषेधे उसको झूठा बोला कहा है. या तीसरे सवरद्वार में दान की अतराय करे उसको चोरी करने वाला कहा, इस से यह उत्तर भी सूत्र विरुद्ध है, तथा तुह्मारे गुरुजी की प्ररूपणा है कि श्री भगवान् वर्द्धमान स्वामी नें एक वर्ष तक दान दिया जिस से १२॥ वर्ष तक झाझेर दुःख पड़े ऐसी ढाल सुनने में आती है कि (देवता से लीधा न मिनखाने दीधा, आपतो रहगया कोरारे दानतणा कर्म उदेह आया. जद वीर में पड़िया फोडारे) इति।

व्याख्या. देवता से सोनईया ले के मनुष्यों को दिये उस से महावीरजी को फोड़े पडे, इति, यह कहना भी महा आशातना रूप है. क्योंकि ऐसा लेख किसी सिद्धान्त प्रकरण टीकादिक में नहीं है कि भगवत ने दान दिया. जिस से फोड़े पडे. भगवंत को ने पूर्व भव के वध कर्म भुगते यह कथन कल्प सूत्रादिक में है. और हठ करके कहो कि दानम ही फो

ड़े पड़े तो श्री १९ मा मल्लीनाथ परमेश्वरने भी वर्षीदान दिया फिर उनको एक प्रहर मे ही. केवल ज्ञान क्यों उपजगया. उन को तुह्मारे कहने माफिक कर्म क्यों नहीं बधे. तिससे निश्चय जानो कि श्री तिर्थङ्कर भगवान् का वर्षीदान देना. स्नान करने में पानीका कलश ढोलना सरीसा कभी नहीं होता क्योंकि जल ढोलने का श्नान करने का निषेध तो श्रीभगवान ने करा है परन्तु करुणा करके दान देने का निषेध कोइ तीर्थङ्कर परमेश्वरने नहीं करा है ॥ इति ॥

इति प्रत्युत्तर दीपिकाया द्वितियं प्रत्युत्तरं समाप्तम्

प्रश्नोत्तर दीपिका ग्रन्थ के प्रथम भाग के प्रथम खंड का

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	नहीं	नहीं
२	६	दान में	दान देने में
,,	११	श्रद्धा गुरुजी की	गुरु जी की
,,	१७	कर करने लगा	करने लगा
,,	२०	बोलों को	बोलों की
४	८	किथा	किया
,,	६	श्रावकों को	श्रावकों ने तेरापंथी श्रावकों को
,,	१०	साहत	सहित
,,	२०	श्रद्धेत	श्रद्धते
६	५	पत्रा	पत्र
,,	१०	श्रावकों को	श्रावकों की
७	२०	बदोवरत	बदोबस्त
६	१६	श्रेर	श्रौर
,,	२१	मणिविजे जो	मणिविजे जी
१०	१३	नहीं रहें	नहीं रहें
,,	१८	वह कहें	वह कहें
१२	१३	मगनलालजी	मगनलालजी ने
१३	१८	वाल मित्रों	बाल मित्रों

१४	१३	आपके श्रद्धा	आपकी श्रद्धा
१६	१८	उत्तरपत्तकी भकिया	उत्तरपत्त की प्रक्रिया
१७	१ लाइन के ऊपर	—	सूचना
,,	१	पाटकगण	पाठकगण
,,	१२	पास लिखा है	पास लिखाया है
१८	६	नेश्रायक	नेश्रायकी
२२	१८	प्रदीप्रिका का	प्रदीपिका को
२४	२४	तेरहवा	तेरहवां
,,	२३	देखता	देखना
,,	२४	सुनिमे	सुनिये
२७	५	वावा,	वावा
,,	२१	फिर जो	फिर नो
२८	२	सरूपणा	परूपणा
२९	५	भाव पॅ है	भाव में है
३१	१९	जागरिस्त्तत्थैव	जागरितस्तत्थैव
३२	३	स्वप्न क्रो	स्वप्न को
३४	४	सुविण पासइ संवुडा संवुडो	पासइ संवुडो सवुडे
,,	५	असवुडा	असवुडे
,,	१७	सवुडे सुविणं	संवुडे विसुविणं
३५	३	संवुभा सवुभे	संवुडा सवुडे
३६	६	समोसर	समोसरे
३७	७	आयठीण	आयट्ठीण
,,	११	आयजियोणं	आयजिइणं
,,	१४	पग्त्रिय पोसहिए	पखिय पोसहिये

८१	१०	कहा	कहो
८२	१६	केवलपने	केवलपने
८३	१७	गग कथन	राग का कथन
८४	६	अणयां	अणगारे
"	७	असह	असद्दहणे
"			उपनो
८५			का
"			राग
८८			की
९१			जावे
९२			पा
९४			यो
९७			में
९८			

३३४	२	मोरकत्थंजं	मोखत्थज
,,	३	पभिसेद्धति	पडिसेद्धंति
,,	५	मोरकोभाणिउ	मोखाभणिउ
,,	१०	मोरकत्थ	मोखत्थं
,,	११	समरकाउ	समखाउ
,,	२२	भीखधारी	भेखधारी
११६	२३	आश्रयी	आश्रयी
११७	३	का भे,	का भेप में
,,	१२	भावा	भाव
,,	२०	करी	कही
३३६	१२	तो तो	तो
,,	१४	देने	देवे
,,	२१	भाग	भग
१२०	२४	रूप का	रूप को
,,	,,	अव्रती का	अव्रती को
१२२	३	सवले	सवले
,,	६	पवाल	पवाल
,,	१०	हणतो	हणे तो
,,	२४	सिंगवेरय	सिंगवेरय
१२३	१	अनाचारी	अनाचार
१२४	१८	अट्टा	अट्ठा
१२५	८	तेत्रीसुमित्र	तेत्रीसमित्र
,,	६	पावत	जावत
,,	१३	नामक	नायक

१२६	१५	उपणे	उपराठे
१२७	१४	भ्रमण	श्रमण
,,	२२	भोग	लागे
१२८	६	ऐसा	ऐसी
१२८	७	मोरकत्थ	मोखत्थ
,,	,,	विहिसमरकाउ	विहिसमखाउ
१३१	१४	करते	करे
,,	१६	पभिसेहंति	पड़िसेहंति
१३२	४	आपं	आय
,,	६	के थकी	के ए थकी
,,	१०	(रयस्य के०)	(रयस्स के)
,,	११	(हित्वा. के)	(हिचाण के.)
१३३	११	नो विग्न	विघ्न
,,	१८	उपदेप	उपदेश
,,	२०	वडा	वडा
१३४	११	केवल	केवल
१३५	१४	जिइदिरा	जिंइदिए
१३६	२	रामकहे	एम कहे
,,	१६	रक्वे	रखे
,,	२०	,,	,,
१४१	१७	काल त्याग	का त्याग
१४४	१	का	को
,,	५	कहा	कहे
,,	१२	शुद्धाश्रद्ध	शुद्धश्रद्धा

११४	८	सरीग	सरीसा
१४६	७	सूत्रम	सूत्रम्
”	१८	क्यों	क्या
१५१	८	लिखागृहस्थी	लिखा कि गृहस्थी
”	२४	राथ	राय
१५२	१०	माटो	माटे
”	१६	सुणावोगा	सुणावोगा
१५३	४	श्रावक	श्रावक
१५४	६	बलवाहणंस्स	वलवाहणंस्स
”	२०	जावउवखुडावे,	जावउवखुडावे,
१५५	८	निपजारी	निपजाइ
”	१२	विचस्यउ	विचरस्यउ
१५६	१४	पण	पणा
१५७	१६	नहीं	नहीं
१६०	१७	और वहां	और वहा से
”	१८	पाल सें	पाल
१६२	४	भ्रष्ट	भ्रष्ट
१६५	२२	सयवोवा	सथवोवा
१६६	४	दानकी	दान को
१६८	२३	अवसार	अवसर
१७०	१७	करते	करांते
१७५	२३	भगवंतकी	भगवत
१७५	२३	वंध	वांधे

॥ श्री वीतरागायनमः ॥

पूज्य श्री श्री श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज की समुदाय के पंडित साधूजी महाराज श्री जुवारीलालजी महाराज कृत

॥ प्रत्युत्तरदीपिका ॥

❀ द्वितीय खंड ❀

जिसको

जैन भंडार भीनासर के सभासदों ने मारफत कनीराम बहादुरमल बांठिया की छपा कर प्रगट किया.

बा० दुर्गाप्रसाद के प्रबन्ध से
सुखदेवसहाय जैन प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर में मुद्रित.

वीराब्द २४४२ खिष्टाब्द १९१६ विक्रमाब्द १९७३.

प्रथम वार ५०० पुस्तकें

विना मूल्य वितरण

॥ प्रश्न २ प्रारंभ ॥

४२ दूपण टालके आहार क भोजी प्रतिमाधारी (पडि-मा धारी उत्कृष्ट श्रावक तपस्वी को, ४२ दूपण टालके देने वाले को एकान पाप कहते हो सो पाठ दिखलावो ॥

उत्तर-तेरे पंथियों ने प्रश्नोत्तर में छपवाया है. वह यह है श्रीभगवान् महावीर स्वामी के पडिमा धारी श्रावक आनदजी ने सथारा (अनशनव्रत) में कहा है कि, मै गृहस्थी हू, यह वार्ता उपाशक दशा सूत्र के प्रथम अध्ययन मे कही है, और गृहस्थी को अशणादि चारों आहार देने में श्री भगवान ने पाप कहा है। तिसके प्रमाण नीचे लिखे जाते है। गृहस्थी को अशणादि चारों आहार देवे, दिवावे, देतेहुये को अनु-मोदन करे, तो चोमासी प्रायश्चित आवे। यह वार्ता सूत्र न-सीथ के १५ में उद्देश के ७४ में बोल में कही है, और भगव-ती सूत्र के ८ में शतक के छठे उद्देश में भी कही है। जब कि श्री महावीर स्वामी के आनंदजी जैसे पडिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक ने अपने ताई गृहस्थी कहा है, और गृहस्थी को दान देने में श्रीभगवान ने एकात पाप कहा है, तो आप समझ सके है कि गृहस्थी असयती अव्रती अन्य तीर्थी को दान देने में पाप क्योंकर न होगा इति ॥ *यह उनका उत्तर है ॥*

अब इसका प्रत्युत्तर सुनिये. प्रथम तो इस विरुद्ध उत्तर को देख के विद्वान् तो समझ ही लेते हैं कि सूत्र का नाम लेकर कैसा सूत्र से ऊटपटाग और विरुद्ध उत्तर लिखा परन्तु अल्पज्ञ यानी कम समझने वालों के वास्ते भ्रम हो जाता है, उसको दूर करने के लिये इसका समाधान लिखते है कि प्रथम

तो यह सोचना चाहिये कि आनद श्रावक कैसे है जिनका विधान सूत्र उपासक दशांग जी का पहिला अध्ययन में कहा है, कि आनंद जी श्रावक ने ११ तो श्रावक की पडिमा धारण करी जिसमे ११ मी पडिमा (समणभूया) यानी गृहस्थ के सावद्य कार्य को छोड के साधु के समान भेष और क्रिया को ग्रहण किया. पश्चात् जब पडिमा की तपस्या पूर्ण होने से उनका शरीर तपस्या करते २ अति क्षीण हुवा तब काल का अवसर जान के जाव जीव तक ४ आहार,खान पान के त्याग किये. और अठारा पापों का भी सर्वथा प्रकारे । जाव जीव तक त्याग किये सूत्र में पाठ का संकोच है परतु अन्य राय प्रश्रेणी उवाई आदि बहुत से सिद्धात ग्रंथों में संथारा में १८ पाप के तीन करण तीन योग से , त्याग करने का कथन है, और प्रदेशी प्रमुख श्रावक ने किये भी है इससे यहां भी समझ लेना । कहा तक कहिये कि आनदजी ने अपने शरीर की ममता को भी त्याग न करी. यानी शरीर में भी निर्ममत्व भावी हुये । जब उनको मोटा अवधिज्ञान भी उत्पन्न हुवा. एक महिने का संथारा-चला,पहिले देवलोक में गये । ४ पल का आयुष्य भोग के यानी पूरा करके महाविदेहक्षेत्र में जन्म लेकर सयम पालक मोक्ष जावेंग । यह कथन देखना होवे तो सूत्र उपासक दशा में सविस्तार से है । ग्रथ वढने के संकोच से थोडे में भावार्थ लिखा है. सो समझलेना । अब भोले भाइयों को जरा पक्ष छोडके समझना चाहिये कि जिनने १८ पाप के जाव जीव शुद्धि तीन करण तीन योग से त्याग न करे, ४ आहार छोडके शरीर मात्र की ममता त्यागी तो, कहो भाई कौन सा

पाप बाकी रहा था, जिससे तुम लोगों ने महापुरुष अठारा पाप के त्यागी श्रावक पै आल चढ़ा के असयती अव्रती के सदृश आनंद जी १८ पाप के त्यागी को एक सरीसा लिख दिये. हा ! हा !! हा !!! बड़ा खेद और आश्चर्य होता है कि क्या इन मित्रों को परभव में जाना है कि नहीं, जो ऐसे महान् श्रावक की आशातना आल चढानेरूप महाप प से नहीं डरते हैं।

पूर्वपक्ष-हमने आनंदजी को क्या आल चढाया।

उत्तरपक्ष-हे भाई! प्रगट दीखता है कि जैसे कोई शीलवंती स्त्री को वेश्या सरीसी कहे; या सत्यवान पुरुष को झूठा बोला कहे; शीलवान पुरुष को व्यभिचारी कुकर्मी कहे, वैसेही १८ पाप के त्यागी आनदजी को तथा रूप असंयती अव्रती एक भी पाप त्यागा नहीं, यानी मनुष्य की हिंसा का भी जिसके त्याग नहीं, उस सरीसा कहे-यह कितना बडा पाप है? जैनी विद्वान् तो इसको महापाप का कार्य कहवेंगे ही, परन्तु दूसरे मतके मध्यस्थ थोड समझदार को भी पूछोगे तो बतादेवेगा, कि पाप के त्यागी को पाप का सेवने वाला यानी करने वाला सरीसा कहने में महापाप है। यह तुम भी समझते होवोगे कि १८ पाप के त्यागी को अधर्मी सरीसा कहना यह कितना बड़ा पाप है। खैर अब भी समझ लेना, नहीं तो पाप कर्म किसी को नहीं छोड़ता है हमतो तुह्मारे हितके लिये चेताते है आगे तुह्मारी मर्जी-है।

उत्तरपक्ष-प्रश्नोत्तर के नवम पृष्ठ पर सफा लिखा है सा हमने ऊपर दाखल कर दिया है, वहा तुमने लिखा है कि, गृहस्थी को ४ आहार देवे. दिवावे, देते हुए को भला जाणें

तो, भगवती जी के ८ मा शतक छट्ठा उद्देश मे एकांत पाप कहा है। अब देखो कि आठमा शतक का छठा उद्देश में तो (तहारुवं, असजए, अविरीय, अपडिहय, पावकम्मं,) ऐसा पाठ है, और तुमने नसीथ का पाठ गृहस्थी का और भगवती जी का असंयती अव्रती का कथन एक सरीसा ही लिख दिया; और आनन्दजी को गृहस्थी ठहराये, तो स्पष्ट ही सिद्ध हुवा तथा रूपके असयती अव्रती पापी, और आनन्दजी तुह्मारे लेख से एकही सरीखे हुए। यह तो विचारवान को प्रत्यक्ष दीखता है, या यह कथन तुह्मारे पूज्यजी ने तुमको भूल के धराया होवे, या तुम भूल गए होवो तो अब भी इस पाप से निवृत होना अच्छा है। पूर्वपक्ष-आनन्द जी ने अपने को अपने मुख से गृहस्थी क्यों कहा कि मै गृहस्था हू।

उत्तरपक्ष-यह तो शब्द व्यवहार मात्र गृहस्थी के चिन्ह से कहा है। परन्तु आरंभ परिग्रहधारी, या अव्रती गृहस्थी नहीं है। क्योंकि पडिमा धारी श्रावक को तो भगवत ने साधू सरीसे सूत्र दशाश्रुतस्कंध के छठा अध्ययन में कहा है, और गृहस्थी का एक चोटी मसुख का चिन्ह या उगाडी डाडीकार जो हरणादि चिन्ह करके उनने यानी आनन्द श्रावक ने अपनी लघुता से कहा कि मै गृहस्थी हू। परन्तु तुम आनन्दजी को असयती अव्रती सरीसे किस पाप करके कहते हो? क्योंकि आनन्दजी ने तो अठारा ही पाप त्याग करे है।

पूर्वपक्ष-हमतो उनको मै गृहस्थी हू ऐसा शब्द कहने से ही असंयती अव्रती सरीसे गृहस्थी कहते है यह पाप करो चाहे त्यागो।

उत्तरपक्ष-अगर गृहस्थ का शब्द मात्र से ही उनको अ संयती अव्रती सरीसे गृहस्थी कहते हो सो सु निये। सूत्र ठाणाग जी का दूसरा ठाणा में कहा है कि दो प्रकार के जीव है, एक तो सिद्ध दूसरे संसारी। अब तुम्हारे गुरू सिद्ध जीव है कि ससारी या इनसे कोई तीसरे किस्म के है? तब तो तुम्हारे को भी कहना पडेगा कि ससारी है. तो कहो भाई ससारी तो कई विवाह शादी करते है, पुत्रादिक पालते है, खेती करते है, कई चोरी जारी, सिकारादि. महा पाप करते है, तिस से कितनेक नरकादि गति में जाते हैं महा अधमी होते हैं। कहो यह पूर्वोक्त संसारी तुम्हारे गुरूजी को तुम मानते हो या नहीं?

पूर्वपक्ष-हमारे गुरू जी तो इन सब कामों के त्यागी है, इससे उनको वैसे कभी नहीं मानने हैं।

उत्तरपक्ष-जब ससारी क्यों कहे। पूर्वपक्ष-यह तो एक स सार में रहने से हाल कर्म क्षय करके सिद्ध न हुए, सपूर्ण क्रोधादिक प्रकृति नहीं छूटी इससे ससारी कहे परन्तु ससार के सावद्य कर्मों के त्यागी है।

उत्तरपक्ष-तो हे मित्र, गुरुजी के वास्ते तो झटपट तुमने कह दिया कि ससार में रहने से, कर्मक्षय नहीं होने से ससारी है, परतु सावद्य कर्मों के त्यागी हैं। वैसेही तुम क्यों नहीं समझते हो कि एक घर में रहने से आनंदजी भी अपने को गृहस्थी कहते है परतु गृहस्थ के सर्व सावद्य कर्म के त्यागी है। १८ ही पाप तीन करण तीन योग से त्याग किये, उनको तुम लोग असंयती अव्रती के दाखले में कैसे गर्भित करते हो जेकर आनदजी को असयती अव्रती समान हट करके मान

लेवेंगे तो अपने गुरुजी को भी अन्य ससारी पापी के समान मानने का दूषण तुम्हारी समझ को प्राप्त होवेगा। अब विचारो कि आनदजी श्रावक, या अन्य पड़िमाधारी श्रावक, अन्य तीर्थी, गृहस्थी, सारभी, किसी प्रमाण से ठहर ही नहीं सकते है, तो पड़िमाधारी का प्रश्न में असंयती अव्रती का ऊपपटांग उत्तर देना सत्य होता ही कहा से।

पूर्वपक्ष–नसीथजी के १५ मा उद्देश के ७४ मे बोल में तो समुच्चय गृहस्थी का कथन है उसको देवे, दिवावे, देते हुये को भला जाने, उसमें चौमासी प्रायश्चित्त कहा है।

उत्तरपक्ष–अरे भाई, वहां तो साधु देवे, जिसका प्रायश्चित है। परंतु तुमने साधु का नाम गोप के देवे, दिवावे, देते को भला जाने, उसका प्रायश्चित आता है, ऐसा विरुद्ध लेख सूत्र का नाम लेके क्योंकर लिख दिया। और यह भी विचारना चाहिये, कि पड़िमाधारी श्रावक का वो साधु से जाचणेका कल्प ही किसी सूत्र में नहीं। तो फिर साधु से पडिमाधारी जाचे ही नहीं तो साधु को प्रायश्चित्त आवे ही कैसे! इसलिये ज्यो नसीथ सूत्र के १५ मा उद्देश के ७४ में बोल में तो ऐसा पाठ है कि (जेभिक्खु, अनुत्थिएणवा, गारत्थिएणवा,) यानी जो साधु अन्य तीर्थी गृहस्थ को अन्नपाणी आदि देवे तो प्रायश्चित्त आवे। तो वह सारंभी सपरिग्रही समझना। क्योंकि पड़िमाधारी तो साधु से लेवे ही नहीं, तो उनको साधु देवे ही कैसे, जिस्से नसीथ की साक्षी बतानी भी बिना बिचार की है, क्योंकि पडिमाधारी श्रावक को अन्य तीर्थी सरीसे कहना विचारवान का काम नहीं।

पूर्वपक्ष–साधु भला नहीं जाने, उसमें धर्म कैसे होव, धर्म का तो साधु भला जानते है।

उत्तरपक्ष–सूत्र के तो सापेक्ष वचन हैं। कई काम ऐसे है कि जिसको साधु करे तो साधु को भला नहीं जाने, परतु गृहस्थी करे तो उनमें धर्म जानते हैं। और गृहस्थी को भी धर्म होता सो कहते हैं, सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश छठा में कहा है कि साधु को श्रावक अफासुक अणे सणीक वेरावे, उसमें अल्प पाप और बहुत निर्जरा कही है।

देखो अफासुक अणेसणी को साधु भला नहीं जाणे, परन्तु श्रावक कोई कारण के वशसे अल्प दोषादि वस्तु देवे तो अल्प पाप और बहुत निर्जरा कही है। तथा सूत्र भगवतीजी के दूसरे शतक के पंचमा उद्देश में तुगया नगरी के श्रावक ने पारशनाथजी के संतानये यानी पारशनाथजी के परंपरा के स्थवर मुनियों की सचित्त फूलादिकों को अलग करके वंदना करी। मुनि तो सचित फूलादिकों को अलग करके वदना करने की आज्ञा नहीं देवे, परतु श्रावकों ने वंदना करी तो उनको तो वदना करने का लाभही हुवा, तथा सूत्र दशवैकालिक के तीसरे अध्ययन में उद्देशी अहार साधु भोगवे, भोगवावे, भोगते का भला जाने तो अनाचीर्ण लागे और वेद कल्पमें कहा कि पारशनाथजीके साधु को अनाचीर्ण दोष नहीं। और महावीरजी के साधु को अनाचीर्ण लागे। तो कहो पारशनाथजीके साधुको दातार उद्देशिक भात को देवे तो धर्म होवे कि नहीं या महावीरजी के साधु है सो उद्देशिक के लेने वाले ऐसे पारशनाथजी के साधु को भला जाने कि नहीं।

पूर्वपक्ष-महावीरजीके साधु उद्देशिक लेवे उसमें तो दाता र और साधुजी दोनों को महावीरजीके साधु भला नहीं जाणे परतु पारशनाथजी के साधु को भला जानने में कुछ दोष नहीं

उत्तरपक्ष-हे भाई वैसही समझ लेवो कि. पडिमाधारी श्रावक को साधु देवे जिसको साधु भला नहीं जाने. परन्तु गृहस्थ देवे उसका तो धर्म ही है. साधु भी उसको बुरा नहीं समझते हैं।

पूर्वपक्ष-पडिमाधारी श्रावक को देने में धर्म किस सिद्धांत में कहा है?

उत्तरपक्ष-प्रथम तो हम दूसरे प्रश्न में ही सिद्ध करचुके है कि मगते भिखारी को भी करुणा भाव से देने में पुन्यका सद्भाव है तो फिर पडिमाधारी का तो कहना ही क्या। ११ मी पडिमा धारी को तो साधु सरीसा कहा सो उसको देनेका फलभी साधु सरीसा समझना। सो ही कहते हैं सूत्र दशाश्रुत स्कंध का अध्ययन छठे में श्री भगवान् ने ११ मी श्रावक की पडिमा फर्माई है तिसमें ऐसा पाठ है।

सूत्र—जे, इमे समणाण, निगत्थाण, धम्मे, तसम्मं, का एण, फासेमाणे, पालेमाणे, पुरउ, जुगमायाए, येहमाणे, दुट्ठ ण, तस्सेपाणे, उद्धकु, पायारिएज्जा, साहट्टु, पायरिएज्जा वित, रिछंवा, पायकट्टु, रियज्जा, सतिपरकम्मे, सजयामेव, परिकमे-ज्जा, नो, उजुय, गछेज्जा; इति ॥

अस्यार्थः—जे, इमे, समणाण, निगत्थाण, धम्मे, के.जे इनो सगण सा र नइ धर्म क्षमादिक- तंसम्म, काएणं, फासेमा,

णे, के०-ते धर्म सम्यक प्रकार नइ काया करी नइ स्पर्श तो थको- पालेमाणे, पुरउ, जुगमायाए, पेहमाणे, के०-पालतो थको आगलिभूसरा प्रमाण एत लइ शरीर प्रमाण धरती जोबता चालइ-दुहुण, तस्सेपाणे, उद्दरू, पाएरिएजा, के०-देखी नई त्रस प्राणी व इन्द्री आदिक नइ पग मूकता आगला पग-ऊंचो करी पग सकोची ने चालइ-साइट्ठ. पाए रिएज्जा, के० एतले पग सकोची ने शरीर ने साहमो चालइ वितरिच्छवं पायकट्टु, रियज्जा,के०-तिरछो पग करी ने जाइए वोल बीजे मार्ग अछते कै कह्या छइ-सति, परिक्कमे, सजयामेव, के०-छतइमार्गिचाल वा नइ प्राक्रमयत जयना सहिब जाइ जिम सजमी साधू चाले. जैणेरीते-परिक्कमेज्जा, नो, उज्जुयं, गछेज्जा, के०-प्राक्रम करइ पणि नहीं सरलपण इन जाइ एतल इनमी चालइ- इति सूत्रार्थः-

अब विचारो कि यहा सूत्र में कहाकि जो साधू का धर्म है वह सम्यक् प्रकार से काय से पालता थका विचरे, जो साधू के समान निर्वद्ध आहार पाणी करता विचरे तो प्रकट है कि साधू समान आचार से लेवे उस कुसाधू समान दूषण टालके देवे तो दातार को साधू समान ही महा निर्जरा का फल होवे ऐसा समझना । तथा सूत्र भगवती जी का शतक तीसरा उद्देश पहिला में श्री गौतम स्वामी जी महाराजने प्रश्न किया कि हे भगवन् सनत्कुमार इन्द्र को भविजावत् देवे सनधि चरम शरीरी किस अर्थ से कहे हैं. तब श्री भगवान्ने फरमाया कि हे गौतम, सनत्कुमार इन्द्र साधू साध्वी श्रावक श्राविका के हित का कामी, सुख का कामी, पथ्य के कामी,

४ तीर्थों की अनुकंपा का करने वाला है, इत्यादिक साता का कामी होने से भविजावत् चरम भगवान् सनत्कुमार इन्द्र है। अब विचारना चाहिये कि सनत्कुमार इन्द्र साधु साध्वी श्रावक श्राविका की साता वंछने से ही सुलभ बोधी और चरम भवि का फल कहा तो फिर पड़िमाधारी उत्कृष्ट श्रावक को दातार निर्दोष भात पाणी देके साता उपजावे तो मोक्ष का फल क्यों नहीं होवे. अपितु होवे ही। तथा यह भी विचारो कि पडिमाधारी श्रावक को दातार देवे, वह क्या जाण के देवे. क्या ११ मी पडिमाधारी श्रावक को संसार का काम भोग सेवाने वास्ते देवे, या कोई पाप कराने को देवे। नहीं २ इन कामों के वास्ते तो पड़िमाधारी श्रावक को देने का सम्भव ही नहीं. क्योंकि ११ मी पडिमा में पाप करने के त्याग हैं तो जो दातार पडिमाधारी को देवे वह तो फक्त गुणपात्र जाण. गुण अनुमोदन करके देवे तो देनेवाले दातार को तो धर्मका लाभहीज होणेका सम्भव होता है। तथा सूत्र में यह ११ मी पडिमा में भिक्षावृत्ति करणी भी तीर्थंकर ने उपदेशी है तो. जाणो कि श्रीतीर्थंकर भगवान ने केवल ज्ञान में महा लाभ दायक वृत्ती जानके ऐसी कठिन वृत्तिका उपदेशी है।

अगर तुम्हारे सरीसी श्रद्धा परमेश्वर की होती तो एक श्रावक पडिमाधारी तो तिरे और घणो देने वालो दातार डूबे ऐसी वृति भगवान् क्यों कर फरमाते। तो कहो भाई पड़िमाधारी श्रावक को दान देने में एकांत पाप बतावे वह क्या सर्वज्ञ से भी ज्यादा ज्ञानी हैं? कभी नहीं। तथा ११ मी पडिमा में तो पडिमाधारी पाप करने का कराने का त्याग करे है तो

पडिमाधारी श्रावक जाणे कि मेरे भिक्षा के लाने में दातार को एकांत पाप लगेगा तो फिर जाण के दूसरे को पाप लगाने को भिक्षा क्यों मागने को जावे? या भिक्षा माग लावे तो उनके अनेरे को पाप नहीं कराने के त्याग थे, वह तुम्हारा श्रद्धा से तो त्याग भग्न हुवे? तो फिर त्याग भागे तो आराधिक कैसे हुवे? तो इस तुम्हारी श्रद्धा से तो ११ मी पड़िमा के धारने वाले आराधिक होवे ही नहीं। तो फिर आनंदादिक ११ मी पड़िमा के धारन करने वाले आराधिक कैसे हुये सो विचारनाजी। तथा एक पड़िमाधारी श्रावक प.ा तो पाप टरे अर्थात् पाप से मुक्त होवे और पडिमाधारी श्रावक को दान देनेवाले बहुत से दातार डूबें तो एक जीव तो तिरे और घणा जीव डूबें ऐसी वृत्ति को भगवान् कैसे बतावे, या क्यों प्रशसे। विचारो भाई, किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं होता कि पड़िमाधारी श्रावक को देने में एकांत पाप है और लाभ तो प्रत्यक्ष सिद्धात से दीखता है।

पूर्वपक्ष–लाभ कहा लिखा है।

उत्तरपक्ष–हमने ऊपर भगवतीजी का तीसरा शतक का पहिला उद्देश की साक्षी बताई है कि ४ तीर्थ का साता उपजाने के कामी होने से ही सनत्कुमार इन्द्र को ससार पडित अर्थात मसार तिरके मोक्ष सुख प्राप्ति का फल कहा है। तथा यह ११ मी पडिमा ही समण भूत कही है, तो समण भूत पड़िमा यानी साधु सरीसी वृत्ति को जो धारे, वह धारने वाला भी साधु सरीसा हुवा। क्योंकि जैसा गुण धारे वैसा ही गुण होय। तो साधु सरीसा वृत्तिवान ११ मी पड़िमाधारी श्रावक

को जो कोई दातार निर्दोष भात पानी से भाव सहित प्रति लाभे तो उस दातार को भी फल साधु सरीसा होवे ।

पूर्वपक्ष-११ मी पड़िमा को धारन करने वाला तो पडिमा पूर्ण हुये पीछे गृहवास में चला जाता है, ससार का काम करता है, उसको देने में निर्जरा लाभ कैसे होवे।

उत्तरपक्ष—प्रथम तो जिस श्रावक ने ११ मी पडिमाधारी बाद गृहवास में जावे ऐसा संभव नहीं । ११ मी पडिमा का काल पूर्ण होने से, या तो पुनः फेर पड़िमा धारन करे, या, संयम लेवे या सथारा करे। क्योंकि मांग के भिक्षा वृत्ति किया बाद गृहवास मे आने से जैनधर्म की हासी होती है, इससे और आनद-जी आदि १० श्रावकों ने ११ मी पडिमाधारे बाद सथारा किया, परन्तु गृहवास में पीछे नहीं आये। तो यह बात कहनी भी संभव नही है कि ११ मी पड़िमाधारी पीछा गृहस्थ का काम करने लग जावे, दूसरा जो कदाचित् कर्म के जोरसे, कोई गृहस्था-श्रम में चला भी जावे, और गृहस्थ के सावद्य काम करने भी लग जावे तो दातार तो उसको साधु समान क्रिया कर्ता जान के देवे है, उसके गुण अनुमोदना करके देते है, परन्तु गृहस्था-श्रम में जाने वास्ते नहीं, तो फिर देने वाले को पाप किस वास्ते लगे? या तुम हठ करके कहो कि देने वाले को पाप लगे ही, तो कोई साधु साधुपना पालता था उसवक्त में साधु जान के किसी ने दान दिया, तो फिर वह साधु कर्म के जोर से भ्रष्ट होगया तो दान देने वाले को धर्म हुवा कि पाप ।

पूर्वपक्ष- हम को तो मालूम नहीं पड़े कि यह भग्न होवेगा.

इस वास्ते हमतो साधुपना पालने वास्ते देते है इससे धर्म ही होता है।

उत्तरपक्ष- तुमतो नहीं जाणते हो परन्तु श्री भगवान महावीर स्वामी तो जाणते थे कि जमाली को दीक्षा देऊं तो हूं परन्तु यह तो भ्रष्ट हो जावेगा। क्योंकि जमाली को दीक्षा दी उस वक्त भगवान् केवल ज्ञानी थे तो फिर दीक्षा देने में या ज्ञान पढ़ाने में या और साधु ने जमाली जी की व्यावच करी, उनको तो धर्म हुवा कि पाप जेकर पाप होवे तो भगवान जमाली जी को साथ क्यों रखते, साधु को अन्नपानी आदिक देने में क्यों नहीं रोकते।

पूर्वपक्ष-जमाली को दीक्षा देने में ज्ञान पढने में तो धर्म हुवा, क्योंकि हमारे गुरु जी का मानना ऐसा ही है, और जमाली ने मिथ्यात्व धारन किया तो उनके कर्म की गती। परन्तु श्री भगवान को या व्यावच करने वाले संतों को तो लाभ ही हुवा। क्योंकि व्यावच करने वाले साधु को व्यवहार से व्यावचादि कार्य जमाली ने किये, सो करने वाले को तो लाभ ही हुवा। और वर्त्तमान काल में साधु का गुण जान के देवे उसमें धर्म है, और आगम्य काल में यानी भविष्यत् काल में साधु पना पालो, अथवा मत पालो, तिसका भागी दातार नहीं।

उत्तरपक्ष-वैसे ही तुम क्यों नहीं विचारते हो कि ११ मी पडिमाधारी श्रावक भी वर्तमान काल में साधु सरीसा आचार पालता है उसको साधु सरीसा गुणपात्र जान के दातार दान देवे तो देने वाले को साधु दान सरीसा फल होवे। आगम्य-काल में पड़िमा यानी साधु समान वृत्ति पालो, अथवा मत

पालो, तिसका भागी दातार नहीं। जेकर ऐसा नहीं मा तो जिनको तुम गुरु श्रद्धते हो वह सर्व मृत्यु के पश्चात श्र होवेंगे, तो उनका अव्रत का पाप भी तुम को लगेगा। क्य तुम्हारे अन्नादिक के प्रताप से तुम्हारी श्रद्धा से तुम्हारे देवलोक में जाते हैं। जेकर तुम दान देवो ही नहीं तो तुम गुरु कोई होवेही नहीं, और देवलोक में जावे ही नहीं तो तुम तुम्हारे गुरु को दान क्यों देते हो।

पूर्वपक्ष—हमतो दानादिक करके हमारे गुरु का सं साज देते हैं परंतु देवलोक के अव्रत सेवाने के कामी हम न

उत्तरपक्ष—वैसेही समझ लेवो कि पड़िमाधारी श्रा को दातार साधु सरीसी वृत्ति पालने का साज देते हैं प गृहस्थ संबंधि आश्रव से वावने को नहीं। बस इसी तरह सूत्र के प्रमाण से ११ मी पड़िमाधारी श्रावक को निर्दोष दूषण टाल के दातार भाव सहित दान देवे उसको तो स को देने सरीसा लाभ सूत्र से सिद्ध है परंतु एकांत पाप नहीं

इति प्रत्युत्तरदीपिकायां तृतीयं प्रत्युत्तर समाप्तम् ।

अथ चतुर्थ प्रश्न प्रारंभ ।

साधुजी महाराज को किसी दुष्ट ने फासी दी, और दयावान ने धर्म बुद्धि से खोल दी, तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ।

उत्तर–तेरेपथियों का प्रथम तो साधु को फासी देना ही धर्म विरुद्ध है क्योंकि साधु को फासी कौन देवे। कारण साधु पच महाव्रत पालता है, यह तो सदा धर्मज्ञ है उसको फांसी देने का प्रश्न ही वृथा है परतु कोई अज्ञानता से प्रश्न करे उसके वास्ते शास्त्रोक्त उत्तर यह है ।

इसका प्रत्युत्तर––(समाधान) देखो भाई, जो पुरुष आप धर्म से विरुद्ध आचरण करता है, तब उसको दूसरे का प्रश्न भी विरुद्ध मालूम पड़ता है, क्योंकि जिनकी श्रद्धा ऐसी विपरीत है कि साधु को मरते हुये को फासी काट के बचावे तो पाप लगता है, तो वैसे ही दया रहित पुरुषों को यह प्रश्न धर्म से विरुद्ध दीखता है, क्योंकि विरुद्ध धर्म वाले को दयारूप प्रश्न दीखता है। तथा आप अज्ञानी होवे जद दूसरे के सत्य प्रश्न को भी अज्ञान रूप बतावे, परन्तु खूब मालुम हुवा कि, तेरेपथियों ने पूज्यजी से कैसे प्रश्न का उत्तर धार के लिखा है कि प्रश्न है तो भी उसप्रश्न को विपरीत बतलाते है। परन्तु हे सज्जन पुरुषो, जो मध्यस्थ दृष्टिवान होवो तो विचारना कि प्रश्न विरुद्ध है कि तुह्मारी समझ विरुद्ध है। सो लिखते है। प्रथम तो श्री अतगडदशाग जी में लिखा कि श्रीकृष्णजी के भाई और देवकी के अगजात वसुदेवजी के

पुत्र मुनिराज सुकुमालजी श्रीनेमनाथ २२ मा तीर्थंकर के शिष्य तीन मुनि ने स्मशान में ध्यान किया, वहां पर सोमल ब्राह्मण ने द्वेष से मस्तक पर मिट्टी की पाल बांध के खैर के खीरे (अग्नि) धर दिये उस परिषह से मुनि काल कर गये। इस बात को जैनियों के छोटे २ लडके भी जानते हैं, सो देखो भाई दुष्ट जीव ने आगे खीरे मुनि के शिरपर धर दिया, कोई दुष्ट द्वेष भावसे फांसी भी चढावे, उसमें आश्चर्य क्या है। परन्तु क्या करे छोटे २ लड़के जितना भी ज्ञान उत्तर देने वाले को नहीं रहा, तिसका क्या किया जावे। तथा अन्य भी मुनियों को बहुत से दुष्टों ने परिषह दिये, उनका भी विस्तार जैन ग्रथों में बहुत है, जैसे कि मेतारज मुनि के शिरपर सुनार ने आलावाद यानी चमडा बांध के मार डाले। खदक मुनि की सारे शरीर की खाल उतरा डाली, जिससे मर गये। खदक मुनि आदिक ५०० अणगार को पालक पुरोहित ने घाणी में घाल के पील डाले। कहो रे मित्र यह साधुपणा पालते थे कि नहीं? उनको यह महा मरणांतक कष्ट क्यों उपजाया।

पूर्वपक्ष—संयम तो पालते थे परन्तु, दुष्ट पुरुषों ने उनको परिषह उपजाया।

उत्तरपक्ष—अहोरे मित्र, हमारा यह प्रश्न है कि कोई दुष्ट पुरुष साधूजी को फासी देवे और धर्मवान पुरुष दया लाके काट देवे, तो तुमने इस प्रश्न को धर्म विरुद्ध कैसे बतलाया। यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घाणी में पीलणा यह खाल सब शरीर की उतारणी। ऐसा घोर कर्म दुष्ट पुरुषों ने किया तो, फिर साधु को फासी देने रूप घोर कर्म कोई दुष्ट पुरुष करे, इसका संभव

कैसे नहीं होता या जेकर यह प्रश्न ही नहीं होता तो तुम्हारे भ्रमविध्वंसन के ११२ वें पत्र पर लेख है यह झूठ है या सत्य है " तथा साधु की फासी कोई गृहस्थ काटे तिण में धर्म कहे छे " अब विचारो कि तुम्हारे पहिले के पूज्य जीतमलजी तो फासी काटने का प्रश्न समझ के यानी अपने आपही पूर्वपक्षी हो के साधू की फासी काटने का प्रश्न उठा के उसका उत्तर लिखा. और तुम लोग या तुम्हारे अब के पूज्य डालचंदजी इस प्रश्न को धर्म से विरूद्ध और अज्ञान से बतलाते हो तो इस लेख से तो तुम्हारे पूज्य जीतमलजी धर्म से विरुद्ध प्रश्न के उत्तर करने वाले ठहरे जो आपही पूर्वपक्षी बन के भ्रमविध्वंसन में प्रश्न उठा के उत्तर लिखा वाह ! रे वाह ! यह समझ ऐसी हुई कि अपने हाथ से फेंका पत्थर अपने सिर पर पड़े जो औरों को धर्म विरुद्ध प्रश्न चेताने को गए वे खुद जीतमलजी ही धर्म से विरुद्ध प्रश्नकर्ता ठहरे. बस बुद्धिमान पाठकगण इतने में ही समझ लेवें कि तेरापंथियों के गुरुजी की और चेलाजी की कैसी समझ है. तथापि उत्तर जो तेरापंथियों ने प्रश्नोत्तर में छपाया है वह लिखते हैं सो सुनिए. श्री गौतम स्वामी ने भगवती सूत्र के १६ वें शतक के ३ रे उद्देशे में श्री भगवान से प्रश्न किया है जो साधु के हर्ष मसा लटक रहा है उसका देखकर के वैद्य छेदे तो उसको पुन्य होता है कि पाप ? तिसपर श्री भगवान ने उत्तर दिया कि जो वैद्य साधूका हर्ष छेदे उसको क्रिया होता है. इति

इसका प्रत्युत्तर इस लेख में इतना तो विरूद्ध है. कि

गौतम स्वामीजी ने तो क्रिया का प्रश्न करा और तुमने पुन्य पाप का नाम लिख दिया सो आगे मूल पाठ से दिखावेंगे अभी तो इनका उत्तर संपूर्ण लिखते हैं. फिर श्री भगवान ने सूत्र निशीथ के ३ रे उद्देश के ३४ वें बोल में कहा है कि साधू हर्ष छेदे छिदावे छेदते हुए को भला जाने तो १ महीने का प्रायश्चित्त आवे तथा सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध में तेरहवें अध्ययन में कहा है कि किसी साधू के व्रण फोड़ा फुंसी आदि है उसको गृहस्थी छेदे तो उसका अनुमोदन करना वर्जित है यह तेरापंथियों का उत्तर है.

अब इसका प्रत्युत्तर सुनिये कि प्रथम तो यह उत्तर मूल से ही विरूद्ध है क्योंकि प्रश्न तो फासी का और उत्तर देना मसों का यह प्रत्यक्ष विरूद्ध है. परन्तु तुम क्या करो तुम्हारे गुरुजी ने भ्रमविध्वंसन के ११२ वे पत्र पै फांसी छेदने का तो अपने मुखसे प्रश्न उठाया और उत्तर हर्ष छेदने का दिया इस से कहते हैं कि भ्रमविध्वंसन के भ्रम के गोलो का पार नहीं।

पूर्वपक्ष-मसा छेदने में क्रिया है तो फासीमें भी है.

उत्तरपक्ष-मसा छेदने में तो क्रिया शुभ कही है. उसका समाधान आगे सूत्र और अर्थ टीका सहित करेंगे परन्तु हाल तो यह विचारो कि मसा तो साधूके शरीरका एक अवयव है परन्तु फासी की रस्सी तो साधू की नहीं यह तो गृहस्थ की है उसको किसी दयावान ने साधुके बचाने निमित्त काट डाली उसमें पाप काहेका हुवा.

पूर्वपक्ष-साधू को गृहस्थी से काम कराने के त्याग है और गृहस्थी करे तो. जैसेकोई पुरुष ने किसी बात का त्याग किया

और दूसरा कोई पुरुष उनका त्याग भंगावे उस त्याग भंगाने वाले को जैसा पाप होवे तैसे साधू की फांसी काटने वाले को पाप होवे.

उत्तरपक्ष—हा ! हा ! हा ! रे ! मित्र दया के वृक्ष को काटने के वास्ते कैसा कुहाड़ा रूप दृष्टांत कहा है. परन्तु तुम क्या करो. तुह्मारे पूज्य जीतमलजी ने भ्रम विध्वंसन के ११२ मा पत्र में लिखा है कि (अथ इहा कह्यो ये साधूनी हर्ष ये छेदे ते वेदने क्रिया लागे एह बु कह्यो पिण धर्म न कह्यो ये व्यावच आज्ञा बारे छे साधूरे गृहस्थी पास कार्य करावारा त्याग छे अने जिण साधूरी आज्ञा विना साधूरो कार्य कियो ते साधूरो त्याग भंगावण वालो छे) इति ॥

अब हे विवेकी पुरुषों ! विवेक से विचारो तो, सरी, की फांसी काटने के प्रश्न का उत्तर में हर्ष काटने का उत्तर जीतमलजी ने कैसे अनुचित लिखदिया. जीतमलजी ने इतना भी नहीं सोचा कि हर्ष तो साधू का अवयव है परन्तु रस्सी तो साधू की नहीं. तो फासी का काटना मसे सरीसा मैं क्यों कर लिखूं, परन्तु पाठकगण विचारो कि जगत में मतव यन के लिये कैसे असबद्ध लेख लिखते हैं और साधू के मसे काटने वाले को भी शुभ क्रिया कही है सो आगे कहेंगे. तो फिर फांसी काटने में तो धर्म है. उसमें तो कहना ही क्या. परन्तु तिसका तेरेपंथियों के पूज्य जीतमलजी ने कुछ भी सोच नहीं करके लिख दिया कि साधू को गृहस्थ से काम नहीं कराना. तिससे गृहस्थी साधू की फासी काटे तिसमें पाप लगे परन्तु हम इस का समाधान लिखते हैं सो सुनिये, कि प्रथम तो तुमने साधू

को गृहस्थ से काम कराने का त्याग है ऐसा गोलमाल कह- दिया, परन्तु कौनसा कार्य नहीं कराना, तिसका विधान नहीं खोला. अब हम पूछते हैं कि कोई साधू के ५ या १० हाथ कपड़े की जरूरत हुई तब कोई गृहस्थ दातार से साधू ने मांगा तब वह दातार बहुत देने लगा, तब साधू बोला कि ५ हाथ फाड दो तब दातार ने फाडदिया. कहो भाई यह कपडे फाड़ने रूप कार्य दातार ने साधू वास्ते किया तो उस दातार को पाप हुवा या धर्म या साधूजी के गृहस्थी से काम कराने के त्याग भांगे कि रहे.

पूर्वपक्ष—इस में तो दातार को धर्म हुवा क्योंकि साधू को कपड़ा देने से साधू का सयम को उपष्टंभ यानी आधार दिया और साधू जी के भी त्याग नहीं भागे क्योंकि कपड़ा आहार पानी तो गृहस्थी से लेते हैं इसके त्याग नहीं है अपनी नेस- राय की चीज को तोडने फोड़ने रूप काम गृहस्थ से नहीं कराते हैं. कपडा तो गृहस्थ का है उसको साधू के वास्ते फाड़के देवे तो लेने में कुछ भी दोष नहीं.

उत्तर पक्ष—तो हे भाई हम ऐसेही कहते हैं कि दो तीन हाथ का पन्नादार कपडा फाड़ के गृहस्थी देवे तो देने वाले को धर्म हुवा. तो ये कया आधी अगुली की जाड़ी फासी की रस्सी को साधू को बचने वास्ते काटे तो उसमें पाप कहां से ठहराया. हा हा हा समझ जरासा कपडा दे के साधू का साधू पणे का साज में धर्म माना तो फिर मरते हुए साधु की फासी काटके मरते को राखने में पाप कैसी मति से लगा दिया. जैसा कपड़ा साधु का नहीं. तैम रस्सी भी साधु की

नहीं, जैसे साधू को कपडा फाड के देने वाले को साधू का साधूपणा का साज यानी आधार देने वाला कहिये. तो फिर मरते हुए साधू की फासी काटने वाले को तो साधू का सपूर्ण साज यानी आधार देनेवाला कहिये. तो फिर सिद्ध हुवा कि साधू को वस्त्र फाड के देने में धर्म है. तिससे भी साधू की फांसी काटने में महान् धर्म है.

पूर्वपक्ष—कोई ऐसा भी सूत्र में खुलासा है कि जो साधू का शरीर सम्बधी कार्य गृहस्थ करे तो साधु को कल्पे।

उत्तर पक्ष—हा भाई अपवाद मार्ग में स्थिवर कल्पी साधु को अपवाद यानी गाढा काढी कारण उपने मरणात कष्ट में गृहस्थ साधु का शरीर सम्बधी कार्य करे तो भी कोई कार्य साधु को कल्पे ऐसा सूत्र में खुलासा है।

पूर्वपक्ष—जेकर मरणात कष्ट में गृहस्थ साधू का कोई कार्य करे तो साधू को कल्पे ऐसा सूत्र में खुलासा होता तो फिर हमारे गुरु जीतमलजी ने क्या सूत्र नहीं पढे थे जो भ्रमविध्वसन के पत्र ११३ पै ऐसा क्योंकर लिख दिया कि (साधू के गृहस्थ पास से कार्य करा तारा त्याग छै अने जिणे साधूरी आज्ञा विना कार्य कियो ते साधूरा त्याग भगावण वालो छे)

ऐसा लेख कैसे लिख दिया. या साधू को किसी दुष्ट ने फासी दी तिस मरणात कष्ट में भी कोई दयावान् फासी को काट डाले तो भी काटने वाले को एकात पाप होय. ऐसा क्योंकर हमारे गुरुजी ने लिख दिया।

उत्तर पक्ष—हे भाई तुम्हारे गुरुजी का कपोल कल्पना का और सूत्र विरुद्ध लिखने का हिसाब तो तुम अपने गुरुजी से

समझ लेना. हम तो तुम्हारे हित के लिये जो सिद्धांत में मरणांत कष्ट होने से कोई कार्य गृहस्थी साधू का करे तो स्थिवरकल्पी साधू को कल्पे तिसका मूल सूत्र का पाठ लिख दिखाते है सो एकाग्रचित्त करके श्रवण करिये. सूत्र व्यवहार का उद्देशा पाचवां सूत्र २२ मा का पाठ।

सूत्र–निग्रथचणं, राउवा, वियालेवा, देहपुठो, लुसिज्जा, तंइत्थी एवा, पुरिसोवा, उमजेज्जा, पुरिसोवा, इत्थीए, उमजेज्जा, एवसे, कप्पति, एवसे चिठति, परिहारेचं, नोप्पाउणति, एस कप्पो, थेर कप्पियाण, एवंसे, नोकप्पंति, एवंसे, नो चिठइ, परिहारं च, पउणइ, एसकप्पो, जिण कप्पयाण,

इसका टवार्थ जैसा है तैसा लिखते हैं–साधु साध्वी नइ रात्रइ वियालेइ देह सर्व सर्व विष डक दीधो करडै पुरुषनेइ हाथेइकरी डसनी तिगिच्छा करावइ तएहवो डसइ तिवारे कारने स्त्री जात पुरुषइ स्त्री ने हाथे करी डसनी तिगिच्छा करइ इम इण परेइ एणइ प्रकारे ते थिवर कल्पी नइ कल्पे थिवर कल्पी अपवादी वहु इत्त्री एण प्रकारेइ ते थिवर कल्पी ने अपवाद सेवता परियाय तिष्ट रई पिण थिवर कल्पी भ्रष्टन थाई परिहार तप पिण न पाये एह कल्प आचार थिवर कल्पी नो कहेऊ इम तेह नेइ नइ कल्पइ इणे प्रकारे व्यावच नो कराउवो जिन कल्पी ने न कल्पई उत्सर्ग थित इण प्रकारे जिन कल्पी पर्याय न तिष्टे न रहेइ परिहार तप पिण पामइ एह कल्प जिण कल्पी नो कहेउ इम से जिन कल्पी ने रहे प्रायश्चित्त पामे एह आचार जिन कल्पी ने एह कह्यो ॥ इत्यार्थ

अब अच्छी तरह से इम सूत्र के मूलपाठ में साफ कहा

है कि साधु साध्वी को सर्प काटे तिसके जहर को कोई गृहस्थ स्त्री वा पुरुष हाथादिक का झाडा देकर उतारे तो स्थिवर कल्पी साधू को कल्पे और इसका प्रायश्चित्त भी कुछ नहीं आवे. अब विचारो कि जब सर्प का जहर भी साधू साध्वी को गृहस्थी के पास झड़ाना कल्पे ऐसा मूलपाठ सूत्र का बोल रहा है तो तुम्हारे गुरू जीतमलजी का कहना सर्वथा वृथा है और सिद्धात से विरुद्ध है कि नहीं जो साधु की फासी काटने मे पाप बतलाया और जिसने साधू को फांसी काटी उसका त्याग भंग कराने वाला बतलाया. हे मित्रो ! वीतराग के वचनों की प्रतीति हो तो विचारना कि जो साधू साध्वा को सर्प का जहर झड़ाना कल्पे तो फिर फासी कटानी क्यों नहीं कल्पे, सिद्धात के लेख से साधू को सर्प के डंक का जहर उतारने में और फासी काटने में एकांत धर्म है. और स्थिवर कल्पी साधु साध्वी को सर्प के ज़हर झड़ाने का व फासी की रस्सी कटाने का त्याग भी नहीं है, तिससे इन उपरोक्त कामों का साधू को प्रायश्चित्त भी नहीं है ।

अब जो तुम्हारी सूत्र भगवतीजी की साक्षी अण जाण मनुष्यों को भ्रमाणे के लिये दी है सो हम सूत्र पाठ लिखके भ्रम दूर करते है, एकाग्र चित्त करके श्रवण करो ।

सूत्रपाठ–तस्सय, असिपाउ, लवइ, तचेविभ्भ, अदपुइ, सिं, पाडेइ, पाडेइत्ता, असिया, उछिदेभ्भा, सेणूणं, भतेजे, छिंदेभ्भा, तस्सकइ, किरिया, कज्जइ, जस्सछिज्जइणो, तस्सकिरिया, कज्जइ, णणत्थेगणं, धम्मतराएइण, हंता, गोयमा, जेछिंदइ, धम्म तराईण, ॥ इति ॥

अस्यार्थः तेहने व्रण फोडा हर्ष ते नासिकार्सी लटके छे तेने तेह ज प्रते निश्चय वैद्य देखी ने ऋपि प्रति भूमिकाइ लगारे कपाडी ने पड्या विना छेदाए नहीं. ते भर्णा हर्ष पाछुणा थी छेदइ ते निश्चय है. भगवान् ते वैद्य हर्ष प्रते छेदे तेने केतली क्रिया लागे. वैद्य ने क्रिया व्यापार रूप ते शुभ धर्मनी बुद्धि छेदताने अने लोभादिकथी छेदता ने अशुभ क्रिया होवे. जे साधुनी हर्ष छेद ते साधू ने क्रिया न हुवे. निर्व्यापार पणा थकी सर्वथा क्रिया अभाव अथवा इम नहीं ते कहे छे एक धर्म अंतराय लक्षण क्रिया तेने पिण थाए एतले धर्म अंतराय शुभध्यान नो विछेद हर्ष छेदन अनुमोदना थी इति प्रश्नः .

उत्तर–हे गौतम जे छेदे इत्यादि, धर्म अंतराय एतला लगे कहवो. ॥ इति सूत्रार्थ ॥

अब देखो भाई इहा सूत्र में तो जो वैद्य धर्म बुद्धि से छेदे तो उसको शुभ क्रिया यानी पुन्य या धर्म है और जेकर लोभलाभ से हर्ष छेदे तो अशुभ क्रिया है फिर तुम या तुम्हारे गुरुजी धर्म बुद्धि से मुनि का हर्ष वैद्य छेदे . तिसमें पाप कहां से कहते हो. तथा टीका में भी ऐसा ही खुलासा है

तथा च टीका ॥ तस्सति वैद्यस्य क्रिया व्यापार रूपा साच शुभा धर्म बुध्याछिदानस्य. लोभादिनात्व शुभा क्रियते.

टीकार्थ–तिस वैद्य की क्रिया छेदन व्यापार रूपा सो क्रिया शुभ है धर्म बुद्धि करके काटे तो लोभादिक करके काटे तो अशुभ होती है. इति.

अब फिर इसी टीका से विचारलो कि धर्म बुद्धि से हर्ष

छेदे तो शुभ क्रिया धर्म रूप पुन्य है; परन्तु पाप नहीं और लोभादि करके काटे तो अशुभ क्रिया होवे तो धर्म बुद्धि से वैद्य साधू का हर्ष को काटे तिसमें भी शुभ क्रिया धर्म पुन्य रूप है तो धर्म बुद्धि से दया भाव से कोई साधू की फांसी काटे उस मे काटने वाले को पाप लगने की सिद्धांत से विरुद्ध कल्पना क्यों करते हो हे भाई आगम प्रतीत करो और विरुद्ध अर्थ को छोडो.

पूर्वपक्ष–सिद्धांत में कहा कि साधू हर्ष काटने को अनुमोदे तो धर्म अंतराय होवे जो हर्ष काटने को अनुमोदने से ही धर्म अंतराय होवे तो फिर काटने वाले को धर्म पुन्य कहां से होवे गा इससे अर्थ मिले नहीं. क्योंकि जिस काम को साधू लाभ नहीं जाणे उसमें किञ्चित् मात्र भी धर्म नहीं है.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रमविध्वंसन के पत्र ११३ पै ऐसा ही लिखा है, तिससे तुम को यह शंका उत्पन्न होती है. परंतु जरा ध्यान लगा के पक्ष छोड के सुनिये कि साधू हर्ष काटने की अनुमोदना करे ते धर्म अंतराय होवे परंतु साधू को धर्म अंतराय होने से वैद्य को क्रिया अशुभ पाप रूप किसी प्रकार से सिद्ध नहीं होती है क्योंकि सूत्र में अपने किये पाप अपने को लगे ऐसा लेख है परंतु दूसरे के किये पाप नहीं लागे. तथा फेर सुनिये कि जैसे कोई मास खमण के पारणे साधू गोचरी गया दातार उलटे भाव से बिदाम का पाक दिया या और कोई शुद्ध सरस भोजन दिया मुनि ने खाया उनको नहीं पचने से अतिसारादि हुआ तब उनको रोग में ग्रस्त होने से संकल्प विकल्प मलीन परिणाम

हुए तो कहो भाई उस साधू को संकल्प विकल्प मलीन परिणाम से दातार देनेवाले को दान देने में धर्म हुवा कि पाप.

पूर्वपक्ष—दातार को तो धर्म है क्योंकि दाता का भावतो उन मुनि को साता उपजाने के है परंतु मलीन परिणाम करने के या तकलीफ उपजाने का नहीं।

उत्तर पक्ष—तो हे भाई वैसे ही क्यों नहीं समझते कि वैद्य का भाव तो मुनि के दुःख मिटाने के है परंतु साधू के धर्म अंतराय पाडने के नहीं और मुनि अपना कल्प छोड़ के अनुमोदना करे तो धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को तो धर्म ही होवे. धर्म के भाव से हर्ष काटने से तथा कोई गृहस्थ ने पथ्य मनोज्ञ आहार कोई साधू को दिया और साधू ने उस पर राग भाव अच्छा जाण सराह के खाया तो खाने वाले साधू को दोष लगा परन्तु दातार को धर्म ही हुवा वैसे ही हर्ष छेदने का साधू अनुमोदे तो साधू को धर्म अंतराय होवे परन्तु वैद्य को अशुभ क्रिया नहीं, तथा तुम्हारा यह भी कहना ठीक नहीं कि जिस काम को साधू भला नहीं जाणे उसमें किंचित्-मात्र धर्म नहीं, क्योंकि कई काम ऐसे ही है कि साधू को अनुमोदना नहीं करनी परन्तु गृहस्थी को धर्म का लाभ होता है सो दिखाते हैं. जैसे कोई मुनि विहार करके जाते उस वक्त कोई गृहस्थ भक्तिवान साधू को पहुंचाने को चला, साधू ने निषेध कर दिया तो भी वह गृहस्थ मुनि की भक्ति के वास्ते पाच सात कोश संग गया. अब साधू तो उसको भला भी नहीं जाणे उससे कुछ लेवे भी नहीं, जेकर साधू उससे लेने का परिचय करे या भला जाणे तो उसको प्रायश्चित्त आवे.

अब कहो भाई साधू की भक्ति वास्ते गृहस्थी साधू के सग जावे उसको साधू तो भला नहीं जाणे परन्तु गृहस्थी को तो भक्ति का लाभ हुवा कि नहीं, तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो वह गृहस्थ साधू के त्याग को भंगाने का कामी ठहरा उससे एकात पाप उस गृहस्थी को हुवा समझते होंगे जेकर एकात पाप होवे तो फिर तुम लोक तुम्हारे पूज्य आदिकों को कई कोश लग पहुचाने क्यों जाते हो या तुम्हारे गुरुजी तुम्हारे सगाते क्यों विहार करते हैं और तुम को पाच सात कोश तक सेवा भक्ति करणी ऐसा नियम क्यों कराते हैं तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के लेखे तो तुम सर्व तेरेपंथी श्रावक कि जो तुम्हारे गुरू को पहुचाने जाते या संग रहते वह या तुम्हारे गुरूजी जो तुम्हारे सग विहार करें यह सर्व तुम्हारी श्रद्धानुसार भगवत की आज्ञा बाहिर ठहरे।

क्योंकि श्रीभगवान ने तो एक वक्त भी गृहस्थ के सगाते विहार करे तो प्रायश्चित्त आवे ऐसा फुरमाया है ता फिर तुम्हारे पूज्यजी तो गृहस्थी के संग विना प्रायः विहार करते ही नहीं. तो तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम्हारे पूज्य जी को भी हमेशा दोप लगता होगा. और एक वक्त दोप लगावे तो तुम्हारी श्रद्धा साधू मानने की है नहीं, तो फिर यह बडा विचार का कार्य है. सो बुद्धिमान समझ लेवोगे. या तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार जो श्रावक श्राविका साधू को पहुचाने जाते है कोशावर सग रहते हैं वह भी साधू का साधू पणा के लुटारे ठहरे. तो यह तो बडा पाप है. कि साधू का साधू पणा लुटाणा तो वह जो साधू को पहुंचाने जावे, या सग रहे, वह सर्व महापापी ठहरेंगे.

पूर्वपक्ष–साधू को गृहस्थ संग विहार करने का प्रायश्चित्त किस सूत्र में कहा है.

उत्तरपक्ष–सूत्र नसीथ के दूसरे उद्देश के ४० मा ४१ मा ४२ मा सूत्र में खुलाशा पाठ है. सो लिखते है ध्यान लगा कर सुनिये—

सूत्रपाठ–जेभिखु, अणात्थिएणवा, गारात्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गाहावइ, कुलं, पिंडवाय, पडियाए, अणुपविसइ, भ्रावा, निखमइ, भ्रावा, अण, पविसंतवा, निखमंतवा, साइभ्रइ, ४० जेभिखु, अणात्थिएणवा, गारत्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिउवा, एण सद्धिं, वहिया, वियारभूमिंवा, विधारभूमिवा, निखमइभ्रावा, पविसइभ्रावा, निखमतंवा, पविसंतवा, साइभ्रइ, ४१ जेभिखु, अणउत्थिएणवा, गारात्थिएणवा, परिहारिउवा, अपरिहारिएणं, सद्धिं, गामाणुगाम, दूइभ्रइ, दूइभ्रंतवा, साइभ्रइ, ४२ ॥ इति ॥

अब देखो सूत्र नसीथजी के मूलपाठ में लिखा है अब अच्छी तरह से हृदय के ज्ञान नेत्र खोल कर के देखो कि जो साधू अन्यतीर्थी अथवा गृहस्थी अथवा पाशत्था के साथे गोचरी जावे शरीर चिंता को जावे. शज्जाय की भूमिका में जावे या गामाणु गाम विहार करे, करावे, करते हुए को भला जाणे तो उस साधूको १ मास का प्रायश्चित्त आवे. अब विचारना चाहिये कि तुम्हारे गुरुजी गृहस्थी के साथ वेरणे का भी जाते है और तुम लोक भावना भाव ऐसेकहके बुलाके भी लातेहो और तुम्हारे पूज्यजी कोई गृहस्थियों के संग शरीर चिंता को भी जाते है और तुम लोक पूज्यजी के साथ भक्तिसमझ के शरीर

चिंता कराने को भी जाते हो और विहार करते तुम्हारे पूज्य जी तुम लोगों को साथ रखते है रस्ते में अन्न पानी भी तुम्हारे से तुम्हारे पूज्यजी लेते हैं. और तुम लोग क्रम तोड़ो महाराज ऐसा कहके वैराते हो. और सग २ पूज्यजी के कई ग्राम और कई कोश तक रहते हो, तो हे भाई यह तीनों काम श्रा भगवान् ने सूत्र नसीथ के मूलपाठ में वर्जे हैं तो फिर तुम्हारे पूज्य जी तीनों काम क्यों करते है ? तुम लोग खुशी से उनके साथ तीनों कामों में क्यों रहते हो? और तुम्हारे गुरु के साथ तीनों कामों में तुम रहते हो तो विचारो कि तुम्हारे गुरु और अपने मन में इस काम को कैसे श्रद्धते हो ?

पूर्वपक्ष—हमारे पूज्य जी तो हम को संग आने में मन करके भी भला नहीं जाणे परंतु हमारा श्रावकों का छंदा है सो हम भक्ति निमित्त जाते हैं.

उत्तरपक्ष—हे भाई प्रथम तो तुमने यह बात सत्य नहीं कही कि हमारे पूज्यजी हम को सग रखने में मन करके भी भला नहीं जाणे क्योंकि जेकर तुम्हारे पूज्यजी तुमको सग रखने में भला नहीं जाणे तो तुम लोकों को दश कोश बीस कोशादिक की भक्ति का नियम क्यों कराते है ? नियम कराने से तो वह तुम को संग लेजाने के कामी हो चुके. फिर तुमको सग रखने में भला नहीं जाणे तो तुम सग रहने वालेके पास से भात पाणी तुम्हारे पूज्यजी क्यों लेवें, और लेते हैं? तो प्रत्यक्ष तुम को सग रखने के कामी हो चुके. कदाच तुम हठ करके ही मान लेवो कि हमारे पूज्य जी हमको संग रखने में भला नहीं जाणते तो फिर तुम्हारी श्रद्धा से तुमको तुम्हारे

पूज्यजी के साथ जाणे में एकांत पाप लगना सिद्ध होवेगा क्योंकि तुम कहते हो, श्रद्धते हो, कि साधू जिस को भला नहीं जाणे उसमें एकांत पाप है इससे और फिर तुम तुम्हारे गुरु के संग रहने से अपने गुरु के संयम के लुटारे भी तुम ठहरे, क्योंकि तुम्हारे भ्रमविध्वंसन का ११३ मा पत्र पै यह लेख है कि

(जिम कोई साधूने आधा कर्मी आदिक असूजतो असणादिक जाणीने देवे. साधू पूंछे चोकस करी शुद्धजाणी लेवे तो साधूने तो पाप नहीं लाग पिण आधाकर्मी आदिक साधूने अकल्पतो दियो तिणने तो पाप लागो ते तो त्याग भंगावण वालोज कहिये. पिण धर्म न कहिये. तिम साधूरे गृहस्थ पास व्यावच करावण रा त्यागते व्यावच गृहस्थ करे अने साधू अनुमोदे नहीं तो तिणरे त्याग न भागे पिण आज्ञा विना अकल्पणीक कार्य गृहस्थ कियो तिणने तो त्याग भंगावण रो कामी कहिये पिण तिण में धर्म न कहिये.) इति

अब विचारो अपने गुरुजीका लेख को देखो. कि तुम्हारे गुरुजी के तो तुमको संग लेजाने के त्याग हैं और तुम अपने गुरुकी आज्ञा विना गुरुजी के संग जाते हो तो तुम्हारे गुरुजी का त्याग को भंगावण वाले ठहरे, तो हे मित्रों यह तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तुम साधूका साधूपण लूटके महा पापी बनने को गुरुजी के संग क्यों जाते हो. कदाचित् तुम कहो कि हमतो गृहस्थी हैं. खुशीचाहे सो करें तब खुशी चाहे में तो झूठ बोल के साधु को अचित् जल कहके कचाजल भी देदेते होवोगे. या आधाकर्मी को शुद्ध कहके बेरा देते होवोगे तो फिर ऐसे लुटेरे

होने से तो तुम श्रावक नाम कैसे धराते हो. और तुम्हारे गुरु तुम संग जानेवाले श्रावक को भक्त माने कि साधु पनेको लुटेरे माने और जो काम साधू नही इच्छे वह काम गृहस्थी साधूके मन उपरात. साधूके वास्ते करे तो उसमें तुह्मारे गुरुजी महा. दुर्गति के खाता बताते है. तो फिर तुम दुर्गतो हासिल करने को गुरुजी के सग क्यों जाते हो. या तुम लोगों को तुम्हारे गुरुजी ने नशीथ का पाठ नहीं दिखाया होवे और तुमको सग आते नहीं रोके तो खैर अब यह प्रत्यक्ष पाठ को देख के समझ जावो.

पूर्वपक्ष–पहुचाने को तो तुम्हारे श्रावक लोगभी आते हैं?

उत्तरपक्ष–आते है परन्तु तुम्हारे सरीसी हमारी श्रद्धा नहीं कि जिस काम को साधू भला नहीं जाणे जिसमें किंचिन्मात्रभी धर्म नहीं

पूर्वपक्ष–साधुको श्रावक पहुचाने जावे उसमें तुम क्या समझते हो ?

उत्तरपक्ष–हमतो सिद्धात में जैसा है वैसा ही समझते हैं. कि प्रथम तो हम गृहस्थ को संग रखने का उपदेश नहीं देते है कि तुम हमारे सग भक्ति सेवा निमित्त रहो या ऐसे त्याग भी नहीं कराते कि तुम हमारे सग पांच दश कोश की भक्ति करणे की अंतराय मत करो. अब गृहस्थी उसकी खुशी से पहुचाने आवे तो शहर के बाहिर उनको कह देते है कि अब हमार संग आगे मत आवो–

पूर्वपक्ष आगे मत आवो ऐसा निषेध करणा सूत्र मे कहा कहा है ?

उत्तरपक्ष-सूत्र आचारांग के दूसरे श्रुतस्कंध के १५ वां अध्ययन में श्री महावीर प्रभु जी दीक्षा लेके विहार करा. तब सर्व कुटुम्ब को भाषासमिति से विसर्जन किये. यानि आगे हमारे संग मत आवो ऐसे कह के आगे चले. वैसे ही साधू भी गृहस्थ को निषेध करके आगे विहार करते हैं और निषेध करण उपरांत भी मुनि की सेवा भक्ति करण को गृहस्थी आवे तो मुनि उससे अन्न पाणी नहीं लेवे उसका साज रस्ते में नहीं वछे. क्योंकि उससे अन्न पाणी आदि लेवे तो वह साधू गृहस्थी को संग रखने का कामी ठहरा और गृहस्थी को संग राखे, रखावे, रखते को भाला जाणे तो साधू को एक मास का प्रा, यश्चित्त आवे, इस वास्ते साधू तो उस को अनुमोदे भी नहीं. उससे कुछ लेवे भी नहीं किन्तु निस्पृहणीय रहे. और उस आते हुए को निषेध भी देवे कि हमारे संग मत आवो. तो उस साधू को दोष नहीं संभवे परन्तु जो मुनि के गुण को अनुमोदन करके मुनि की सेवा भक्ति बने जहां तक करे तो उस भक्ति के करने वाले को तो भक्ति का धर्म यानी लाभ ही हुवा. और जो एकांत पाप होता तो श्री भगवान् श्रावकों को मनादि फरमा देते कि तुम को मुनि के सामने जाना नहीं कल्पे या पहुंचाने जाना नहीं कल्पे. ऐसा कोई सूत्र में लेख नहीं है. अब वैसे ही समझ लेवो. कि जैसे साधू को गृहस्थ के संग जाने का विहार करने का कल्प नहीं. और गृहस्थ संग आवे तो निषेध भी करदेवे. परन्तु गृहस्थी अपनी भक्ति से मुनि के गुण अनुमोदन भक्ति का लाभ ही है. वैसे ही मुनि को गृहस्थी स हर्ष छेदन कराना नहीं. जेकर छेदवावे तो प्रायश्चित्त आवे

परन्तु काटने वाला वैद्य मुनि की सुख समाधि चिंत के यानि इनकी तकलीफ मिट जावेगी तो अनेक जीवों को तारेंगे अनेक जीवों की रक्षा यह मुनि उपदेश देके करावेंगे और आप भी संयम पालेंगे तो मेरे को भी धर्मसाज से धर्म होवेगा ऐसा जान के हर्ष को काटे तो उसको भी सूत्र अर्थ टीका में सफा लिखते हैं कि शुभ क्रिया रूप धर्म पुन्य हुवा. वही सिद्धांत का सत्य लेख है. और तुम्हारा आचारांग का दूसरा स्कंध का १३ मा अध्ययन की साक्षी भी ऊपर माफिक है, क्योंकि साधू को अनुमोदना करना वर्जित है. परन्तु वहां गृहस्थी को पाप नहीं कहा है. और जो तुमने नशीथ सूत्र का तीसरा उद्देशा का ३४ में बोल की साक्षी लिखी वो भी भ्रमरूप है. क्योंकि सूत्र में ऐसा कथन है कि साधू को अपनी काया के गूमड़ा गंडमाला मशा भगंदरादिक को तीखे शस्त्र से नहीं छेदना. क्योंकि इससे रखे आत्मा की घात होवे. या रोग वृद्धि पामे. इत्यादि कारण सूत्र में चले हैं तो तीखे शस्त्र से गुमडादिक छेदे छिदावे छेदते को भला जाणना मुनि को नहीं कल्पे सो आत्मघात आसरी जानना परन्तु धर्मबुद्धि से मुनि की करुणा ला के यत्न से छेदे तिसको पाप लगने का कथन सूत्र में नहीं है. क्योंकि धर्मबुद्धि से कोई हर्षादिक छेदे तिसको तो सूत्र भगवतीजी का शतक १६ मा उद्देश तीसरे में शुभ क्रिया कही है सो हमने ऊपर सूत्र अर्थ टीका लिखदी सो जाणना और तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने भ्रमवि वसन में कल्पना करी है. कि साधू हर्ष को अनुमोदे तो धर्म अंतराय होवे तो वैद्य को लाभ कहां से होवे. यह सर्व कल्पना सिद्धांत से विरुद्ध है

क्योंकि साधू गृहस्थी के आने जाने की भक्ति को नहीं इच्छे परन्तु करने वाले को लाभ है. वैसा यहां भी समझो कि हर्ष का कटाना मुनि तो नहीं इच्छे. इच्छे तो धर्म अंतराय होवे परन्तु भक्ति भाव से वैद्य मुनि का चारित्र का उपष्टंभना यानी आधार देने के वास्ते हर्ष काटे तो उसको तो शुभ क्रिया धर्म की होती है. अब हे मित्रो हर्ष छेदने में भी सूत्रोक्त पाप सिद्ध नहीं होता है किंतु धर्म होता है तो फिर मुनि को फांसी काटने वाले को तो महान् धर्म है सो सूत्र को देख के भव्यजनों को सत्य का ग्रहण करना और असत्य का त्याग करना उचित है ॥

इति प्रत्युत्तर दीपिकाया चतुर्थ प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तरं समाप्तम् ॥

———०———

प्रश्न पंचम प्रारंभः ॥

गायों से वाडा भरा हुवा है. जिसमें किसी दुष्ट ने लाय लगा दी. किसी दयावान ने किवाड़ खोल वाहिर निकाल दी. और गायें वच गई. तुम उन दोनों को पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥ इति प्रश्नः ।

जरा तेरे पथी मित्रों विचारना कि हमारा प्रश्न तो ऊपर लिखे मुताबिक है और तुमने प्रश्नोत्तर में कुछ विषय वदल के लिखा सो यह है. गायों से वाडा भरा हुवा है जिसमें किसी ने लाय लगादी किसी ने किवाड खोल वाहिर निकाल दी. जिसमें गायें वच गई उसमें पाप कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥ इति ॥

अब ख्याल करना चाहिये कि प्रश्न तो दुष्ट लाय लगा दी. और दयावान ने निकाल दी और तुमने दयावान और दुष्ट इन पद को और दोनों को पाप कहने हो. यह शब्द किस लिये छिपाया वरा बुद्धिमान तो इससे ही समझलेते है कि जैसे प्रश्न के शब्दों को छिपा के लिखते हैं वैसे ही सिद्धांत के शब्दों को कुछ गोप क किसी ठिकाने है तो कुछ और लिख दिया कुछ. सो हम पहिले ४ प्रश्न में लिख आये है. और आगे को भी लिखेंगे जिससे मालूम हो जावेगा अब तेरेपाथियों ने उत्तर दिया सो लिखते हैं ॥

उत्तर–इस प्रश्न का समाधान–आप एक चित्त हो के सुनिये (क) श्रीभगवान् ने सूत्र नशीथ के १२ मे उदेश के पहिली और दूसरी गाथा में यह कहा है कि त्रस जीव को

बांधे, बधावे, तथा बांधते हुए को अनुमोदे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे यह पाठ श्रीभगवान् ने स्पष्ट रीति से कहा है. जिसपर भी आप लोग नहीं मानोगे तो हम लोग आप लोगों को मोहनी कर्म का उदय विशेष समझेंगे यह तेरे पंथियों का उत्तर है.

इसका प्रत्युत्तर सुनिये–देखो देखो देखो भाई! तुम लोगों की भूल का कहा तक कथन किया जावे कि प्रथम तो नशीथ जी का १२ वा उद्देश का पाठ जिसको तुमने १३ वां उद्देश बतलाया और सूत्र तो गद्यरूप है जिसको तुमने पद्यरूप यानी गाथा बतलाई और सिद्धांत में तो (जेभिखु, कोलुण, वडियाए) यानी जो साधु करुणावश जीव को करुणावर्ती, दयामणी पणे की वृति करके बांधे, बंधावे या अनुमोदे, छोड़े छुडावे या अनुमोदे तो साधू को प्रायश्चित्त आवे और तुमने साधू का नाम और दयामणी वृत्ती का नाम छोड़ के समचें बांधे, बंधावे इत्यादि गोलमाल सूत्र से विरुद्ध लिख दिया तो अब विचारो कि मोहनी कर्म का उदय तुम्हारे प्रबल होरहा है कि नहीं, क्योंकि सूत्र का हर्फ १ भी जाण के ज्यादा कमती लिखे तो उसको मिथ्यात्व मोहनी कर्म लागे. मिथ्यात्व मोहनी जिसके उदयभाव में होवे वो ही विरुद्ध लिखे, कदाच् तुम्हारे गुरुजी ने तुमको गोलमाल विपरीत धरा दिया तो उनको तो अपनी असत्य कल्पना को सूत्र का नाम ले के सत्य करने की लोभ दशा आगई होवे तो खैर उनकी वो जाणे, परन्तु तुमको तो गुरुजी से पूछना था कि चौमासी प्रायश्चित्त त्रस जीव गृहस्थी छोड़े

तो आवे या साधू को अगर गृहस्थी साधू दोनों को प्रायश्चित्त समझते हो वो तो तुम बहुधा तेरेपंथी श्रावक लोग प्रतिदिन पशु आदिक को बांधते हो, छोड़ते हो, बंधाते हो, छोड़ाते हो, जाणते है और फिर प्रायश्चित्त भी नहीं लेते हो तब तो तुम सर्व तेरेपंथी श्रावक धर्म के विराधक भगवंत के मारग रहित ठहरे

पूर्वपक्ष-प्रायश्चित्त तो साधू को आवे, क्योंकि पशु का बांधना, छोड़ना, यह काम साधू को नहीं करना. गृहस्थी तो खुले है उनको प्रायश्चित्त कैसे आवे ?

उत्तर पक्ष-हां वैसेही हम कहते है कि उत्तर लिखते वक्त खयाल क्यों नहीं किया जो साधू का नाम छिपा के समूचे गोलमाल लिख दिया तथा यह गोलमाल लेख प्रश्न से अति विरुद्ध है क्योंकि प्रश्न तो यह था कि गायों के वाड़े में लाय लागे जिसको दयावान् दया करके खोल देवे गायां बचगई उसमें पाप कहते हो पाठ दिखावो. प्रश्न तो दया करके खोलणे का और उत्तर तुमने गोलमाल त्रस जीव साधू बांधे, बधावे, खोले, खुलावे तो प्रायश्चित्त आवे, तो यह लिखना प्रश्न से अति विरुद्ध है, क्योंकि बांधे बंधावे यह तो गृहस्थों का काम गृहस्थ लोग करते हैं और साधू करे तो भगवत ने प्रायश्चित्त आवे ऐसा कहा है परन्तु मरते हुवे को बचावे उस का प्रायश्चित्त कहा होवे तो पाठ दिखावो, नहीं तो यह उत्तर ऐसा ठहरा कि जैसे पूछा तो सांग बताया पूछ, क्योंकि पशु आदि का खोलना तो गृहस्थ का व्यवहार है साधू तो संसार को त्यागे बाद पशुआदि त्रस जीव को किसी गृहस्थ के बांधे

बंधावे खोले खुलावे ही कार्य का यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि पशु आदिक का बाधना, लडका लड़की राखना, खाना, चराना, हाथी घोडे पालना इत्यादि काम तो साधु प्रत्यक्ष करते ही नहीं, जैन साधु तो अलग ही रहे परन्तु अन्य रामस्नेही सन्यासी आदि अपने मत की क्रिया में चलते हैं व भी ऐसा काम नहीं करते है कि किसी के गाय आदि पशु को बाधना खोलना तो साधू तो बाधे खोलेहीं कैसे अगर कदाचित् कोई साधूपणे से परमेश्वर की आज्ञा को उलंघे के किसी गृहस्थादि की खुशामद से या आजीविका कालिया कोई गृहस्थ के पशुआदि जानवर को बाधे, बंधावे, खोले, खुलावे जिसमें प्रायश्चित्त आवे, नशीथ में सर्व कथन साधू का है परन्तु गृहस्थ का नहीं परन्तु मरते, हुए जीव को कोई खोले या लाय मे बाहर निकाले, जिसका प्रायश्चित्त कहा होवे तो बतावो ?

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते हैं कि सूत्र नशीथ के १२ वें उद्देश में ऐसा पाठ है—

सूत्र—जेभिखु, कोलूण, वडियाए, अणपरं, तसपाणं, जाइ, तणपासए, णवा, मुजपासएणवा, कट्ठपासएणवा, चम्म पासएणवा, वेत्तपासएणवा, रज्जुपासएणवा, सुभपासएणवा, बधइ, बधतंवासाइज्जेइ १ जेभिखु, वद्धिल्लतंवा, मुपइ, मुपतंवासाइज्जेइ २.

इस पाठ से कहते है कि जेभिखु कहिये साधू त्रस जीव ने बाधे तथा खोले तो प्रायश्चित्त आता है तो फेर गायों को

भी चलती बाडे से खोले तो प्रायश्चित्त आवे है इससे एकंत पाप सिद्ध होता है.

उत्तरपक्ष–हे मित्रो यह तुम्हारी करुणा को काटने की चेष्टा से तुमने सूत्र अर्थ विपरीत कहा है क्योंकि (कोलुण, वडियाए) इस पाठ का अर्थ दयामणी वृत्ति आजीविका निमित्त त्रस पाणी ते गायादिक पशुवों को खोले, खोलावे, खोलते को अनुमोदे तो ४ मास का प्रायश्चित्त आवे, परन्तु अनुकम्पा अर्थ नहीं होता है.

पूर्वपक्ष–हमारे भ्रमविध्वसन में तो करुणा निमित्त ऐसा अर्थ नहीं लिखा है.

उत्तरपक्ष–तुम्हारे भ्रमविध्वसन का अर्थ प्रत्यक्ष युक्ति से भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि भ्रमविध्वसन का पत्र ५६ पर त्रसपाणी का अर्थ बेइन्द्रियादि जीव लिखा है त्रसप्राणी जाति बेइन्द्रियादि नहीं इस अर्थ को जरा बुद्धि से विचारना चाहिये कि कोई लटगीडोरे, किडी कथुया को चामडे की रस्सी से या काष्ट का खोडे से साधु करुणा निमित्त कैसे बाधे क्योंकि सूत्र के पाठ में कहा है कि–

(तणपासएणवा, मुंजपासएणवा, चमपासएणवा,) इत्यादिक देखो इन पूर्वोक्त तणादिक की रस्सी पाशादिक से तो मोटा त्रस यानी गौ आदि पशु को बाधना प्रत्यक्ष सिद्ध है या गृहस्थ लोग बाधते भी है और लट कुथुवादिक को तो गृहस्थीभीरसी आदिक से नहीं बाधते हैं तो साधू कैसे बाधे यह तो प्रत्यक्ष अर्थ सभव नहीं जैसे भ्रमविध्वसन में त्रसप्राणी से बेइन्द्री आदि ग्रहण किया और रस्सी से बाधना खो-

लना बताया तो वैसा ही कुलुणवडिया शब्द का अर्थ करुणा करके खोलना का भी अघटित है क्योंकि सूत्र का पाठ को लुण वडिया ऐसा है परन्तु अनुकंपवडियाए नहीं है तथा तुम्हारे गुरुजी ने (कोलुणवडियाए) शब्द को करुणा स्थापवा निमित्त सूत्र आचारांग शतक २ अध्ययन २ उ० १ की साक्षी दी सो भी सूत्र विरुद्ध भासे हैं क्योंकि आचारांग में तो (करुण, पडियाए) ऐसा पाठ है और नशीथजी में (कोलुण, वडियाए,) ऐसा पाठ है ॥ अर्थ ॥ तो कोलुण वृत्या यानी आजीवका का होता है और आचारांग में (करुण, पडियाए) इसका अर्थ करुणा अणकुंपा भक्ति अर्थे ऐसा होता है सो टीका में भी कहा है (यतः कारुण्येन भक्त्यावा) तो नशीथ का और आचारांग का पाठ अर्थ एकसा है नहीं तो साक्षी लिखना भी भ्रम का प्रताप है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी ने अंतगढ़ सूत्र में सूलसाजी की अनुकंपा की साक्षी दी है.

उत्तरपक्ष–वहां तो अनुकंप ठयाए पाठ है परन्तु अनुकंपा वड़ियाए ऐसा पाठ नहीं है सो भी अयुक्त साक्षी है तथा तुम्हारे गुरुजी ने श्रीकृष्ण की साक्षी दीवी सो भी निरर्थक है क्योंकि वहा भी अनुकंप ठयाए ऐसा पाठ है सो निशीथ से नहीं मिले तथा जिन रखिया की रेणा देवी ऊपर करुणा उत्पन्न हुई ऐसी साक्षी देते हैं वह भी अघटित है क्योंकि सूत्र में तो ऐसा पाठ है कि रेयणा देवी ने जिन रिखपर उपसर्ग किया वहा ऐसा पाठ है सिंगारे हिये कलुण हिए उवसर्गे हिय। अस्यार्थ ॥ सिंगार रस सहित तेणे वचने करीने करुणा दया-

मणा वचन तेणे करी उपसर्ग उपद्रव वचन चेष्टा तेने करीने इति ऐसा करणा मलाप दयामणा वचन सेरेणा देवी ने दोनु भाई जिनरिख और जिनपाल को उपशर्ग किया जब जिनपाल तो नहीं चलायमान हुवा परन्तु जिनरख को वह करुणा दयामणा मोह मलाप के बचन को सुनके रागमोहिएमई अवसे, कम्म-बसगए, अवएखइ, मगा, ओसविलिय, तपेण, निएरखिया, समुप्पणा, कलुणभाव, इति पाठ

अस्यार्थ –तथा देवी ने रागे स्नेह करी मोहि छे मोहपामी छे मतिबुद्धि जे जिनरिखनी अ. पोतानी आत्मा वसनहीं छे ज कुमरनी तथा कर्म ने वसे कर्म नो परवश पणा पाम्यो छे अ साहमु जोइ मार्गे देवी आवे ते मते बिलाडि सारखी देवी मेतें देखे तिवारे जिनरखेतेने उपनो करुणा मोहरूप भाव दवी ऊपर) यहां भी मोह के बचन सुण के मोहरूप करुणा रस उत्पन्न जिनरखित को हुवा परंतु (कोलुणवडियाए) ऐसा पाठ नहीं सो यह भी साची सूत्र नसीथ के पाठ की देणी विरुद्ध है अनुकंपा करके करुणा करके मरते जीव को नहीं बाधने छोडने का अर्थ यहां नहीं घटता है जेकर हठ करके ऐसा ही अर्थ मान लेवो कि त्रस प्राणी यानी बे इन्द्रियादिक लट कीड़ी माखी आदि जानवरों को करुणा करके बाधने छोडने में प्रायश्चित्त है तब तो किसी साधु में साध पणा भी नहीं रहे क्योंकि शीतादिक मौसम में धोवणपाणी आदि में गृहस्थ के घर में माखी आदिक वहर जाती है और वे धोवण पाणी साधु'को वैराणे से उनके पात्रे में आजाती है तब साधु उनको करुणा करके कपडे में हलकी सी गाठ

दें के बांधके मेलते है या मुहपती आदि के कपड़े में रखते हैं कि जिससे वे मक्खी आदिक जानवर गर्मी पाके चेत जाते हैं और तुम्हारे गुरुजी भी मक्खी आदिक को बचाते है कपडे में बांधते है तो ऐसे जीव बचाने में पाप तुम कहते हो तब तो तुम्हारी श्रद्धा से साधु का साधु पणा भी नहीं रहा क्योंकि तुम्हार भ्रम विध्वसन के पत्र ५० में कहा है कि अने त्रस जीव ने बांधे छोडे ते साधु नही. वीतरागनी आज्ञा लोपी ते माटे बधन छोड़े तिणने साधु नही कहणो ते असाधु छे गृहस्थ तुल्य छे॥

अब विचारो कि तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तो सर्व साधु गृहस्थी तुल्य ठहरे क्योंकि धोवण पाणी आदिक में पड़ी हुई माखी आदिक कढाते है कपडे में लिपटते है पीछी खोलते हैं पाणी धोवण में ऊदरा आदि मोटा जानवर पचेन्द्री पड़ जाने उसको भी पात्र के जल से बाहर निकासते है इससे तथा तुम्हारे गुरु भी यह काम करते हैं तो भी तुम्हारी श्रद्धा अनुसार सर्व साधु गृहस्थ तुल्य ठहरे क्योंकि काढे तो प्राय॰ श्चित्त तुम समझते हो और खुद यह काम तुम्हारे गुरुजी करते जाते है अफसोस है कि ऐसी श्रद्धा का वर्णन कहा तक किया जावे.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो अपना पाप टालने को मक्खी आदि को कपडादिक में बाधते हैं या ऊदरादिक पड जावे तो अपना पात्र से बाहर काढते है तो उनको प्रायश्चित्त नहीं है

उत्तरपक्ष–नशीथ में तो ऐसा नहीं कहा कि अपने पात्र में मक्खी आदिक पडजावे तो अनुकपा करके कपडादिक में बाध खोले उसको प्रायश्चित्त नहीं, यहा तो समचेही कथन है

कि जे भिक्खुं कोलूण वडियाए अणें परंतस वथावे बांधते को भला जाणे तो प्रायश्चित्त आवे तो फिर तुम्हारे गुरुजी क्यों बांधते हैं या अपना पाप टारते हैं तो तुमने तो कीडी मक्खी कुदरादिक को धावण पाणी में डाले नहीं वो तो अपने आप ही पडे हैं उनके मरणे में तुम्हारी श्रद्धा अनुसार तो तुम्हारे साधू को पाप कैसे लगे क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा तो ऐसी है कि कोई मरो कोई जीवो अपने तो जीवणा मरणा वछना नहीं ऐसी तुम्हारे गुरु की श्रद्धा है तो फिर पात्रे में से मरते हुए जीवको क्यों काढते हैं.

पूर्वपक्ष–हमारे करुणा निमित्त नहीं काढते वे तो अपने जलादिक नहीं बिगडने निमित्त काढते हैं

उत्तरपक्ष–यह भी बात मिथ्या है क्योंकि जेकर अपने जल की रक्षा निमित्त काढे तो फिर मक्खी आदिक को कपडादिक में क्यों बांधे या जीवती क्यों काढे क्योंकि जीवती काढने में तो उसका जीवणा वंछा और नहीं काढे तो मरणा वछा और जीवणा मरणा वंछा तो फिर तुम्हारी जीवणे मरणे की नहीं वछणे की श्रद्धा व्यर्थ हुई तथा करुणा करके नहीं काढते यह भी बात मिले नहीं क्योंकि जीवको बचाने में करुणा दया होती है और मारणे में अकरूणा हिंसा होती है यह सिद्धांत से सिद्ध है और प्रत्यक्ष से भी सिद्ध है तो फिर करुणा करके तुम्हारे गुरु माखी ऊदरे को नहीं काढते तो क्या हिंसा अर्थ काढे तो यह भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि हिंसा अर्थ काढे तो वो महापापी ठहरता है या अपने पाप टारने अर्थ काढे तो यह भी कल्पना व्यर्थ ही है क्योंकि अपना पाप टालन को काढे

वो तो करुणा ही हुई करुणा विना पाप टरता ही नहीं और सिद्धांत मेंभी ठाम ठाम करुणा करके बचाने का अधिकार सूत्र ठाणांग आचारंग प्रश्न व्याकरण भगवती ज्ञाता आदि सूत्रों में है परंतु अपना पाप टारणे को बचावे ऐसा पाठ कोई सूत्र अर्थ टीकादिक में कहां भी नहीं कहा है.

पूर्वपक्षः–ऐसा है तो सिद्धात में करुणा करके साधू बांधे बंधावे जिसका प्रायश्चित्त क्यों कहा.

उत्तरपक्षः–इसी वास्ते हम ऊपर कह चुके कि सिद्धांत में तो (कोलुण वडियाए) ऐसा शब्द है तिसका अर्थ आजीविका निमित्त जाणना चाहिये और त्रस शब्द से गवादिक जाणना चाहिये क्योंकि बेइन्द्रियादिक लट, गिंडोला, कीड़ी माखी आदिक को रस्सी वगैरह से बांधना प्रत्यक्ष प्रमाण से भी नहीं घटे और प्राचीन पत्रों में लिखते भी हैं कि त्रस पाणी सें मोटे गवादिक पशु ग्रहण करणे इस वास्ते मोट जीव चोपदादिक जाणने तिन को गृहस्थ की खुशामद दीनपणा करके यानी यह ग्रहस्थ के ढोर निकल जायगे इसलिये इनको बाध देउ तो ग्रहस्थ मेरे को आहारादिक देवेगा. या गृहस्थ के कुछ लोभादि निमित्त ढोर को छोडे कि ढोर के छोड़ने से ग्रहस्थ मेरे पर खुशी हो के कुछ मेरे को देवेगा या गृहस्थ का रागका लिया हांडा ढोर को बाधे छोडे तो साधू का प्रायश्चित्त कहा हैं. इत्यादिक अर्थ की सम्भवती मालुम होती है परन्तु मरते जीव को छोडने का निषेध कहां भी नहीं है.

पूर्वपक्ष–कोलुण वडिया नाम आजीविका निमित्त करुणा शब्द कहा कहा कहा है तथा मोह निमित्त करुणा शब्द कहां कहां कहा है.

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई प्रथम इस नसीथ सूत्र का पाठ ही कोलुण वडियाए ऐसा है तिसका अर्थ करुणा वृत्ति होता है तथापि हम ऐसा ही पाठ दूसरे सूत्र से बताते हैं साख सूत्र दुख विपाक के पहिले अध्ययन में एक जन्माध भिखारी का अधिकार चला है तहा ऐसा पाठ है—

सूत्र—मियाग्गाम, नयरे, गिहे गिहे कोलुण वडियाए, विर्त्ति कप्पेमाणे, विहरई

अस्यार्थः--मृगागाम नगर में घर २ ने विषे दीन वृत्ते करी आजीविका करतो थको विचरे छे अब देखो कि अध पुरुष मृगागाम नगर ने विषे घर २ मते (कोलुण वडियाए) कहता दिन वृत्ति तो विचारो कि कालुण वडिया नाम दीन वृत्ति का है कि नहीं तथा इस सूत्र की टीका में भी कहा है (कालुण वडियाएत्ति कारुण वृत्या विर्त्ति कप्पेमाणेत्ति जीविका कुर्वाणः) तो देखो टीका में भी कहा कि करुणा की वृत्ति करके आजीविका करता भया ए देखो करुणा की वृत्ति यानी दीन दयामण शब्द करके आजीविका करणे वाला भिक्षाचर अंध पुरुष कहा वैसे ही नसीथ में कोलुण वडिया शब्द करुणा की वृत्ति यानी दयामणी वृत्ति करके दादा बापणा छोड़ना करके आजीविका भिक्षा करणी वर्जित करी है तथा सूत्र उत्तराध्ययन के अध्ययन ३२ गाथा १३ मी का पदा ४ में (कारुन्न दीणे हरिमेव इणो) यहा भी कहा है कि जो कामादिक में आशक्त होवे वो (कारुन्न दीणे कहता अत्यन्त दीन दयामणो होवे तथा टीका में भी कहा. तथा च टीका ॥ कीदृशसन् करुणाये अर्ह कारुण्य कारुण्यत्वेन दीन कारुण्य दीन अत्यंत दीन इत्यर्थ')

अस्यार्थ—कैसा होता हुआ उसको देख के दूसरे को करुणा आवे उसको अत्यंत दीन कहते हैं इति टीकार्थ ।

देखो इस सूत्र पाठ टीका में भी कारुण्य नाम दीनपने का कहा है तथा सूत्र प्रश्न व्याकरण का १ सवर द्वार की ३ भावना में साधु को भिक्षा की विधि बताई है वहा भी ऐसा पाठ है (अदीणे अकुलुणे) दीनपणा रहित दयामणा पणे रहित, अब देखो यहा सूत्र में अकलुणे नाम दयामणा पणा रहित भिक्षा करे तो साधु भगवंत की आज्ञा का आराधिक है और अकलुणे कहने दयामणा पणे से भिक्षा लेवे तो प्रायश्चित्त आता है तैसे ही विचारो कि तुम्हारे गुरुजी भ्रम विध्वसन में (कोलुण वडियाए) इसका अर्थ अनुकंपा का लिख के जीव मरते हुए को बचाने में पाप लगना है वो कदापि नहीं मिलता, क्योंकि दयावान करुणावान तो साधु सदा ही होते है करुणा का दया का प्रायश्चित्त किसी सिद्धात में नहीं फक्त कोलुण वडियाए नाम तो दयामणे की वृत्ति का है सो साधु को दीन दयामणी वृत्ति करणी भगवान ने वर्जी है ॥ परतु ऐसा तो श्री भगवान ने किसी सिद्धात में नहीं फरमाया कि हे साधु तू करुणा दया मत करजे उलटा करुणा दया करणे का तो उपदेश सूत्र में ठाम २ परमेश्वर ने फरमाया है तो फिर तुम सिद्धात विरुद्ध अर्थ क्यों करते हो कि अनुकंपा करके त्रस जीव को नहीं छोड़ना यह सूत्र से असंभव श्रद्धा तो तुम्हारी ही है परतु दयावत उत्तम प्राणी की नहीं होती तथा तुम्हारे भ्रम विधसन में मोह अनुकपा सिद्ध करने को रेणा देवी की साक्षी दी है सो भी विपरीत है क्योंकि

सूत्र में तो ऐसा लेख है कि रयणा देवी ने जिनरिख को अनेक प्रकार के मोहरूप सिंगार रस के करुणा रस के शब्द सुनके मोहरूप करुणारूप रस उत्पन्न हुवा परन्तु दया अनु-कंपा जीव बचाणे कि नहीं सो हमने ऊपर मूल पाठ सहित लिखा है और यह करुणा रस का वर्णन सूत्र अणयोग द्वार में है सो सुनिये-

पि, अविप्प, ओयवधवह, वाहिनिणी, वाय, सभमुप्पणो सोई, अविलवि, अप, यहाय, रुन्नलिंगो, रसोकरुणो, ॥ १६॥

अस्यार्थ —अब करुणा रस हेतु,लक्षण थी कहे छे पि अगार। प्रिय विप्रयोग वध व्यथा व्याधि विनिपात सम्भ्रम थी उपनो करुणा रस हुई ए सबध तिहा प्रिय विप्रयोग वल्लभ नु वियोग तथा वधन व्यथा पीडन व्याधी रोग विनिपात कहत। पुत्रादिक मरण तथा सभ्रम ते पर चक्रादिक भय ते थी उपनो करुणा रस होय ए सबध किस्या लक्षणा तेहना तिहा सोच -चु -ते मन नो विकार तथा विलाप ते वचन नो आक्रन्दन तथा प्रम्लान स्वेद तथा रून्न रुदिन प्रसिद्ध एतला लिंग कहता लक्षण छे जेहना ते तथा ॥ १६ ॥

अब देखो जरा ज्ञान नेत्र करके देखो कि अपना मित्र के वियोग से आक्रद करणा या शरीर में रोग होवे जद हाय विलाप करणा पुत्रादिक के मरण में सोच करणा राजादिक का भय से प्रलापादि करना इत्यादि कारण करुणा रस रूप मोह कर्म का वर्णन है तो जिनरिख को भी रणा देवी का वियोग रूप करुणा रस यानी मोह प्राप्त हुवा सो मूल ज्ञाताजी में भी मोह के प्रताप से जिनरिख को (समुपन, कलुणंभावे)

यह कथन है परंतु जीव दया बचाने में मोह रस भगवंत ने किसी सिद्धांत में रस को कालुणय ऐसा सूत्र सूयगडाग का १ सुतखंद में अ० २ उ० १ में कहा है कि मुनि के आगे आके मात पिता कलत्र आदिक करुणा दयामणा शब्द कहते हैं सो पाठ जई कालुणिया कासीथा (अनेक करुणा प्रताप वचन बोले) देखो यहां पि कालुणी शब्द से मा का प्रलाप कहा है परंतु दया नहीं तथा इसी सूत्र के अध्ययन ४ उ० १ की गाथा ७ वी में कहा है कि स्त्री साधु को बंधन करणा रूप करुणा शब्द कहै सू० (मण बधणं, हिंणेगेहि, कलुण, विणीय मुवगसित्ताणं इति)

अस्यार्थः—मन को बंधन करे ऐसे अनेक प्रकार प्रपच रूप जिमसे पुरुष को मोहरूप करुणा रस उपजे ऐसे शब्द विनय सहित साधु की समीप आके कहे हैं ॥ अब देखो यहां भी कलुण शब्द मोह का कहा है इत्यादि और भी बहुत सी जगे सिद्धात में करुणा रस को कालुण शब्द से कहा जो बुद्धि होगी तो समझ लेवेगा कि नसीथ का भी परमार्थ ऐसा ही भासे है कि दयामणी वृत्ति करके या गृहस्थ के मोह नीमते चतुष्पदादिक को नहीं खोले परंतु करुणा करके जीव बचाने से या गायादिक को लाय से निकालने में प्रायश्चित्त नहीं कहा है ॥

पूर्वपक्ष=नसीथजी के अर्थ में तो (कोलुण वडियाए) कहता अनुकंपा निमित्त ऐसा लिखा है.

उत्तरपक्ष-नसीथ के अर्थ में और निर्युक्ती में तो यह भी सफा लिखा है कि अग्नी आदिक का पलेवड़ा यानी लाय

लगी होवे या मरता होवे जद खोले तो दोप नहीं जेकर तुम को नसीथ के अर्थ की आस्ता है तो फिर नसीथ में खुलासा लिखा है कि अग्नी का पलेवडा यानी लाय लगी होवे या अति गाढ़े बंधन करी तडफडाता होवे या मरता होवे इत्यादि कारण से छोड़े तो दोप नहीं. यह अर्थ वहुत प्राचीन है कि जो भीष्मजी के वाप दादा का जन्म से ही पहले की पुरानी पड़तो में लिखा है तो फिर तुम लोग इस अर्थ को क्यों नहीं मानते हो.

पूर्व पक्ष–हम तो सूत्र से मिलता अर्थ मानते हैं.

उत्तर पक्ष–सिद्धांत से तो मरते जीव को वचाने का अर्थ अच्छी तरह से मिलता है परन्तु तुम्हारी विपरीत श्रद्धा का प्रताप है सो दया का कथन नहीं रुचता है और जेकर मरते जीव को वचाने का अर्थ नहीं मिलता है तो फिर तुम्हारे गुरु जी पाणी आदिक में से जीव मक्षी कीडी ऊदरा आदिक काढते है तो फिर वे तुम्हारी श्रद्धा से सूत्र से विपरीत चारी ठहरेगा क्योंकि जीव वचाने में पाप वताना और खुद जीव को यानी मक्षीकादिक को पाणी से काढ के कपडे में रखके सचेत करते हैं तो फिर तुम्हारी श्रद्धा के लेख से वे साधु कैसे ठहरे क्योंकि त्रस जीव को वाधे छोड़े जिसको तुम गृहस्थी तुल्य समझते हो और भ्रमविध्वंसन में लिखा भी है और फिर तुम्हारे गुरुजी त्रस जीव मक्षिकादिक को वाधते है छोडते है तो तुम्हारी श्रद्धा से ही तुम्हारे साधु गृहस्थी तुल्य वने. वाहरे वाह श्रद्धा पोता की कल्पना ही आप को नष्ट करने वाली भई है बुद्धिमानो लिखने का यह प्रयोजन है कि ऐसी मिथ्या श्रद्धा पर

भरोसा मत करो कि तुम सत्य सिद्धांत का लेख को समझ के दया में ही जिन धर्म की आस्ता रक्खो परन्तु ऐसा विपरीत सूत्र का अर्थ करके लोगों के हृदय की दया निकालने का उपाय मत रचो.

पूर्व पक्ष—नसीथजी की साक्षी गायों के बाड़े खोलने में नई हुई तो खैर परन्तु सूत्र आचारांग के दूसरे स्कंध के तीसरे अध्ययन में पहिले उद्देशा में कहा है कि साधू नाव में बैठा है, और नाव मे छिद्र हो के पाणी आवे उसको साधू ने देखा. अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधू को लोगों के प्रति उसका बतलाना वर्जित किया है नाव में बैठे साधू श्रावक तथा गृहस्थी डूबे. जिस अवसर में भी श्री भगवान् ने नाव में आते हुए पानी को साधू के लिये बतलाना वर्जित किया है तो विचारने की बात है कि सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को बचाने में भी धर्म नहीं कहा तो गायों आदि पशु जीवों को बाड़े में से छुडाने में तथा बाहिर निकालने में धर्म कैसे माना जावे इस विषय में हम ने आपको सूत्रों का पाठ दिखाया है. जैसे यदि आप धर्म मानते हो. उसका पाठ आपको दिखाना चाहिये साधू जो कार्य करता है. वह धर्म का कार्य है. उसमे पाप का अभाव है. और साधू के लिये जिस कार्य का निषेध है. वह पाप का कार्य है. यह पूर्व पक्षियों का लेख है.

इस का प्रत्युत्तर—हा हा हा रे मित्रो तुम्हारी दया को काटने की चेष्टा देख के बडा खेद उत्पन्न होता है कि हमारे जैनी नाम धारक मित्र सिद्धांतों का व्यर्थ नाम ले के दया धर्म को नष्ट करने की चेष्टा क्यों करते हैं क्योंकि जैन सिद्धात मे तो

एक छोटासा वे इन्द्रियादि खुद्र जीव वचाने मे भी महा लाभ कहा है. और तुम सूत्र का नाम लेके लिखते हो कि. सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर को वचाने में भी दया करने में धर्म नहीं इस से मकट हुवा कि ऐसी दया से उल्टी श्रद्धा इस आर्य मडल में तुम्हारे तेरेपंथियों के सिवाय किसी की नहीं. कि जो मनुष्यों को वचाने में पाप वतलावे हा हा हा क्या तुम्हारी मति थोडी-सी भी दया धर्म से अनुकूल नहीं रही. कि जिसमे ऐसा अजवगजव लिखते है सो ध्यान लगा के सुनो.

पूर्वपक्ष–हमने तो सिद्धात का पाठ की साक्षी वतलाई है. श्रीभगवान के आज्ञानुसार लिखने मे क्यों डरे—

उत्तरपक्ष—हे मित्रो अफसोस तो इसी वात का है कि सिद्धात का नाम ले के विपरीत प्ररूपणा करते हो जिससे जगत में जिन वाणी की घृणा यानी निंदा कराते हो. यह महा दूपित कर्म का कार्य है. हमको तो तुम्हारे दूपित कर्म का अफसोस आता है. जिससें भी ज्यादा श्री जिन वचनों का आता है. कि हे अल्पज्ञ मनुष्यों परमेश्वर के वचनों को विपरीत मरूपणा करके घृणा मत करावो.

पूर्वपक्ष–वतलाइये जो हमने आचाराग सूत्र की साक्षी वतलाई वह क्या विपरीत है.

उत्तरपक्ष–सुनिये २ जरा ध्यान दे के सुनिये कि तुम्हारा उत्तर अत्यन्तात्यन्त विपरीत है. क्योंकि प्रश्न तो गायों को लाय से वचाने का था. और उत्तर नाव के छिद्र में पानी आवे वह साधू नहीं दिखलावे. यह उत्तर विरुद्ध है क्योंकि आचाराग में तो साधू को नाव का पाणी इसलिये नहीं वताना

कि पाणी की हिंसा साधू को लागे. क्योंकि पानी आता हुवा देख के गृहस्थ उस पानी को उलेचनादि जल की हिंसा करे इसलिये नही बताना परन्तु सिद्धांत में ऐसा लेख नही कि मनुष्यों को बचाने में पाप लगे सो सिद्धांत आचारांग का पाठ लिखते है सो ध्यान लगा के सुनो—

सूत्रपाठ—जेभिखु, णावाए, उतिगेणं, उदयं, आसवमाणंये, हाए उवरु वरिणा वावं, कज्जलावेमाणं, पेहाएणो, परं, उवसंकमित्तु, एवं बूया, आउसंतो, गाहावइ, एयं, तेणावाए, उदयं, उत्तिगणे, आसवति, उवरूवरिवाणवा, कज्जलावे, तिए-तप्प गारंमणं वा, वायं, वाणो पुरओकट्टु, विहरेज्जा, इति ॥

अस्यार्थः—भिक्षु चारित्रि यो ना वाने विषे उत्तिग छिद्रे करि उदक पाणी आश्रव तो देखी तथा उपरि २ घणे पाणियें करीकज्जलावेमाणि के०'-नावा भराति देखी ने ते साधु परं गृहस्थ ने-उवसंकमित्तु के०' तेनी समीपी आवी एहवो न कहे अहो आयुष्मत गृहस्थ एताहारीनावाने छिद्रे उदकपाणी आवे छे तेणे आवते उपरि २ घणे घणे आवाते कज्जलावेइ. के०' भराई छे-तप्पगारं के०' एहवा भाव सहित मन अथवा वचन पुर ओकट्टु के०' आगली करी विचरे नहीं इति ॥ अध्ययन दूसरा उद्देश पहिला में ॥

अब देखो भाई सूत्र में तो यह कथन है कि नाव पाणी करके बहुत भरती होय तो उस नावपति नावडिया को साधू को नहीं कहना यह कथन है और तुमने आचाराग का नाम ले के लिख दिया कि नाव में छिद्र हो के पानी आवे उसको साधू ने देखा अन्य लोगों ने नहीं देखा तो साधू को उसका

बतलाना वर्जित किया है. अब देखो देखो कि तुम लोग सूत्र से और अर्थ से विरुद्ध अर्थ करने वाले हो कि नही. क्योंकि सूत्र में तो ऐसा नहीं कहा कि नाव का पानी साधू सिवाय अन्य नही देखे. ऐसा पाठ है ई नहीं. तथा साधु और नाव का मालिक सिवाय अन्य लोक श्रावक या दूसरे नाव में बैठे है. ऐसा भी सूत्र अर्थ टीका दीपिकादिक मे कहा भी नहीं तो तुम सिद्धात के वचनों से विरुद्ध असंभव बातें मन से उठा के आचाराग का नाम क्यों लिखा है. बस इसी से हम कहते हैं कि तुमने मूलपाठ तो सूत्र का लिखा नही. और भावार्थ को भी विपरीत मनमानी बातें भेल भाल के लिख दीया तिससे आचाराग की साक्षी देनी तुम्हारी विपरीत है. परंतु खैर अब भी समझ के मिथ्यावाद को छोड के विपरीतता मिटानी यह उत्तम काम है.

- पूर्वपक्ष--नाव में तो बहुत से मनुष्यों का बैठना संभव है.

उत्तरपक्ष-हा नाव में बहुत से मनुष्यों का बैठना संभव है परन्तु यह भी प्रत्यक्ष है कि कोई वक्त नाव का मालिक अपनी खाली नाव को भी कोई मौके पर ऊली तीर से पैली तीर ले जाता है. उस वक्त साधू को पैली तीर जाना है और नाव से जे ही जाती है तो साधू और नावाधिकारी यह दोनों बैठे ही है ऐसा भी प्रत्यक्ष होता है. कदाच ऐसा भी मानिये कि बहुत से मनुष्य नाव में बैठे है और साधू भी बैठा है. उस वक्त जल आता साधू नही बतावे. तो तुमने यह कैसे लिख दिया कि साधू देखे और दूसरा नहीं देखे यह भी सिद्धात में तो लिखा नही और अनुमान से ठहरता नहीं. क्योंकि सूत्र में

तो ऐसा लिखा है कि नाव घणा जल करके भरती होय यह मूल सिद्धांत में लिखा तो जरा अकल से तो विचारो कि वहुत घणा घणा जल से नाव भर जाय और साधू देखे दूसरे नहीं देखे तो क्या वह सर्व नाव में वैठने वाले अंधे थे जो साधू तो उस जल का प्रवाह को देखे और दूसरे नही देख सके क्या पानी में भी ऐसी कोई शक्ति है कि जो साधू के नजर आवे. और के नहीं आवे. वाहारे वाहा प्रत्यक्ष का भी तुमको ज्ञान नही तो फिर सिद्धात से विपरीत लेख लिख के भव परंपरा क्यों वंधाते हो. परंतु हे मित्रो तुम क्या करो तुम्हारे गुरु भीपमजी ने ऐसाही सिद्धांत से विरुद्ध अनुकंपा की छठी ढाल की १८ मी गाथा में कथन किया है

ढाल—साधू वैठा नाव माहीं आई नावडिये नाव चलाई. नावा फूटी माहे आवे पाणी साधू देखी लोगा नाहीं जाणी ॥ १८ ॥ अव देखो कि तुम्हारा गुरुजी ने ही ऐसी विरुद्ध जोड़ करी है परन्तु इतना तो विचारो कि सिद्धांत में तो किसी ठिकाने नहीं कहा है. और तुम मतपक्ष के लिये कैसे कहते हो तथा इतना ही विचार तुमको नहीं आता कि साधू देखे. और नहीं देखे तो औरों के नेत्र कहां गये. क्योंकि जल का किंचित आना भी सूत्र में नही कहा है कि जो साधू के ही निगाह में आवे. सूत्र में तो उपरा उपरिनाव भराये तो वैठने वाला क्यों कर नहीं देखे और नाव जल से डूवे ऐसा तुम्हारे गुरुजी ने अनुकंपा की छठी ढाल की १९ मी गाथा में माना है.

गाथा—आप डूवे अनेरा प्राणी अणुकंपा किणरी नहीं आणी. वतावे तो त्रिग्तां में भंगो जिणरो साखी आचारंगो १९

देखो यह तुम्हारे गुरुजी का लेख है कि नाव जल से डूबे. आहा हा हा आश्चर्य है देखो गुरुजी और चेलाजी कैसे विपरीत लेख लिखते है कि नाव डूबे इतना जल नाव में आया तो भी साधू तो जल को देखे. और गृहस्थ बैठने वाले जल को नहीं देखे. अहो २ अफसोस की बात है कि एक थोड़ासा समझदार भी समझ के कहसके कि अत्यन्त जल से नाव भराय तो बैठने वाले कैसे नहीं देखे अवश्य देखेही. परन्तु जिस बात को किंचित समझदार समझसके उसको भी तेरे पंथी साधु श्रावक नहीं समझे. और अनुचित लेख लिखते नहीं डरे तो निश्चय हुवा कि मोहनी कर्म का स्वभाव ऐसा ही है.

पूर्व पक्ष—कोई काल में नाव का मालिक कोई कार्य निमित खाली नाव को लेके ऊली तीर से पैली तीर जावें उस वक्त में साधू को भी पैली तीर जाना हुवा तब नाव में बैठ गए. नाव फूटी हुई उसमें जल भर आया उस वक्त नावडिया तो नाव के खेवणे के कार्य से जल नहीं देखे परन्तु साधू देखे तो उस नावड़िये को बचाने को जल नाव में आवे है. नाव डूब जायगी ऐसा क्यों न कहे.

उत्तरपक्ष—हे मित्र नावड़िये को बचाने मे पाप नहीं है. परन्तु साधु को जल की हिंसा करणी नहीं. करते को भला जाणना नहीं ऐसा नियम यानी त्याग साधू को है तिससे जो नावड़िये को पानी नाव में आना बतावे तो वह नाववान् पुरुष जल को उलेचनादि करके हिंसा करे और जो साधू जल को बतावे तो मन वचन से जल की हिंसा लागे इसवास्ते साधू का कल्प नहीं सो नहीं बतावे

पूर्वपक्ष—साधू को पानी की हिंसा कहां वर्जी है.

उत्तर पक्ष—सूत्र दशवीकालिक का छठा अध्ययन की ३० मी गाथा मे पाठ है सो लिखते है.

सूत्र गाथा—आउ, कायं, नहिंसंति, मणसा, वयसा, कायसा, तिविहेण, करण, जोयेणं, संजया, सु, समाहिया, ॥ इति ॥ ३० ॥

अव देखो कि सिद्धांत में कहा कि अपकाय की हिंसा तीन करण तीन जोग करके करणी नहीं तिसवास्ते साधू नाव का पानी नही वतावे. जल की हिंसा होवे उस से नही वतावे परन्तु श्री भगवान ने ऐसा नही कहा कि नाववान् पुरुप वच जावे इस वास्ते जल नही वतावे यह कहना तो तुम्हारा है. परन्तु परमेश्वर का नहीं. नाववान को तो वचाने का धर्म है परन्तु जल हिंसा का त्याग का भंग होवे तिस से जल वताने का साधू का कल्प नही.

पूर्वपक्ष—थोडी हिंसा जल की होवे परन्तु पंचेन्द्री जीव मनुष्य का शरीर वच जावे तो फिर थोडा पाप और धर्म वहुत होवे तो यह कार्य साधू क्यों नही करे.

उत्तरपक्ष—हे भाई तुम्हारे को पूरा जाणपणा नहीं होने से प्रश्न उपजा है. परन्तु यह तुम नहीं समझते हो कि ऐसे तो कई कार्य हैं कि जिसमें थोड़ासा पाप और धर्म वहुत है. तो भी साधू का कल्प नहीं सो सुनिये हम थोड़े से वताते हैं. कोई गृहस्थ दीक्षा लेने की अर्ज करे कि मैं दीक्षा लेऊं परन्तु तुम मेरे कचे पाणी से भीजे हुए हाथ से रोटी आदिक एकवार वहिर लो यानी ले लेवो तो मै दीक्षा ले लेऊ तो कहो भाई

दीक्षा देने में तो महालाभ है. और कच्चे पाणी से भीजे हाथ से लेने में साधू को दोप है. तो दीक्षा का उपकार के वास्ते कच्चा पाणी का हाथ से क्यों नही वेरे. क्या दीक्षा देने में पाप है-कि कच्चा पाणी से भी जे हाथ से वैरणे में पाप है।

पूर्वपक्ष-पाप तो कच्चा पाणी से भी जे हाथ से लेने का है और दीक्षा देने में तो एकांत धर्म है.

उत्तरपक्ष-तो यह थोड़ासा दोप लगा के दीक्षा देने का महान उपकार साधू क्यों नहीं करे.

पूर्वपक्ष-साधू को कच्चे पाणी से भीजे हुए हाथ से वैरणे के यानी अन्नादिक लेने के त्याग है सो त्याग तोडने का कल्प नहीं. कल्प तोडे तो प्रायश्चित्त है इससे कची पानी से भीजे हुए हाथ से साधू वैर के दीक्षा देने का काम नहीं करते कल्प नहीं है इस से.

उत्तरपक्ष-तो हे मित्र इस तरह समझ लेवो कि नाव का पानी वताने का साधू का कल्प नहीं परन्तु नावडिये को वचाने का तो धर्म ही है परन्तु पूर्व प्रतिज्ञा जल हिंसा का त्याग होने से जल नहीं वताते है जैसे जल से भीजे हुए हाथ से लेने में पाप है परन्तु-दीक्षा देने में धर्म है तैसे नाव का जल वताने में पाप परन्तु नावडिये की दया करने में धर्म. जैसे जल से भीजे हुए हाथ से आहार ले के दीक्षा देने का कल्प नहीं. क्योंकि धर्माधर्म शामिल मिश्रपक्ष होने से साधू का तो एकांत धर्मपक्ष है इससे कल्प नहीं वैसे ही नावडिये को नाव का पानी वताके उसको वचाने का साधू का कल्प नहीं. धर्माधर्म सामिल रूप मिश्रपक्ष होने से तथा कोई पुरुष ने मास नहीं भक्षण करने का

नियम लिया है और कोई दुष्ट बादशाह एक मनुष्य को वे गुने मार रहा है अब वह दयावान् मास का त्यागी बादशाह से कहे कि तुम इस को मत मारो तब बादशाह कहे कि जेकर तुम एक ग्रास मांस खालेवो तो हम इस मनुष्य को नहीं मारें. तो कहो भाई वह मांस का त्यागी एक ग्रास मांस खा के एक मनुष्य को बचावे अपितु नहीं बचावे क्योंकि मांस नहीं खाने का नियम होने से परन्तु मनुष्य को बचाने में तो बहुत उपकार समझता है. तैसे ही मुनि जल वता के नावड़िये को नहीं बचा सक्ते हैं जल हिंसा का त्याग होने से परन्तु नावड़िये को बचाने का तो धर्म ही है.

पूर्वपक्ष—हम तो मनुष्य को बचाने में धर्म नहीं समझते किन्तु पाप मानते हैं तो फिर यह दृष्टांत की युक्ति हमारे लिये देना ठीक नहीं.

उत्तरपक्ष—हे भाई ऐसा दया से तुम्हारा उलटा कथन क्यों हुवा कि मनुष्य को बचाने में भी धर्म नहीं किन्तु पाप होता है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरु भीषमजी ने अनुकंपा की छठी ढाल में की चौथी गाथा में ऐसा कहा है.

गाथा—(गृहस्थी के लागी लायो घरबारे निकलियो न जायो. बलता जीव बिल बिल बोले साधू जाय किवाड़ न खोले).

अर्थः—कोई गृहस्थ के घर में लाय लागी और बाहिर से किवाड जड़े हुए है उस वक्त गृहस्थी के बेटा बेटी आदि रोवे रुदन करे तो भी साधू किवाड़ नहीं खोले. तत्व यह है कि साधू नहीं खोले. इससे श्रावक को भी नहीं खोलना खोले तो श्रावक को भी पाप होवे. जिससे पापी कहिये. यह हमारे गुरु भीषमजी का कहना है इससे हम भी कहते हैं.

उत्तरपक्ष-हाय हाय ऐसी श्रद्धा का अफसोस कहां तक किया जाय. अब हम हमारे उत्तर का प्रत्युत्तर करके अगाड़ी सूत्र के मूल पाठ से जीव बचाने में धर्म है ऐसा खुलासा लिखेंगे तिस से जो भव्य निर्पक्ष होवेगा वह समझ लेवेगा हाल में यहा पर जो तुमने मनुष्य को बचाने में धर्म नहीं माना तो हमने समझ लिया कि तुम्हारे को तुम्हारे गुरु भीखमजी का कथन से जीव दया की बात नहीं गमती है. परन्तु हम एक दूसरा दृष्टांत ऊपर कहचुके हैं कि कच्चा पानी का भीजा हाथ से अन्न लेके मुनि दीक्षा नहीं देते हैं वैसे ही समझ लेवो कि दीक्षा देना तो धर्म में है परन्तु सचित्त जल के भीजे हाथ से अन्न लेके दीक्षा नहीं देते हैं जल हिंसा का मुनि के नियम होने से वैसे ही नावडिये को तो बचाने का धर्म है परन्तु जल की हिंसा का नियम टूटने से मुनि नाव का पानी नहीं बता सकते है. अब विचारो कि तुम्हारे आचारांग सूत्र की साक्षी देना निरर्थक है और भ्रमरूप है क्योंकि सूत्र में तो मनुष्य को बचाने का पाप बताया ही नहीं सूत्र में तो साधू को जल की हिंसा का त्याग है इससे मौन रखणी बताई है सो हमने सूत्र पाठ से ऊपर लिख दिया है सो गायों के बाड़े का प्रश्न में साधू को जल हिंसा नहीं करणे का या जल नहीं बताने का उत्तर देना अत्यन्त विरुद्ध है. अरे मित्रो इतना तो तुम भी समझते हो कि जल की हिंसा का त्याग है कच्चा जल क्योंकर मुनि बतावे. यह जाणते बीणते भी तुमको अनुचित उत्तर देना योग्य नहीं था. खैर होना था सो हो चुका अब भी जीन वचन की आस्ताला के मिथ्या कथन को दूर करो और प्रश्नोत्तर पुस्तक का अधकार फैलाया उससे निवृत्त होवो

पूर्वपक्ष—हमारी आचाराग की साक्षी नाव के पानी वताने की जलता हुवा गायों के वाड़े को खोलने के लिये ठीक नहीं तो खैर परन्तु हमने सूत्र उत्तराध्ययन के ९ मे अध्ययन की साक्षी लिखी है कि निमिराय ऋषि को चलायमान करने के लिये ब्राह्मण का रूप धारन कर इन्द्र ने आकर कहा कि तेरी मिथिलानगरी और अन्तःपुर जनाना अग्नि से भस्म होता है और तेरी दृष्टि में अमृत है सो एक वेर तेरे देखने से नगरी और अन्तःपुर वच सक्ते हैं तिसपर निमिराय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं जलता. मेरे तो ज्ञानदर्शन चारित्र है सो मेरे पास है. ऐसे कहकर चुप होगए नगरी के सामने नही देखा. किंचित् भी राग भाव नही लाये यह साक्षी हमने दी है. वो तो ठीक है कि नही है—

उत्तरपक्ष—हे मित्र यह साक्षी तो विलकुल ठीक नहीं क्यों-कि सूत्रों का नाम ले के सूत्रों से भगवान् के वचनों से विपरीत प्ररूपणा करते हो. इससे

पूर्वपक्ष—क्या हमने साक्षी वतलाई वह उत्तराध्ययन में नही है.

उत्तरपक्ष—हे भाई आखों में अमृत है सो एक वेर तेरे देखने से नगरी और अन्तःपुर वच सकते हैं. यह तुम्हारा कहना मूल सूत्र में अर्थ में टीका टवा में कहां भी नहीं है फक्त तेरेपंथी साधू श्रावकों की कपोल कल्पना के सिवाय कहीं भी नहीं है. हा हाहा तुम लोगों को क्या सूझा है. कि सिद्धात में नहीं उस लेख को नहीं है तो भी गुरुजी की वात पर हठ करके लिखते छापते नहीं डारते हो. इतना भी खयाल तुम

लोगों को नहीं है कि गुरुजी को सच्चा ठहराने को सिद्धांत की झूठी साक्षी लिखेंगे तो पीछे कोई पूछने वाला मिलेगा. उस वक्त क्या उत्तर देवेंगे इतना भी तुमको मालूम नहीं पडे तो निश्चय होता है कि फक्त पक्ष के मारे टेक में कल्पित गोले चलाते नहीं डरते हो.

पूर्वपक्ष–जेकर आंख में अमृत का झरना और एक वक्त देखने से अन्तःपुर का वचना सिद्धात में नहीं होता तो हमारे गुरुजी ने हमको यह वात कैसे सिखलाई क्या वह सिद्धात नहीं वाचते है.

उत्तरपक्ष–हे भाई गुरुजी तो मत की ममता में बंध रहे है और तुम सरीसे अल्पज्ञ को अपने मत की ममता यानी हठ के विषे नाधने के वास्ते सूत्र की मिथ्या वात न कहे तो तुम सरीसे भाई उनके मत में कैसे बंधो वस इसी कारण से कल्पित सूत्र की वातों की साक्षी तुमको सिखलाते हैं और तुम उनको सत्य मान के वादी होजाते हो.

पूर्वपक्ष–अच्छा गुरुजी ने कल्पित साक्षी वतलाई तो सूत्र तो सब एक है जो सूत्र में सत्य होवे वो आप वतलाइये–

उत्तरपक्ष–हा सूत्र एक है हम मूलपाठ लिख के वतलाते है ध्यान दे के पक्षपात मत्सर भाव छोड के सुनिये

सूत्र–एस, अग्गी, य, वाऊ य, एयं, डज्झइ, मंदिरं, भयव, अंतेउरं, तेणं, कीसणं, नाव, पिखह, ॥ १२ ॥

अस्यार्थः–(एस) के०' ए मत्यक्ष (अग्गीय,वाऊय) के०' अग्नि अने वायरे करि (एय, डज्झइ, मंदिर) के०' ए मत्यक्ष तुझ संवधियो वले छे मंदर घर (भयव अंतउरंतेण) के०' हे

भगवंत अंते उरताहरूं (फीसयं, नात्र पिखह) के०' किसा भणी साहमो न थी जो तो तुम्हने तो जिम ज्ञानादिक राखवा तिम अन्तःपुर पिणरा खउं इत्यर्थः ॥

अब देखो सूत्र में तो इन्द्र ने परीक्षा निमित्त कहा कि यह तुम्हारे घर और अंतःपुर बलते है सो तुम इनके मालिक हो सो जैसे ज्ञानादिक तुम्हारे हैं तिनकी रक्षा करते हो तो ऐसेही अंतः पुरादिक भी आप के हैं सो इनकी रक्षा करो यदि इनको अपना समझ के इनकी रक्षा करों. क्योंकि अपनी वस्तु है उसको राखणी चाहिये. ज्ञानादिक के दृष्टांत ते इस प्रश्न से अंतःपुर और महल मकान पर मोह है कि नही. ऐसी परीक्षा करने को कहा कि इनकी तुम रक्षा करो. परंतु ऐसा तो नहीं कहा कि तुम्हारी आंखों में अमृत भरे है तुम्हारे एकवार देखने से यह सब बचते है यह तुमने सूत्र से अतिरिक्त प्ररूपणा क्यों करी सूत्र में तो करुणा का कथन नहीं है सूत्र में तो अपणायत पणे का कथन है यानी (भयवं, अंतेउरं, तेणं,) हे भगवंत तुम्हारे अंतेउर है, इससे इनकी रक्षा करो यह कथन है जिसपर निमिराय ऋषि ने उत्तर दिया कि मेरा तो कुछ भी नहीं बले मेरे तो ज्ञानादिक गुण है शेष अंतःपुरादिक मेरे नहीं. यह उत्तर निमीराय ऋषि ने दिया. परंतु जेकर तुम्हारे सरीसी श्रद्धा निमीराय ऋषीश्वर की होती कि जीव बचाने में पाप है तो फिर निमीराय ऋषि इन्द्र को ऐसे कहते कि मेरे को जीव बचाने नहीं कल्पे. में तो किसी को जिवाना नहीं चाहता हूं. सो ऐसा तो कहा नहीं वहां तो प्रश्न ही अंतःपुरादिक का अपणायत रूप मोह की पहिचान का था जिसका उत्तर में निमीराय ऋषीश्वर ने अपना अंतःपुरादिक से

निर्मोहत्वपहोरूप अपणायत का अभाव दिखलाया भला यह तो प्रत्यक्ष है कि लॉय लगी होवे तो उसमें साधू क्या करे क्योंकि साधू का तो अग्नि बुझाने का जल सींचने का कल्प नहीं. वह कैसे बचा सके वह तो नाव का पानी नहीं दिखलाने समान यहां भी समझना चाहिये. जैसे जल की हिंसा खातिर जल नहीं बतावे. तैसे अग्नि बुझा के जीव नहीं बचा सके.

पूर्वपक्ष–सूत्र में सामने जोने का तो कहा है इससे अनुमान होता है कि उनकी आखों में अमृत है जब सामने देखने का कहा है. और उससे रक्षा भी होती है तो फिर हमारी साक्षी झूठी कैसे हुई.

उत्तरपक्ष–हे भाई सामने जोना नाम अंतःपुर की रक्षा करने का उपाय करो ऐसा अर्थ टीका में खुलासा है परंतु सामने जोना अमृत आखों में है उससे बलते रह जावे ऐसा अच्छता अनुमान की तुम क्योंकर कल्पना करते हो तथा अवचूरी में भी लिखते हैं कि जैसे आत्मा ठीक है ज्ञानादिक की रक्षा करनी वैसेही अंतःपुर की भी करनी ॥

तथाच अवचूरी–यद्यात्मनः स्वंतद्रक्षणीयं यथा ज्ञानादि स्वं चेदं भवतो अंतःपुर मित्यादि भाव्वत् ॥ १२ ॥

अर्थः–अपणापणा उसकी रक्षा करना जैसा ज्ञानादिक जो अपणा है वैसे अंतःपुर भी अपना है इत्यर्थः

अब देखो अवचूरी में भी ऐसा लिखा है कि जैसे आत्मा ठीक है ज्ञानादिक की रक्षा करनी वैसे अंतःपुर भी तुम्हारे है इनकी भी रक्षा करनी ऐसा कहा परतु अमृत झरे सो सामा देखो यह कल्पना तो तुमही करते हो तथा टीका में भी कहा कि जैसे ज्ञाना-

दिक का देखना वैसे अंतःपुर को भी देखना चाहिये. ज्ञान का क्या देखना अर्थात् उसकी रचा का पठन पाठन रूप उपाय करना वैसेही अंतःपुर को क्या देखना कि उनको जलादि करके अग्नि बुझानादिक उपायों से राखना तथा देखना नाम उसका यत्न करने का उद्यम करना ऐसा सूत्र उत्तराध्ययन का १९ मा अध्ययन की गाथा ३८ मी में कहा कि (अहीवेगतं, दिट्ठीए, चारित्त, पुत्तदुच्चरे) अस्यार्थः सर्पनी परे एकांत दृष्टि इ एकाग्र चालनु छै जी हा एहवुं चारित्र है पुत्र दुचर पालीवो दोहीलो. इत्यर्थः ॥

ए देखो मृगापुत्र को माता ने कहा कि हे पुत्र सर्प की नाईं एकाग्र एक दृष्टि से संयम का पालना है तो यहां भी वही दृष्टि है कि संसार के सर्व भाव छोड के मोक्ष का ही साधन करना संयम में है तथा टीका में भी ऐसा ही लिखा है

टीका-तथा साधू मार्गे साधूश्चरेत् मोक्षमार्गे दृष्टिं विधाय चरेत्।

अर्थ-साधू मार्ग में साधू विचरे मोक्ष मार्ग में दृष्टि देकर विचरे इति.

अब जरा आख खोल के देखो कि जैसे सर्प एक दृष्टि से चले वैसे ही साधू मोक्षमार्ग में दृष्टि देकर चले यह टीकाकार प्रकट लिखते है तो कहो मोक्षमार्ग में दृष्टि क्या आंखों का देखना है कि ज्ञान दृष्टि से मुक्तिमार्ग का ही उद्यम करना परन्तु संसार का नहीं बस समझ लेवो कि जैसे दृष्टि साधू की क्या है कि एकांत मोक्ष का ही उद्यम करना अन्य नहीं वैसे ही नमीरायजी को देखना नाम अंतःपुरादिक की रक्षा निमित्त अग्नि बुझानादिक उद्यम करने का कहा परन्तु आंख से देखने

का नहीं तथा सूत्र आचारांग स्कंध पहिला अध्ययन ५ मे में कहा कि (रागप्पमुहे) एक मोक्ष के विषे दत्त दृष्टि देखो यहां भी साधु को कहो कि एक मोक्ष में ही जिन्होंने दृष्टि यानी नजर दी है तो कहा क्या मोक्ष के सामी आंख फाड़ के देखरहे है कि मोक्ष का उपाय ज्ञानादिक का साधन कररहे है तो आख का देखना तो किसी तरह सिद्ध नहीं अपितु ज्ञानादिक का आचार चारित्र मोक्ष के साधन करना वोही मोक्ष की दृष्टि यानी देखना है तथाच टीका में भी कहा है.

टीका-(रागप्पमुहे) एको मोक्षो अशेष मलकलक रहित त्वात् संयमो वा राग द्वेष रहित त्वातन्न मगतं मुखं यस्यस तथा मोक्षे तदुपाये वा दत्तैकदृष्टिः ।

अर्थ-एक मोक्ष संपूर्ण पाप और कलंक इनसे रहित होने से अथवा सयम राग द्वेष इनसे रहित होने से तिससे दूर नहीं हुवा है मुख जिसका तैसेही मोक्ष में तथा मोक्ष का उपाय मे दी है एक दृष्टि जिसने इत्यर्थः ॥

अब देखो जरा ज्ञान नेत्र खोल के यहां भी कहा है कि मोक्ष के सामने है मुख जिस साधू का तो विचारो कि मोक्ष के सामे मुख कहा तो क्या जैसे दूज के चन्द्र देखनेवत् मुख मोक्ष के सामे करे कि संयम पालने का यत्न करे तिससे यहा टीका में भी कहा कि मोक्ष का उपाय में दीनी है नजर जिन्हों ने वैसेही समझ लेवो कि इन्द्र का कहना निमिराय ऋषीश्वर से यह है कि आप इन अतःपुर के मालिक हो इससे इनको देखो यानी रक्षा का उपाय करो तथा प्रत्यक्ष में भी देखो कि कोई पुत्रादिक अपने घर की सभाल नहीं करे उस वक्त उन

को स्वजन परजन कहते हैं कि देखो फलाने पुरुष की अपने घर सामे नजर नहीं है. तो क्या इतनी भी तुम्हारे में समझ नहीं कि यह तो प्रत्यक्ष दीखता है कि घर पर नजर नहीं उस का मतलब यह है कि घर का काम को नहीं करता है. बस अब अच्छी तरह से विचार लेवो कि सूत्र से अर्थ से टीका से और दीपिका से और प्रत्यक्ष लोकोक्ति से तुम्हारा कहना देखना नाम आखों में अमृत झरता है. और एकवार देखने से रक्षा होती है यह बिलकुल कपोल कल्पना सिद्धांत से विरुद्ध है और सत्य नहीं.

पूर्वपक्ष—आखों में अमृत झरना कहां भी लेख नहीं है तो खैर हम गुरुजी से समझेंगे परंतु निमिरायजी ने अंतःपुर आदि की रक्षा क्यों नहीं किया.

उत्तरपक्ष—हे मित्र यहां तो निमिरायजी की इन्द्र महाराज ने मोहरूप अपनायत की परीक्षा करी कि इनने संयम तो लिया. परन्तु अंतःपुर से अपना अपनायत यानी माल की पणे रूप मोह अलग हुवा या नहीं तिसकी परीक्षा वास्ते इन्द्र ने यह प्रश्न किया कि तुम इस अंतःपुर के मालिक हो. इसलिये अग्नि से बचावो तिसपर निमिराय ऋषी ने कहा कि मेरा अंतःपुरादिक नहीं है मेरा तो ज्ञानादिक गुण है. इससे इन्द्र को विदित होगया कि इस मुनि का अंतःपुर से रागभाव अपणायत पणा नहीं रहा. परन्तु जीव मरते हुये को बचाने का तो यहा प्रश्न नहीं किन्तु अपणायत का है और यह भी तुम्हारी कम समझ का खयाल है कि गायो को बलते वाड़े से किंवाड खोल के कोई दयावान् निकाले उस निकालने वाले

को पाप हुवा कहते हो सो सूत्र का लेख दिखलावो उस प्रश्न के उत्तर में यह लिखना कि निमिराय मुनिजी ने अग्नि बुझा के अंतःपुर की रक्षा नहीं करी तिससे गायों बचाने में हम पाप कहते हैं तो क्या तुम को इतना ही ज्ञान नहीं जो कोई दयावान् वाड़ा खोल के मरती हुई गायों को वाहिर निकाले तिसपर मुनिराज को अग्नि बुझाने का उत्तर देना तो यह अत्यन्त अनुचित है क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे.

पूर्वपक्ष–निमिरायजी ने संयम इन्द्र ने प्रश्न किये तिसके पहिले लिया कि पीछे.

उत्तरपक्ष–तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो पहिले ही माना है. सो लिखते हैं अनुकंपा की ढाल दूजी गाथा ११मी में (नमीराय ऋषि चारित्त लिया ते तो वाग में उतरयो आयरे इन्द्र आयो तिणने परख्वा ते तो किण विध वोल्यो वायरे ११ जीवा मोह अणुकंपा न कीजिये थारी अगन करी मिथिलोवळ एकता स्युं सामो जोयरे अंतःपुर वलतां मेलसी आतो वात सिरे नहीं तोयरेजीवा १२ सुख वपरायो सारालोक में विलखा देख पुत्र रवरे तो तुं दया पालण ने उठीयो तो तु कर यारायवरे जीवा १३

अब देखो तुम्हारे मत के निकालने वाले तुम्हारे गुरु भीषमजी ने यह गाथा रची तिसमें नमीराय ऋषीश्वर को दीक्षा लिया वाद इन्द्र ने प्रश्न पूछे माने है (और जो तू दया पालण ने ऊठियो) इत्यादिक कितनाक विषय मतपक्ष के लिये हुए सिद्धांत से अतिरिक्त यानी मन के मते ज्यादा कहा परन्तु आखों में अमृत है जिसमें एकवार देखने से अतःपुरादिक

बच सके ऐसा मिथ्या कथन तो उन्होंने भी नहीं किया तथा भ्रम विध्वंसन के पत्र ५२ मा पे जीतमलजी ने लिखा कि जैसे ज्ञानादिक राखणा वैसे अंतःपुरादिक भी राखना चाहिये तो अब विचारो कि हमारा गायों को मरती हुई को दयावान् बचावे तिसमें तुम पाप कहते हो सो सूत्र का लेख दिखलावो ऐसा प्रश्न हमारा था तिसका उत्तर में तुमने लिखा कि नमीराय जी साधू ने शहर बलते हुए को अग्नि बुझा के नहीं राखा. तो यह तुम्हारा उत्तर बिल्कुल बिना विचार का सिद्ध हुवा क्योंकि मुनि अग्नि को कैसे बुझावे मुनि को अग्नि बुझाने का त्याग है इससे और तुम्हारा आखों में अमृत भरने का लिखना और एकबार देखने से सर्व की रक्षा होती है ऐसा लिखने से तो तुम्हारे गुरु भीषमजी और जीतमलजी से भी तुम्हारी श्रद्धा सूत्र से विपरीत हुई क्योंकि भीषमजी जीतमलजी ने तो ऐसा नहीं लिखा कि नमिराय की आखों में अमृत था. और एकबार देखने से सर्व की रक्षा होती है तो तुमने यह बात कैसे लिखदी

पूर्वपक्ष–हम को तो हमारे पूज्य डालचन्दजी ने धारणा कराई है.

उत्तरपक्ष–तो हे मित्रो निश्चय हुवा कि तुम्हारे गुरु की परंपरा सिद्धांत से विपरीत प्ररूपणा बढ़ती जाती है. क्योंकि जो बात भीषमजी जीतमलजी ने विपरीत नहीं लिखी वह उत्तराध्ययनजी का नवमे अध्ययन का नाम लेके तुम्हारे गुरु डालचन्दजी ने तुमको सिखलाई तो निश्चय हुवा कि भीषमजी जीतमलजी की श्रद्धा से भी डालचंदजी की श्रद्धा अति विपरीत हुई. कि जिसे परमेश्वर के वचनों से अतिरिक्त प्ररूपणा

करने की कमर बांधी तो हे भोले भाई ऐसे सिद्धांत से विपरीत प्ररूपणा करके अपने मत को सच्चा करने को चाहते हो परन्तु विद्वानों के सामने तुम्हारा मत सत्य कभी नहीं ठहरता है. किन्तु सत्य होगा सो ही ठहरेगा. तो तुम्हारी नसीथ की आचारांग की उत्तराध्ययन की तीनों की साक्षी गाथो को बचाने के निषेध में लिखी वह सर्व सूत्र से विपरीत और तुम को ही असत्यवादी ठहरानेवाली हुई.

पूर्वपक्ष—हमारी साक्षी सत्य नहीं हुई तो खैर हमने यह भी लिखा है कि जो आप जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो सूत्र का पाठ दिखाइये.

उत्तरपक्ष—हा पाठ सिद्धात में बहुत ठिकाने में है सो हम थोड़े से लिख के बताते हैं सूत्र उत्तराध्ययन का अध्ययन २२ वें में कथन है कि श्री नेमीनाथजी की इच्छानुसार सारथी ने जीवों को छोड दिये. तब नेमीनाथजी ने सारथी को जीवों को बचाने का इनाम दिया. तो प्रकट सूत्र के प्रमाण से जीव बचाना अभय दान में है. और अभयदान देने से जीव संसार को पडत करके मोक्ष गति का फल को प्राप्त होता है तिसी हेतु से श्रीनेमीनाथजी ने जीव बचाने का इनाम दिया है.

पूर्वपक्ष—यहा तो हमारे गुरु जीतमलजी का कहना है कि नेमीनाथजी तोरण से पीछे फिरे सो तो अपना पाप टालने को पीछे फिरे. परन्तु पशु जीव को बचाने वास्ते नहीं फिरे ऐसा हमारे गुरुजी कृत भ्रम विध्वसन का पत्र ४७ वा पर लेख है. सो वह यह है तथाच (केतला एक कहे असजती री जीवणो वाछया धर्म नही. तो नेमनाथजी जीवारे हित वाछयो इम कयो

त्यां जीवांरे मुक्ति रो हेत तो थयो नहीं ते माटे जीवां रो जीवणो वांछ्यो ए जीवा रो हित छे इम कहे. वली (सणु को से जीव हैउ) ए पाठ रो उंधो अर्थ करी जीवां रो हे तथा पे छें. साणू को से कहेतां अनुकंपा सहित) जी येहिउ, केता जीवां रो हेत वांछ्यो ते जीवां रो जीवणो वाछ्यो. इम कहे ते झूठरा बोल्लणहार छै एतो विपरीत अर्थ करे छै त्यां जीवां रे जीवण रे अर्थे तो नेमीनाथजी पाछा फिरया नही. एतो जीवांरी अनुकंपा कही तेनो न्याव इम छैं जे म्हारा व्यावरे वास्ते यां जीवा ने हणे तो मोने यह कार्य करवो नहीं इम विचारी पाछा फिरथा एतो अनुकपा निरवद्य छै अने जीवरो हेत वाछ्यों सूत्र नो नाम लेई कहे ते सिद्धांतरा अजाण छै अने केतला एक टवा में कह्यौ सकल जीवांनां हितकारी तेहनो न्याय इम प्रथम तो अव चूरी पाइ टीका में तथा दीपिका में यह अर्थ नथी ते माटे एटवो तें टी का नो नथी. इत्यादि तथा पत्र ४८ वां पर लिखा कि-(एकारज मोने परलोक में कल्याणकारी भलो नहीं इम विचारी पाछा फिरया पिण जीवाने छोडाय चाल्या नही) इति.

यह हमारा गुरु जीतमलजी का कहना है तिससे हम श्रद्धते है कि श्री उत्तराध्ययनजी का बाईसवां अध्ययन की दीपिका पाई टीका अवचूरी में श्री नेमीनाथजी का जीवों पर हित करना या पशुओं को छोडाने का कथन नही होगा जेकर होवे तो हम को आप मूल सूत्र दीपिका या पाई टीका या अवचूरी का लेख दिखलाओ परन्तु टवार्थ तो हमारे गुरुजी ने जीवों के हित विषय में दीपिकानुसार ठीक नहीं माना ताके उसको छोड के प्रमाण बताइये.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुम्हारे गुरु जीतमलजी ने तो ऐसा कहा है कि जैसे कोई हाथ से सूर्य को ढाक के कहे कि सूर्य आकाश में है ई नहीं तो ऐसी चेष्टा से सूर्य नेत्रवालों को नजर आता बंध नहीं होता है. तैसे ही श्री नेमीनाथजी महाराज का जीवों पर हित करना सूत्र का पाठ दीपिका में है और नेमीनाथजी की इच्छा माफिक सारथी ने पशु जीवों को छोड दिया तिसका इनाम श्री नेमीनाथजी ने सारथी को दिया. तिसका अधिकार सूत्र का मूल पाठ दीपिका अवचूरी और पाई टीका में खुलासावार है ता पि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी अपनी स्वकपोल कल्पित चेष्टा से सूत्र का कथन को छिपाते हैं कि उत्तराध्ययन का बाईसवा अध्ययन की दीपिका में (जीयेहेउ) का अर्थ जीवों का हित वंछने का नहीं है सो कहते है और लिखते है कि श्री नेमीनाथजी ने जीव छुड़ाया चाल्या नहीं तो ऐसा जीतमलजी की स्वकपोल कल्पना से सूत्र का कथन ज्ञान नेत्र वालों से छिपा नहीं रहता है सो अब हम मूल सूत्र का पाठ और दीपिका अवचूरी पाइ टीका काही ज प्रमाण प्रकट वतलाते है कि श्री नेमीनाथजी महाराज की इच्छानुसार सारथी ने पशु आदिक जीवों को छोड दिये. तब श्री नेमीनाथजी ने सारथी को इनाम दिया वह सूत्र का पाठ लिखते हैं सो हे भव्यों एकाग्र चित्त से विचार के सत्यपक्ष का ग्रहण करना

सूत्रपाठ–अ, हसो, तत्थ, निज्जंतो, दिस्स, पाणे, भयद्दुये, वाडेहिं, पिंजरेहि, च, सनिरुद्धे, सदुक्खिए, ॥ १४ ॥ जीवियंत, तुसपत्ते, मसट्ठा, भखियव्वए, पासित्ता, से, महापणे, सारहिं इणमव्वइ ॥ १५ ॥ कस्सट्ठा, इमेपाणा, एएसव्वे, सुहेसिणे, वा-

डेहिं, पंजरेहिं, च, सन्निरुद्धा, य, अत्थिहिं, ॥ १६ ॥ अह, सारही, तओ, भणइ, एए, भद्दाओ, पाणीणो, तुज्झं, विवाह-कज्जमि, भायावउ, वहुंजणं, ॥ १७ ॥ सोऊण, तस्स, सोवयणं वहुपाणि, विणासणं, चितइ, से, माहापन्ने, साणुक्कोसे, जिये-हिओ, ॥ १८ ॥ जइ, मज्झ, कारणा एए, हम्मिति, सुवहु, जीया, न, मे, एयंतु, निस्सेसं, परलोगे, भविस्सइ ॥ १९ ॥ सो कुडलाण, जुयलं, सुत्तयं, च, महायसो, आभरणाणि, व, सव्वाणि, सारहिस्स, पणामए, ॥ २० ॥

अथ दीपिका ॥ युग्मं ॥ अथ अनंतरं से नेमिकुमार सारथिं इदमब्रवीत् किं कृत्वा. तत्र विवाह मण्डपा सन्ने निर्मन् अधिगच्छन् भयद्रुतान् भय व्याकुलान् प्राणान् जीवान् स्थल चरान् मृग शश सूकर तित्तिर लावकादीन् मां साथ भक्षितव्यान् शासित्वा. इति विचार्य दृष्ट्वा कथं भूतान् प्राणान् वाटकैं भित्तिभिः कण्टक वाटिका भिर्वा निरुद्धान् अतिशयेन यन्त्रितान् पुनः पञ्जरै र्लेविहवंश शलाकादि विनिर्मितैः पक्षि नियन्त्रणा स्थानैः सन्निरुद्धान् अतएव सुदुःखितान् पुनः कीदृशान् जावितांतं संप्राप्तान् ते प्राणिन एव जानंति अस्माकं मरणं आगतं कुतोऽस्माकं जीवितं इति मरण दशा संप्राप्तान् कीदृशो नेमिकुमारो महाप्राज्ञो महाबुद्धि सहितः अर्थात् ज्ञान त्रयेण विस्तीर्ण बुद्धिरित्यर्थः॥१५॥ सारथिं किमब्रवीदित्याह. हे सारथे इमं मत्यत्तं दृश्यमाणाः सर्वे प्राणाः वाटकैश्चपुनः पंजरैः सन्निरुद्धाः अत्यंतं नियंत्रिताः कस्यार्थं कस्य हेतो अत्थइ. इति तिष्ठंति. कीदृशाः इमे प्राणाः सुखार्थिनः सर्वे संसारिणो जीवा सुखार्थिनः सति किमर्थं दुःखी क्रियंते भगवान् जानन् अपि जीव दया प्रकटी करणार्थं सारथिं मच्छेति

ाव: ॥ १६ ॥ अथ नेमिकुमार वाक्य श्रवणानंतरं तत सार-
प्रभणति हे स्वामिन् एतेभद्र प्राणिनः युष्माकं विवाह कार्ये बहु
नान् यादव लोकान् भोजयितु एकत्र मीलिताः सन्ति ॥१७॥
इति. सनेमिकुमारस्तस्य सारथेर्वचनं श्रुत्वा चिंतयति कीदृशः
महाप्राज्ञः महाबुद्धिमान् पुनः कीदृशः सजीवेहितः जीवविषये
हितप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशेन वर्तते इति
ानुक्रोशः सदयः अथवा जीव इहि निश्चयेन सानुक्रोशः सक-
णः तु शब्दः पूरणे कीदृश सारथेर्वचन बहु प्राणि विनाशन
हु जीवाना विघातकारकं ॥ १८ ॥ तदा नेमिकुमारः किंचि-
यतीत्याह यदि मम विवाहादि कारणेन एते सुबहवः प्रचुराः
ीवा हनिष्यन्ते मारयिष्यति तदा एतद्हिंसाख्यं कर्म परलोके
रभवे निश्रेयस कल्याण कारिन् भविष्यति. परलोक भीरुत्वस्य
त्यन्तं अभ्यस्ततया. एवं अभिधानं अन्यथा भगवतश्चरमदेह-
चात् अतिशय श्लाघ कृत एवं विधा चिंता इति भावः ॥१९॥
नेमिकुमारो महायशा नेमिनाथस्याभिप्रायात् सर्वेषु जीवेषु बंध-
भ्यो मुक्तेषु सत्सुसर्वाणि आभरणानि सारथे प्रणामयति ददाति
कानि तान्याभरणानि कुडलाना युगुलं पुनः सूत्रकं कटिदवरकं
वकारात् आभरण शब्देन हारादिनि सर्वांगोपाग भूषणानि
सारथेर्ददौ ॥ २० ॥ इति ॥

सूत्रार्थः—अथ इसके अनन्तर वह जो नेमिकुमार हैं सो
सारथी के प्रति यह वचन बोलते भये कहा करके विवाह मंडप
में गमन करता हुवा भयकर के व्याकुल जीव जो स्थलचर मृग
(हरिण) शशला सूकर तीतर लावो (पक्षि विशेषः) इत्यादिक
मास के वास्ते भक्षण करने योग्य उन जीवों को विचार पूर्वक

देख करके कैसे कहैं वे जीव भीत्यां का वाड़ा करके और काटों का बाड़ा करके अत्यन्त रोके गये है फिर कैसे कहैं वे जीव लोहे और वंश की शलायां करके वनाये हुये पिजरों कर के अर्थात् पक्षियों के रोकने के जो स्थान उन्हीं करके रोके गये इस हेतु से दुखित होरहे पुनः कैसे कहे वह जीव प्राणों के नाश को प्राप्त होरहे अर्थात् वह प्राणी जानते हैं कि हमारा मरण आ गया. अव हमारा जीवन कैसे होवे इस प्रकार से मरण दशा को प्राप्त होरहे है कैसे कहे हैं वह नेमिनाथ महाबुद्धि सहित अर्थात् मति श्रुति अवधि ३ ज्ञान करके विस्तीर्ण बुद्धि हो रही है जिनकी ॥ १५ ॥ वह नेमिनाथजी सारथी से क्या बोलते भये सो कहते है हे सारथी यह प्रत्यक्ष दीख रहे जो सर्व प्राणी वाड़ा करके पीजरों करके अत्यन्त रोके गये और खडे है सो किस वास्ते और कैसे कहैं ये प्राणी सुख की इच्छा करने वाले सर्व संसारी जीव है सो सुख की इच्छा करने वाले है तो फिर वंधनादि करके क्यों दुखी किये जाते है भगवान् जानते हुये भी जीवों की दया प्रकट करने के वास्ते सारथी को पूछते भये यह अभिप्राय है ॥ १६ ॥ नेमिनाथजी के वचन सुन के पीछे सारथी वोलता भया हे स्वामिन् जो निरपराधी-पणा से कल्याणकारक जो यह जीव है सो आपके विवाह कार्य में वहुत जन जो यादव लोक उनको भोजन कराने वास्ते इकठे करे गये है ॥ १७ ॥ वह जो नेमिकुमार है सो सारथी का वचन सुन के चिंतना करते भये. कैसे कहैं वह नेमिकुमार, महा-बुद्धि वाले. फिर कैसे कहे जीव के विषे हितकारक. फिर कैसे कहैं दया करके सहित. अथवा जीव के विषे निश्चय करुणा

रके साहित तु शब्द पाद पूरणार्थ है. कैसाक यह सारथी का
चन बहुत प्राणी का विनाश करने वाला ॥ १८ ॥ उस वक्त
नेमिनाथ क्या चिंतना करते भये. जो मेरा विवाहादिक का-
ण से बहुत से जीव मारे जावेंगे तब यह हिंसा कर्म परलोक
कल्याणकारक न होगा परलोक से जो डरना उसका अत्य-
त अभ्यासपणा करके यह कथन है नहीं तो भगवान का चरम
रीर होने से अति ही ज्ञाता होने से इस प्रकार की चिंता
यों होती ॥ १९ ॥ वे नेमिकुमार बडे यश के धारन करने
ाले नेमिनाथ के अभिप्राय से संपूर्ण जीव बंधन से छूट गए
व सपूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से आभरण है.
ुडलों का जोडा, फिर कडोरा, चकार शब्द से आभरण शब्द
करके हारादिक जो संपूर्ण अंग उपाग के भूषण वह भी सारथी
को देते भये ॥ २० ॥ इति दीपिकार्थः ॥ अब देखो २ हे
मित्रो यह सूत्रपाठ दीपिका से प्रकट खुलासा है कि श्री नेमि-
ाथ भगवान् जिसवक्त राजीमती को परणने वास्ते तोरण पे
आये तहा बहुत जीवों को बाडे में और पिंजरे में अति दुखित
ेख करके उनकी करुणा लाके जानते हुए भी जीवों को ब-
चाने वास्ते सारथी को पूछा कि यह जीव बिचारे सुख के अर्थी
इनको क्यों रोक रक्खे हैं तब सारथी ने कहा कि भो स्वामिन्!
यह जीव यादवों को भोजन देने वास्ते इकट्ठे किये गये यह
वचन सुन के श्री नेमिनाथ परमेश्वर हिंसा से डरते भये. और
जीवों का हित चिंतते भये. यह अभिप्राय नेमिनाथ का था कि
यह जीव बिचारे छूट जावें तब सारथी ने नेमिनाथ के अभि-
प्राय को जानके सर्व जीवों को बाडे से और पिंजरे से छोड

दिये. तब श्रीभगवान् ने सारथी को कुण्डल युगल हारादि सर्व
आभरण इनाम में दे दिये. देखो भाई यह प्रकट सूत्र और सूत्र
की टीपिका का कथन है तो फिर तुम लोग जीव बचाने में
पाप होता है. धर्म नहीं. या जीवका जीवना वंछने में पाप
तुम्हारे गुरुजी बतलाते हैं तो क्या श्री नेमिनाथ जी से भी
तुम्हारे गुरुजी को अधिक ज्ञान है. नहीं नहीं यह प्रकट दीखता
है कि तुम नेमिनाथ जी की श्रद्धा से विपरीत कथन करने वाले
हो. क्योंकि जो तुम्हारे सरीसी भगवान् की श्रद्धा होवे तो
सारथी ने जीव छोड़े तब आभरण गहने इनाम में क्यों देते.
क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से ही दीखती है कि जो कोई
अपने मालिक की इच्छा प्रमाणे काम करे तब उसपर मालिक
खुश होके इनाम देते है जैसे कि उवाई सूत्र में कोणिक राजा
को बागवान् ने श्रीभगवान् के पधारने की बधाई दी. तब राजा
ने मुकुट को वर्ज के सर्व आभरण बधाई में दिये. क्योंकि को-
णिक को श्री भगवान् के आने की बधाई पर अति प्रेम था तैसे
ही यहां श्री नेमीनाथजी को जीवों को छोड़ने रूप दया पर
अति प्रेम था. जिससे सारथी ने जीवों को खोल दिये तब
कुंडल हारादि सर्व गहने सारथी को दिये. बस यह प्रकट मूल
सूत्र और टीपिका का लेख. हमने ऊपर इसलिये लिखा है.
हे बुद्धिमानों पक्ष छोड के विचारना कि तुम्हारे गुरु जीतमल-
जी की कल्पना सरासर सूत्र का कथन को छिपाने की है कि
नहीं परन्तु हे भव्यो न्यायपक्षी होके सूत्र का कथन को वि-
चारना हमने तो तुम्हारे पूज्यजी के और तुम्हारे मतव्य मुजब
सूत्र का टबार्थ को छोड़ के सूत्र का पाठ अरु टीपिका और

दीपिका की हीज भापा लिखी है. और यह भी ख्याल करना कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने लिखा कि नेमिनाथजी ने जीव छोडाया चाल्या नहीं. यह कहना निरर्थक है कि नहीं. और बुद्धिवल होवे तो विचारो कि मूल सिद्धात और दीपिका में लिखा है वह सच्चा है कि भ्रम विध्वंसन की कल्पना सच्ची. निरपक्षी जीव होगा वह तो सिद्धात के वचन को ही प्रमाण करेगा. परन्तु मिथ्या कल्पना कि जो सिद्धात से दीपिका से नहीं मिलै उसको प्रमाण नहीं करेगा. जेकर हठवाद करके. यह प्रत्यक्ष सिद्धात की साक्षी को भी नही मानोगे तो हम समझेंगे कि इन जीवों के प्रबल मोह कर्म का उदय हुवा है कि जिससें सर्वज्ञ प्रणीत सिद्धाल की श्रद्धा छोड के विपरीत कथन को मान बैठते हैं. हमने तो तुम्हारे हित के लिये मूल और दीपिका टीका सहित साक्षी लिखी है. परन्तु तुम्हारे सरीसी साक्षी नहीं लिखी कि नमिराज की आखों में अमृत झरता है. और एक वार देखने से सपूर्ण अत'पुरादिक की रक्षा हो जावे ऐसा उत्तराध्ययन का नाम लेके लिख दिया. परतु वह लेख उत्तराध्ययन के मूल अर्थ टीका दीपिका अवचूरिका आदिक में कहां भी नही लिखा है ऐसी एक नहीं किंतु बहुतसी साक्षी तुमने विपरीत सूत्र का नाम लेके लिखी हैं सो हम ऊपर लिख चुके हैं और आगे फिर भी लिखेंगे. और हमने जो साक्षी दी है वह मूल सूत्र अर्थ दीपिका से लिखी है. उसका मतलब यह है कि जो भव्य जीव आत्मा का हितेच्छु होगा तो विचार लेवेगा. और जीतमलजी का वनाया भ्रम विध्वसन के पत्र ४७ मा पर ऐसा लिखा है कि—

फेतला एक टवा में कह्यो (जीए हीऊ) कहतां सकल जीवां का हितकारी तेहनो न्याय इम. प्रथम तो अवचूरी टीका दीपिका में यो अर्थ न थी. ते माटे ए टवार्थ ते टीका नों न थी) इति भ्रमः.

अब देखो कि तुम्हारे पूज्य जीतमलजी का मानना ऐसा हुवा कि सकल जीवां का हितवान् नेमीनाथजी ये अर्थ टवा टीका दीपिका का नहीं. और फिर भी (जीए ही ऊ) का अर्थ जीवा का हितकारी ऐसा अर्थ करने वाले को जीतमलजी ऊंधा अर्थ करने वाले कहते है. परन्तु बुद्धि होवे तो विचारो कि दीपिका में तो स्पष्ट लिखा कि (साणू को से जीवे हेऊ) कहता सजीवे हितः जीव विषये हितेप्सुः पुनः कीदृशः सानुक्रोशः सह अनुक्रोशे न वर्तते इति सानुक्रोशः सदयः ।

अब देखो दीपिका में तो प्रकट लिखा कि (जीव विषयें हितेप्सुः) जीवों के विषे हितकारक. यह दीपिका और भाषा दोनों विस्तार पूर्वक हमने ऊपर लिख दिया. तो विचारो कि भ्रम विध्वंसन के रचने वाले कहते हैं कि जीवों के विषये हित यह अर्थ दीपिका में है ही नहीं. तो कहो यह दीपिका कहां से आई. अफसोस २ है कि इस ग्रंथ का नाम भ्रम विध्वसन रक्खा तो यह ग्रंथ भ्रम का उच्छेदन कारक तो नहीं. परन्तु विचारे कम समझ जीवों को भ्रमरूप अंधकार में दाखल यानी प्राप्त करने वाला है. हे बुद्धिमानों तुम गुरुजी की कल्पना में विश्वास करके मत बैठे रहो. क्योंकि गुरुजी का भ्रम देखो कि जो कथन दीपिका में नही बताया है वह प्रकट दीपिका में है सो दीपिका हमने ऊपर लिखदी है. सो जो कोई न्यायपक्षी होवो

तो विचार लेना. और हमको तो अच्छी तरह से विदित हुवा कि जीतमलजी ने अपना शोच नहीं करा कि दीपिका में जो बात छती है उसको मैं अच्छती क्यों कर लिखूं परन्तु उनका दोष क्या. दोष मिथ्यात्व का है. तथा लिखते है कि नेमीनाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और जीवां रा जीव ने अर्थे नेमीनाथ पाछे नहीं फिरे वह भी मिथ्या ठहरी क्योंकि जिस टीका दीपिका अवचूरी की साक्षी लोकों को देते हो कि नेमिनाथजी ने जीवों को नहीं छोड़ाये. और हित नहीं वाछा वोही टीका दीपिका से हमने सिद्ध किया है. सो ऊपर लिख चुके हैं कि नेमिनाथजी के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को खोल दिये. और जीव बच गये. तब जीव बचाने का इनाम में आभूषण सारथी को देके नेमीनाथजी पीछे फिरे. तथा अवचूरिका में भी जीवों को खोलने का खुलासा है सो तुम्हारे हित के लिये. फिर लिखते हैं ॥

तथाच अवचूरी ॥ एवं च ज्ञात भवदाकृतिना सारथि नामो चितेषु सत्वेषु परितोपितोऽसौय त्कृतवांस्तदाह ॥

अर्थ–इस प्रकार से जाणली है स्वामी की आकृति जिसने ऐसा सारथी करके जीव मुक्त होगये तब प्रसन्न होने से नेमीनाथ जी जो करते भये सो कहते है ॥ इति ॥

अब फिर भी देखलो कि तुम्हारे गुरुजी जिस अवचूरिका की साक्षी देते है उसमें यह लेख है कि जीवों को सारथी ने छोडे तिसका इनाम में नेमीनाथजी ने दिया तो अब देखो कि यह अवचूरी विक्रम संवत् १४४१ में बनी है और तुम्हारे गुरुजी ने भी मंजूर करी है तो अब जेकर तुमको आत्मा की हित

नजर और मध्यस्थता होवेगी तो यह प्रकट सिद्धांत का लेख देख के जिनेश्वर देव के मार्गानुयायी होवेगे.

पूर्वपक्ष—उत्तराध्ययनजी की पाई टीका में तो जीवों को छोडाने का कथन नहीं होगा. क्योंकि जो होता तो हमारे गुरुजी ऐसा क्योंकर लिखते कि जीवों को छोडाने का कथन चला नहीं.

उत्तरपक्ष—हे भव्य नहीं कैसे है जो मूल सूत्र में हीज कथन है. वह पाई टीका में कैसे नहीं होवे. पाई टीका में तो स्पष्ट जीव छोड़ने का इनाम नेमीनाथजी ने सारथी को दिया चला है. सो हम तुम्हारे हित के लिये पाई टीका का लेख भी लिखते है.

तथा च टीका—एवंच विदित भगवदभिप्रायेण सारथिना मोचितेपु सत्वेपु परितोपाद्यदसौकृतवांस्तदाह: सूत्र कंच कटि सूत्र कं च। इति.

टीकार्थः—इस प्रकार करके जान लिया है भगवान का अभिप्राय जिसने ऐसा सारथी ने प्राणियों को छोड़ दिये तब प्रसन्न होने से जो भगवान् करते भये सो कहते हैं. कटि सूत्र इत्यादिक इनाम दिया ॥

अब हे बुद्धिमानो हृदय के नेत्र खोल के देखो पाई टीका में प्रकट लिखा कि श्री नेमीनाथ भगवान् के अभिप्राय से सारथी ने जीवों को छोड दिये तब श्री भगवान् ने कुंडलादिक भूपण इनाम में दिये. तो भव्यों अब तो विचारो कि श्री भगवान् का जीव को छोड़ाना स्पष्ट सिद्ध है. तथा फिर जो हमने नेमीनाथजी का जीव छोड़ने से सारथी को इनाम देना लिखा वह मूल पाठ से ही है. नहीं तो फिर नेमीनाथजी ने इनाम

सारथी को किस बात का दिया. जेकर कहो कि जान खातिर जीव मरने का उत्तर दिया इसलिये इनाम दिया तो यह कल्पना बिलकुल मिथ्या है क्योंकि खबर तो सारथी को पेस्तर ही श्री भगवान् ने ज्ञान से जान ली थी कि इस निमित्त यह जीव इकट्ठे करे हैं परन्तु सारथी को पूछने का मतलब यह है कि जिससे दया को प्रकट जान जाय. जब सारथी ने प्रकट जानली तब जीवों को खोल दिये. तब श्री नेमिनाथजी ने सर्व आभूषण कुडलादिक सारथी को इनाम में दिया. ऐसा लेख सूत्र का पाठ की दीपिका में है सो हमने ऊपर लिख दिया है. तथा कोई ऐसी कल्पना करे कि नेमीनाथजी को संयम लेने के खातिर गहने को खोलना था तिससे सारथी को आभूषण दे दिये तो यह भी श्रद्धा जैन सिद्धात के अजाण की है. क्योंकि सारथी को इनाम देके तोरण से फिरे बाद १ वर्ष तक गृहवास में रहे हैं और वर्षीदान दिया है. क्योंकि वर्षीदान दिये वगैर कोई भी तीर्थंकर दीक्षा नहीं लेते हैं. यह कथन मूल सूत्र में है. बस यह सिद्धात का लेख स्पष्ट खुलासावार है. सो तुम्हारा लिखना है कि यदि आप मरते जीव को बचाने में धर्म मानते हो तो पाठ दिखलाना चाहिये. इससे हम अति खुश हैं और तुम्हारे से अति हित करके हम कहते है कि हे देवानुप्रिय यह सूत्र उत्तराध्ययन का २२ मा अध्ययन की अति पुष्ट साक्षी लिखी हैं परन्तु गोलमाल नाम रूप ही नहीं किंतु सूत्र पाठ पाई टीका, दीपिका, अवचूरी सहित लिखी है सो निरपक्षता से पढ़के परमेश्वर के वचनों की आस्ता लाइये साक्षी तो एक ही बहुत है. तथापि हम तुम्हारी ज्ञान दृष्टि बढाने के लिये फिर

भी लिखते हैं. सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संवर द्वार तिसमें दया के गुण निष्पन्न ६० नाम कहे है तिसका ११ मा नाम दया ऐसा है. तिसका अर्थ देही यानि जीव की रक्षा का है सो टीका में खुलासा लिखा है. तथा च टीका ॥ (तथा दया देहि रक्षा) यह देखो देहि यानी जीव तिसकी रक्षा करणी उसका नाम दया कही है और दया पालके अनंत जीव मोक्ष गये हैं तो फिर तुम कहते हो कि जीव बचाने में पाप. यह तुम कहां से लाये हो.

पूर्वपक्ष–हमतो दया का अर्थ नहीं हनने का कहते है यानी अपनी तर्फ से नहीं हनना यह अर्थ करते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई सूत्र का अर्थ तो जो सूत्र में है वही रहेगा. परन्तु कल्पित अर्थ मन मते से करना भवभीरु यानी संसार से डरने वाले का नहीं है. और नहीं हनना नाम तो ६० नाम में से एकही नाम हुवा. परन्तु सूत्र में तो ६० नाम कहे हैं सो एक को ही मानना बुद्धिमान् का काम नहीं. जेकर एक ही मानोगे तो सिद्धांत के घणे पाठों के उत्थापक होवेगे. जैसे इसी सूत्र मे ३४ मा नाम (रखा) ३४ अस्य टीका. (रक्षा जीव रक्षणस्वभावात्) जीव रक्षा का स्वभाव है, तिससे रक्षा कहते हैं. देखो नजर लगाके कि अपनी तर्फ से नही हनना उसकोही ज तुम दया मानते हो. और सूत्रकार कहते हैं कि जीव की रक्षा करना नाम भी दया है सूत्र की आस्ता होवे तो विचार लो. तथा ५४ मा नाम (अमाघा ओ) ५४ अर्थः (अमारि रावखानेमिनाथ नी परे) देखो यह छापा कि प्रश्न व्याकरण के पत्र ३२९ मा पर लिखा है कि नेमीनाथ के परे

मरते हुए को राखणें उसका नाम अमारी है. तथा २४ मा नाम (नंदी) अस्य टीका (नंदतीति, भन्दते कल्याणं करोति देहिन मिति नंदी) प्राणी को कल्याण करे उसको नदी कहते हैं. देखो भाई देही यानी जीव मरते हुए को राखणा रूप आनंद का देना उसका नाम नंदी है. तथा इसी संमरद्वार में यह पाठ है

जासा, पुढवी, जल, अगणी, मारुय, वणप्फती, वीय, हरिय, जल, थलचर, खहचर, तस, थावर, सव्व, भूए, खेमकरी, एसा भगवती।

अब विचारो कि श्री भगवान् ने तो कहा कि सर्वत्रस स्थावर को चेमकरण हारी दया भगवती है ॥ तथा च टीका में भी कहा कि (त्रस स्थावराणि सर्वे भूतानि तेषां चेम करी यासा) अर्थः–त्रसस्थावर प्राणी को चेम की करण हारी दया। इति टीकार्थः ॥

देखो भाई जेकर तुम्हारी श्रद्धा जीव बचाने में पाप की है. ऐसी तीर्थंकर परमेश्वर की होती तो ऐसा श्री भगवान् क्यों कहते कि सर्वत्रस स्थावर जीव की क्षेमकुशल रक्षा करणी वह दया है. परन्तु निश्चय जानो कि तीर्थंकर की श्रद्धा से तुम्हारी श्रद्धा जीव बचाने में एक अंसमात्र भी नहीं मिले. तथा फिर अत्यन्त पुष्ट साची इसी प्रश्न व्याकरण के पहिला संवर द्वार में हैं सो लिखते है. (सव्वजग, जीव, रखण, दयट्ठयाए, पावयणं, भगत्रया, झकहिय,)–

अस्यार्थः–सर्व ८४ लच जीवा योनि राखवाने विषै एहवी दया तेहनी अर्थे श्री सिद्धांत प्रवचन श्री महावीर देवे रूड़ो भाष्यो.

टीका–सर्व जीव रक्षण रूपा या दया तदर्थं प्रावचनं प्रवचनं शासनं भगवता श्री मन्महावीरेण सुकथितं न्यायावाधित्वेन ॥

टीकार्थः–सम्पूर्ण जो जगत् का जीव उनकी रक्षा रूप जो दया तिसके अर्थ शिक्षा सिद्धांत श्रीमान् महावीर स्वामी ने भला कहा. न्याय का अबाधितपणा करके ॥ इति टीकार्थः ॥

अब अच्छी तरह से देख लेवो कि यहां सूत्र में कहा कि सर्व जगत् के जीवों को राखने रूप जो दया तिस अर्थे प्रवचन (सिद्धात) श्रीमान् महावीर प्रभु ने भली प्रकारे कथे हैं. अच्छी तरह से फरमाये हैं तो हे मित्रो श्री भगवान् ने सिद्धांत फरमाये वह सर्व जगत् के जीवों की रक्षा लिये हैं तो फिर जीव की रक्षा यानी मरते जीव की रक्षा करने में तुम पाप कैसे कहते हो.

पूर्वपक्ष–जीव को मरते हुए को कौन रख सक्ता है. क्योंकि जीव तो अपने आयु कर्म से जीता है. तो मात्र रक्षा तो हाडके की होती है परन्तु जीव की नहीं.

उत्तरपक्ष–हे अल्पज्ञ जेकर जीव मरते हुए रक्षा करने से नही रहते हैं तो ऐसा निश्चय नय करके कहोगे तब तो जीव मारे से नही मरता है क्योंकि अपनी आयुष से ही मरता है. जेकर ऐसी श्रद्धा तुम्हारी होजाय कि जीव मारया मरे नहीं. तब तो फिर तुम्हारे मत में जीव हिंसा लगनी ही नहीं. तब तो जीव हिंसा के अभाव से तुम्हारे मत में साधू होना भी निरर्थक है क्योंकि जीव हिंसा नहीं तो फिर हिंसा का त्याग कहा से रहे. तब तो तुम्हारे गुरु उपदेश देते हैं कि जीव मत हणो.

यह कहना भी निरर्थक ठहरेगा. ऐसा मानने से तो तुम्हारा मत नास्तिक सरीसा ही हो जायगा.

पूर्वपक्ष—जीव मारया तो मरता है. तिससे जीव मारने में पाप है इस हेतु से हमारे गुरुजी उपदेश देते हैं. या स्वय पाप जानके त्याग करके साधू होते हैं.

उत्तरपक्ष—तो हे भव्यो ऐसे ही समझ लेवो कि जीव मारया मरता है. वैसे ही जीव बचाया बचता है. और जैसे जीव मारने में पाप है वैसे ही जीव की रक्षा करने में धर्म है. क्योंकि जैसे मारने वाले की खोटी लेस्या, और खोटा जोग, खोटा अध्यवसाय होता है इससे पाप होता है. वैसे ही रक्षा करने वाले की भली लेस्या भले जोग भले अध्यवसाय होते हैं उससे धर्म पुन्य होता है. यह प्रत्यक्ष देखो कि एक जना तो जीव को मार रहा है. या गौओं के बाडे प्रमुख में लाय लगाने की इच्छा करता है. या ग्राम को जलाने की इच्छा करता है. और दूसरा जना कहता है कि भाई जीव को मत मार. लाय मत लगा. अब देखो कि जीव को मारने वाले की, लाय लगाने वाले की कृश्न लेस्या सूत्र उत्तराध्ययन के ३४ मा अध्ययन की २२ मी गाथा में कही है.

सूत्र—निद्धस, परिमाणो, निस्ससो, अजिइंदिओ। एय जोग, समाउत्तो, कण्हलेसतु, परिणामे ॥

अस्यार्थ—जीवा प्रते हणतो शका न करे ते निर्ध्वस परिणाम निस्त्रसांत निर्दयइ. इन्द्रियानो अण जीतणहार. एहवो जोग करी समा उक्त सहित थको नु निश्चय करी कृष्ण लेस्या प्रते परिणमे ॥ ३४ ॥

यह देखो जीव मारता नहीं डरे उसको कृष्न लेसी यानी पाप लेस्यावान् कहा है. और जीवों को बचाने वाला, पाप से डरने वाला को धर्म लेस्यावान् कहा है। और इसी अध्ययन की ३८ मी गाथा में निम्नलिखित है.

सूत्र–पिये धम्मे, दढधम्मे, वज्जभीरुहिएसए. एय जोग, स्समाउत्तो, तेउ, लेसंतु, परिणमे ॥ ३८ ॥

अस्यार्थः–प्रिय धर्म छे जेहने वली दृढ धर्म ने विषइ दृढ वज्र पाप थकी बीहकण हितनो वंछण हार एवे योगे करी समायुक्त सहित थकउते जो लेस्या परिणमे ॥ ३८ ॥ इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र में मूलपाठ बोलता है कि पाप से डरने वाला और हित का चिंतनेवाला को तेजु लेस्या यानी प्रशस्त धर्म लेस्यावान् कहा है तो विचारो कि जीव हिंसा लाय लगानादि पाप करनेवाला तो पापलेस्यावान् यानी पापी है. और वर्जनेवाला यानी मारते हुवे को लाय लगाते हुए को रोकनेवाला धर्म लेस्यावान् यानी धर्मात्मा है. क्योंकि पाप से डरना डराना, डरते हुए को भला जानना, यह सर्व कल्प धर्मी पुरुष के हैं तो फिर तुम जीव मारते हुए को मनादि यानी जो कोई रोके उसमें पाप कहते हो यह श्रद्धा किस सिद्धात से निकाली. कोई सिद्धात टीका, भाष्य, दीपिका, अवचूरिका में कहीं भी नहीं है.

पूर्वपक्ष–जीव मारते हुए को तो हमारे गुरुजी भी मनादि करते होंगे. क्योंकि 'साधू का उपदेश तो मत हणो मत हणो ऐसा है तो हमारे गुरुजी जीव मारते हुए को मनाही करने में पाप कैसे कहते होंगे.

उत्तरपक्ष—हे भाइयो वास्तव में सत्य तो यही है कि साधु को जीव मारते हुए को रोकना, जीव मतमार. परन्तु तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा मानने वाले भीषमजी की उपासक की श्रद्धा जीव मारते हुए को रोके उसमें धर्म मानने की नहीं उलटा जीव मारते हुए को रोके मनाई करे तो उसको महापापी कहते है और फिर कहते हैं कि जीव मारे उसको एक पाप और मारते को धर्म जानके वर्जे उसको १८ पाप कहते हैं. यह बात जो तुम्हारे गुरु या असली उनकी श्रद्धा के श्रावक जानते हैं और श्रद्धते हैं औरों को भी ऐसा उपदेश देते हैं. परन्तु कितनेक भोले भाई उनको इस बात का वाकिवपणा नहीं है जिससे उनके मत में जैन धर्म के नाम से बंध जाते है. परन्तु जीव मारते हुए को कोई मनाही करे कि इस जीव को मतमार ऐसा उपदेश देने वाले को पाप लगे ऐसा कहते हैं और श्रद्धते हैं ऐसा उनका लेख यहां बताते हैं. अनुकंपा की ढाल चौथी गाथा ३८ मी.

(गिर सतरापगरे हेठे जीव आवे तो साधू ने बतावणो कठे नहीं चाल्यो. भारी करमा लोका ने भिष्ट करणने ओ पण घोचो कुघरा घाल्यो । ३८ । यहा हमने एक गाथा लिखी है परन्तु इस विषय का कथन इस ढाल में बहुत है, संदेह होवे तो देख लेना. गाथा की व्याख्या. गृहस्थ के पग के हेठे ऊदरा प्रमुख जीव आवे और गृहस्थ विना उपयोग से नहीं देखे और साधू देखे तो भी साधू को नहीं बतावणा कि यह जीव तेरे पग नीचे आवे सो तेरे को पाप लगेगा. इत्यादिक नहीं कहणा किन्तु मौन राखणी).

जेकर कोई गृहस्थ के पग हेठे जीव आवे और गृहस्थ नहीं देखे, साधू देखे और उस जीव पर पग मेलने वाले गृहस्थ को साधू कह देवे कि उपयोग रख जीव मत मार तेरे पग नीचे जीव आता है. ऐसा कहे उस कहने वाले दयावान् को भीषमजी भारी कर्मी कहते हैं. या लोकों को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं और कोई के पग नीचे जीव आवे तो नहीं हनने का उपदेश देवे तो धर्म है ऐसा प्ररूपणे वाले को भीषमजी कुगुरु कहते है लोकों को मिथ्यात्व रूप घोचे घालने वाले कहते हैं इति गाथा की व्याख्या.

हा ! हा ! हा ! अफ़सोस है २ कि भीषमजी की कैसी क्रूर श्रद्धा है कि जीव मारते हुए को भी मत मारो ऐसा उपदेश नहीं और श्रावक जिसको त्रस जीव मारणे के त्याग है. और जीव मारणा नहीं चाहता है परन्तु विना उपयोग से कीडी मकोडी आदि पर पैर रखता है. उसको साधू ने कहा कि देख जीव पे पग मत दे तुझे पाप लगेगा और व्रत भंग होवेगा. ऐसा करुणा का उपदेश श्रावक को साधू देवे जिसमें साधू को क्या पाप लगा. जो उनको भीषमजी कुगुरु कहते हैं या लोकों को भ्रष्ट करणहार कहते हैं और जिस श्रावक के जोग से जीव मरता था व्रत भी भागता था उसको साधू के चेताने से जीवहिंसा का पाप भी टर गया. व्रत भी अखंड रह गया. उसमें कहो भाई वह श्रावक क्या भ्रष्ट हुवा कि उलटा पाप से छूटा. यानी शुद्ध हुवा.

हा ! हा ! हा ! बुद्धिमान विचारो कि श्रावक को उलटा

पाप लगने से रोका और व्रत भी अखंड रखाया. तो कोई गृहस्थ श्रावक प्रमुख के पग तले जीव आवे उसको कोई साधू या कोई भी दयावान् बता देवे उसको भीषमजी ने लोकों को भ्रष्ट करने वाला क्योंकर लिख दिया तो निश्चय हुवा कि भीषमजी की श्रद्धा दया धर्म से विरुद्ध हुई. परन्तु दया का उपदेश दाता, पैर नीचे जीव बताने का उपदेश दाता, लोकों को भ्रष्ट करने वाला किसी सिद्धांत प्रमाण से प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है परन्तु धर्म का पालने वाला सिद्ध होता है और पाप से बचाने वाला सिद्ध होता है

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते है कि वर्तमान काल में कोई पाप करता होवे तो उसको मना नहीं करना. परन्तु वह पाप नहीं करता होवे जीव मारणे के भाव नहीं होवे, उस वक्त उपदेश का मौका आवे तो पाप के कड़वे फल बता देना. परन्तु वर्तमान काल में पाप करता होवे, कोई किसी को मारता होवे, कोई किसी को गाली देता होवे तो साधू को मना नहीं करना. और कुछ नहीं कहना क्योंकि जगत् के झगड़े में साधू काहे को पड़े. साधू को तो कोई वर्तमान काल में पाप करता होवे तो कुछ भी नहीं कहणा.

उत्तरपक्ष—हां भाई जरूर तुम्हारे गुरुजी की ऐसी ही श्रद्धा है कि जीव मारते को कुछ भी नहीं कहना. तथा कोई किसी को आक्रोश करता होवे तो आक्रोश मत करो लडाई मत करो ऐसा भी नहीं कहना. यह बात भ्रम विध्वंसन के पत्र ४९ मे पैं लिखा है. भ्रमरूप साक्षी भी दी है. परन्तु हम सुत्र साक्षी सहित परमेश्वर का मार्ग वर्तमान काल में पाप करने वाले को

रोकने में धर्म है ऐसा लिख दिखाते हैं. एकाग्र चित्त करके सुनिये. सूत्र भगवतीजी के शतक १२ मा उद्देश पहिले में संख श्रावक का अधिकार में संख श्रावक ने पोपलीजी प्रमुख श्रावकों को कहा कि हे देवानुप्रिया तुम ४ प्रकार का आहार निपजावणा फिर अपने सर्व जणे आहार करते हुये पक्खी पोषा की जागरणा करते विचरेंगे तब पीछे उन श्रावकों ने वही काम किया. परन्तु संखजी श्रावक को तत्पश्चात् ११ मा प्रतिपूर्ण पोषा करने की इच्छा हुई जिससे ४ आहार के त्याग करके पोषधशाला में प्रतिपूर्ण पोषा किया. और दूसरे शंख सिवाय श्रावकों ने जीम के पोषा किया. दूसरे दिन शंखजी भी श्री भगवान् वर्द्धमानजी का धर्मोपदेश सुनने को दर्शन करने को आये और दूसरे श्रावक भी आये. धर्मोपदेशना सुनने के बाद शंखजी के ऊपर दूसरे श्रावक आक्रोश ला के शखजी को कहने लगे. कि हे देवानुप्रिय कल तुमने हमसे तो भोजन करके पोषा करने को कहा. और तुमने ४ आहार का त्याग करके परिपूर्ण पोषा कर लिया सो अब हम देवानुप्रियों तुम्हारे हित के वास्ते सूत्रपाठ लिखते हैं सो श्रवण करिये.

सूत्र–तंसट्ठुणं, तुम्मं, देवाणुप्पीया, अम्हे, हीलेसि । अज्जो, तिसमणे, भगवं, महावीरे, ते, समणो, वासए, एव, वयासीमाणा, अज्जो, तुब्भे, सख, समणोवासग, हीलह, निंदह, खिसह, गरह, अवमाणह ॥ इतिः ॥

अस्यार्थः–ते भलु करयो इसो उलभो देई कहे तुमने अम्हे अहो देवानुप्रिये, हमे हीलस्या गरु साखे ऐसा श्रावक का वर्तान्त देखके भगवंत महावीर स्वामी ने कहा कि मत हे आर्यो

ऐसे आमन्त्रण देके कहते यभे. कि हे आर्यो संख श्रावक को हिलोनिदो खिसो मत. इनकी अवज्ञा मत करो इत्यर्थः.

अब देखो यहा मूल सूत्र में कहा कि संख श्रावक की हीलना निंदना करते हुये ऐसे पोपली प्रमुख श्रावकों को श्री-भगवान ने श्रीमुख से वर्जे तो हे भाई विचारो जो परमेश्वर की तुम्हारे सरीसी श्रद्धा कि वर्तमान काल में पाप करते हुए को मनादी नहीं करने की होती तब तो सख पोपली का झगडा श्री भगवान् क्यों मेटते तो निश्चय हुवा कि परमेश्वर की श्रद्धा तो पाप करने को रोकने में श्रावकों को हीलते हुए को वर्जने में है और झगडा मिटाने में धर्म मानने की श्रद्धा है. परन्तु पाप करते को देख के उसको मना करने में पाप लगने की नहीं जैसे शख श्रावक पै उन पोपली प्रमुख श्रावकों को क्रोध करते हुए को वर्जे तैसे ही समझ लेना हर कोई पाप करते हुए को वर्जे पाप छोडावे तो धर्म है परन्तु पाप नहीं.

पूर्वपक्ष-यह तो तीर्थकर के लिये कहा. परन्तु वह तो सर्वज्ञ है आगम विहारी है परन्तु छद्मस्थ साधू किसी को पाप करते हुए को मनाई करे कि नहीं.

उत्तरपक्ष-साधु के लिये भी कहा है. ठाणाग के तीजा ठाणा उद्देश तीसरा में कहा कि हिंसादि अकार्य करते हुए को उपदेशादिक धर्म की प्रेरणा करके प्रेरणा करे पाप से छोडावे और तुम्हारे गुरु जीतमलजी कृत भ्रम विध्वसन के पत्र ५४ मा पै लिखा भी है (अथ अठेपण कह्यो हिंसादि अकार्य करता देखी उपदेश देई समझावणो) अब देखो भाई जीतमलजी तो कहते हैं कि हिंसादि अकार्य यानी जीव को मारता देखके, या

और भी कोई पाप को करता देखके कोई उपदेश देवे कि जीव मत मार. या और कोई पाप मत कर. ऐसा कहे तो उस कहने वाले को धर्म होता है और भीषमजी तो कहते हैं कि कोई गृहस्थ के पैरादि करके जीव मरता हो तो नहीं चेतावणा. जीव मत मार ऐसा नही कहना. कहे तो कुगुरु समझना और जीतमलजी कहते है कि हिसा करता देखके उपदेश देके समझावणा. तो फिर श्रावक के पग नीचे जनावर आता देखके साधू उपदेश देके जीव बचाया. श्रावक का पाप टरा. इसमें पाप भीषमजी ने कैसे बताया. हा ! हा हा ! परस्पर विरुद्धता का हाल लिखा नही जावे. अब भीषमजी की श्रद्धा के लेखे तो जीतमलजी कुगुरु ठहरे. क्योंकि जीतमलजी तो हिंसा करते को उपदेश देना कहा. अब कहो भाई भीषमजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो कि जीतमलजी की श्रद्धा को सत्य मानते हो. और भी तुम्हारे गुरु भीषमजी की श्रद्धा को प्रगट करते हैं ध्यान लगा के सुनो. अनुकंपा की ढाल दूसरी २ ॥

(चेड़ाने कोणी करी वार्ता. निरावली का भगोती साखरे. मानवमुवा दोय संग्राम में एक कोड़ ने असी लाखरे ॥ ३९ ॥ भगवंत अणुकंपा आणी नी. पोते न गया न मेल्या सारे. याने पेला पिण वर्ज्या नही ते तो जीवा री जाण विराधरे.जीवा० ४० ॥ एमा तो दगा अणुकंपा जाणता. तो वीर वठीने जायरे. सगलारे साता उपजावता एतो थोरा मे देता मिटायरे. जीवा० ४१ ॥ कोणक भगत भगवान रो. चेड़ो बारे व्रत धाररे. इन्द्र भीर आया तेह समकीती. तो किण विध लोपता काररे. जीवा० ॥ ४२ ॥ इतिः ॥

अब देखो भीषमजी की श्रद्धा है कि कोई राजा परस्पर संग्राम करते होवे तो भी उपदश दे नभ नहीं करना. सग्राम करते पहिली भी नहीं बर्जना. क्योंकि कोणिक राजा और चेड़ा राजा की लडाई हुई तहा उपदेश देने को भगवत नहीं गये. पहिले भी मनाई नहीं करी इस वास्ते उपदेश देके संग्राम मेटे लड़ाई छोड़ावे तिसमें भी पाप होता है और जीतमलजी सूत्र ठाणांग की साची देके भ्रमविध्वंसन के पत्र ५४ मा पर लिखा कि (अठे पण कह्यो हिंसादिक अकार्य करतो देखी उपदेश देई समझावणो) अब देखो जीतमलजी तो कहते है कि उपदेश देके हिंसादि अकार्य करतो देखी समझावणो. हिंसा छोड़ावणी. और भीषमजी ने अनुकपा की दूसरी ढाल में लिखा कि जो सग्राम छाड़ने में दया अनुकंपा भगवान जाणता तो विशाला नगरी जाता. परन्तु भगवान् नहीं गये. जिससे उपदेश देके संग्राम मेटवा में भी पाप है. परन्तु दया अनुकपा नहीं अब बुद्धिमान' विचारो कि प्रथम तो जीतमलजी और भीषमजी के कथन में बडा भारी फरक पडा कि भीषमजी तो हिंसा करते को उपदेश देने में पाप श्रद्धते थे. और जीतमलजी ने धर्म लिखा. जेकर परस्पर ही अत्यन्त विरुद्ध है तो फिर सिद्धात से तो अत्यन्त विरुद्ध है ही क्योंकि सिद्धात का हमने ऊपर मूलपाठ श्री भगवतीजी का लिखा कि जरा साक्ष शंखजी श्रावक के ऊपर दूसरे श्रावक क्रोधभाव लाये. तिसको भी लाभ जाण के परमेश्वर ने उसी वक्त रोका तो बडा भारी संग्राम हुवा कि जिसमें १ क्रोड ८० लाख मनुष्यों का घमसाण हुवा अतिक्रोध बधा

तिस क्रोध मेटने में लोकों को शांत करने में परमेश्वर धर्म क्यों नहीं माने. अपि तु निश्चय ही माने और नहीं मानते तो श्रीमुख से श्रावकों को क्रोध करते हुए को क्यों रोकते नहीं २ परमेश्वर तो संग्राम रोकने में मेटने में उपदेश देने में धर्म श्रद्धते हैं परन्तु पाप नहीं श्रद्धते हैं.

पूर्वपक्ष–जेकर भगवान् धर्म श्रद्धते तो फिर विशाला नगरी में जाके संग्राम करते हुए चेड़ा और कोणिक राजा को क्यों नहीं वर्जे. या संग्राम होते पहिले ही क्यों नहीं मना किये. क्योंकि चेड़ा और कोणीक राजा दोनों भगवान् के भक्त थे. तो फिर भगवान् समझाने को क्यों नहीं गये.

उत्तरपक्ष–हे भाई यह तुम्हारा कहना अत्यन्त अल्पज्ञता का है. क्योंकि जैन सिद्धांत का थोडा साक ज्ञाता को भी ऐसी शंका नहीं होती है. परन्तु खैर उत्तर एकाग्रचित्त करके सुनो कि हे मित्र भगवान् चेड़ा कोणीक का संग्राम मेटने में धर्म जाणते थे. परन्तु भगवान् केवल ज्ञानी होने से ऐसा भी जानते थे कि यह अवश्य भावी मिट नहीं सक्ती है इससे भगवान् नहीं पधारे तथा तुम जैनी नाम धराते हो हम तुमसे पूछते है कि संग्राम करने में धर्म हुवा कि पाप.

पूर्वपक्ष–संग्राम में तो एकांत पाप है.

उत्तरपक्ष–जेकर एकांत पाप होता तो फिर पाप छोड़ाने का उपदेश देने में तो तुम्हारे गुरुजी भी धर्म मानते हैं कि नहीं

पूर्वपक्ष–पाप छोडने में तो धर्म मानते है. परन्तु आगामी काल मे पाप करने की मनाई करते हैं.

उत्तरपक्ष-तो भगवान् को जिस दिन से केवल ज्ञान उपजा है तिस दिन से ज्ञान से जानते थे कि अमुक दिन चेड़ा कोणीक के सग्राम होवेगा तो फिर भगवान् ने चेडा कोणीक को तारणे वास्ते एक महीना पेस्तर आके ऐसा उपदेश या त्याग क्यों न कराये कि अमुक दिन तुम्हारे हार हाथी के निमित्त से सग्राम होवेगा सो तुम लडाई मत करना वैर क्रोध नहीं वधाना. ऐसा क्यों न कहा.

पूर्वपक्ष-भगवान् ज्ञान में जाणते थे कि अवश्य भावी नहीं टरे जिससे संग्राम करने का त्याग का उपदेश नहीं दिया मनादि करने को महिने पाहिले नहीं आये.

उत्तरपक्ष-तो भाई कहो महीने पहिली सग्राम का त्याग कराने को भगवान् नहीं आये. तो सग्राम के त्याग कराने में धर्म है कि नहीं.

पूर्वपक्ष-धर्म तो है परन्तु निश्चय ज्ञानवान श्री भगवान् जैसे ज्ञान में फरसना देखे वैसे करे क्योंकि हमारे गुरुजी ने भी इसी ढाल की ४३ मी गाथा में लिखा कि (ज्ञानदर्शन चारित्र को किणरे व ज तो जाणे उपाय रे. करे अनुकपा जीवरी वीर विगर बुलाया जायरे) ४३ ऐसा कहना हमारे गुरुजी का है.

उत्तरपक्ष-तो कहो भाई चेडा कोणीक भगवान के भक्त थे तो इनको सग्राम के होते एक महीने पहिली आके भगवान् सग्राम करने का त्याग कराते तो ज्ञानदर्शन की वृद्धि होती कि नहीं.

पूर्वपक्ष-ज्ञान दर्शन की वृद्धि तो सग्राम के त्याग कराने

में होती है. परन्तु उस वक्त श्री भगवान् ने अपने ज्ञान में चेडा कोणीक के लाभ की फरना नहीं देखी. जिससे त्याग कराने नहीं आये.

उत्तरपक्ष—तो हे मित्र इसी से ही हम कहते हैं कि भगवान् चेडा कोणीक की लडाई मेटने में धर्म जानते थे. परन्तु मिटने की फरना नहीं देखी जिससे भगवान् मेटने को नहीं आये. परन्तु तुम्हारे गुरु भीषमजी जीवदया से द्वेष धार के यह बात क्योंकर लिखदी कि भगवान् ने संग्राम होते पहिले भी उपदेश नहीं दिया. या साधों को उपदेश देने को नहीं मेले. या आप खुद नहीं गये. क्या तुम्हारे भीषमजी आगम्य काल में क्लेश मिटाने में भी धर्म नहीं मानते थे जो ऐसी अनुचित ढाल जोड के लोकों के हृदय से दया उठाने के निमित्त यह चेष्टा करी.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरु भीषमजी तो आवता काल में क्लेश मिटाने में पाप छोडाने में धर्म मानते थे क्योंकि क्लेश मिटाने का उपदेश उनकी बनाई हुई जोड में बहुत है.

उत्तरपक्ष—हे मित्रो तो तुम सोचो कि पाप मेटने का उनका उपदेश था तो फिर ऐसा क्यों कथन किया कि संग्राम नहीं करने का उपदेश चेडा कोणीक को संग्राम करते पहिलीं भगवान् ने पाप जानके नहीं दिया. हा ! हा ! हा ! तुम्हारे मत की विरुद्धता का कथन कहां तक कह सकें परन्तु हे बुद्धिमानो ज्ञाननेत्र से देख के निर्णय करो पक्षपात में मत पडो.

पूर्वपक्ष—आप लोक जीव बचाने से धर्म समझते हो तो

फिर घर २ में जीवों को क्यों नहीं बचाने को जावो या बाज़ार में या मगल में चातुर्मास में ढाढा के पैर नीचे अनेक गजाया मरे उनको खोज २ के इकट्ठे करके क्यों नहीं लावो. जेकर धर्म होवे तो आपको यह काम करना चाहिये.

उत्तरपक्ष–हे भाई जीव बचाने में तो साध को लाभ ही है. परन्तु तुमने कहे वह काम तो साधू का व्यवहार नहीं. सो वह तिससे नहीं कर सक्के है. तिसका हेतु सुनो. प्रथम तो साधू नहीं हनने का उपदेश देना अच्छा समझते हैं परन्तु घर २ में जाके मत हणो इत्यादिक उपदेश घर २ में विस्तार पूर्वक कहने का कल्प नहीं अगर गृहस्थों के घर २ जाके विस्तार पूर्वक उपदेश देवे तो तीर्थकर की आज्ञा का भग होवे.

पूर्वपक्ष–घर २ में साधू को विस्तार से धर्म कथा कहने की मनाई कहा करी है.

उत्तरपक्ष–सूत्र बृहत्कल्प में है सो लिखते है ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्रपाठ–नो, कप्पइ, निग्गंथाणवा, अतरागहसिवा, जावचउगाहंवा, पंचगाहंवा, आइखित्तएवा, विभावित्तएवा, कीटित्तएवा, पवेइत्तएवा, नन्नत्थ, एगणाएणवा, एगवागरणेणवा, एगंगाहाएवा, एगसिलोएणवा, सेवियट्ठिच्चे, नोचेवण, अट्ठिचा, इति ॥ २२ ॥

अस्यार्थः–साधु साध्वी को गृहस्थ के घर में विस्तार पूर्वक चार या पाच गाथा का कथन नहीं करना धर्म नहीं सुनाना. किन्तु कोई समय में सुनाना पडे तो खडे खडे एक श्लोक का अर्थ संक्षेप से सुना देवे. सो वह भी खड़े खडे सुनावे परन्तु

बैठ के नही बृहत्कल्प उद्देश तीसरा सूत्र २२ मा ॥

तो अब देखो सूत्र में विस्तार से धर्मोपदेशना गृहस्थ के घर में सुनाने की भगवंत की मनाई है. तो धर्मोपदेश सुनाने में तो लाभ ही है. धर्मोपदेशना पाप में नही. परन्तु गृहस्थी के घर में ज्यादा देर तक ठहर के धर्मोपदेशना सुनाने में साधू की लोकों में अप्रतीत होती है. लोक निंदा करे. साधू को गृहस्थ के घर ज्यादा बैठने से दूसरे भिक्षुक की भिक्षा की अंतराय होवे. गृहस्थ की स्त्री से राग उत्पन्न होवे. इत्यादिक अवगुण की उत्पत्ति होवे. तिससे साधू को गृहस्थ का घर में विस्तार से धर्मोपदेशना नही देनी कल्पे. ऐसे ही साधूजी जीव बचाने मे धर्म समझते है परन्तु घर घर से जीवों को चुन २ के लाणे से साधू की प्रतीत उठे. और गृहस्थ लोकों में साधू की निंदा होवे जिससे जीव चुन २ के नही लावे गृहस्थ के घर उपदेश देनेवत्.

पूर्वपक्ष—गृहस्थ के घर मे तो एक श्लोक का उपदेश साधू खड़ा थका कह सक्ता है.

उत्तरपक्ष—हां वैसे तो गृहस्थ के घर मे साधू गोचरी आदिक गया थका गृहस्थ को जीव बचाने का भी कह सक्ते है. स्वयं भी बचावणे लायक होय तो बचाय लेते है.

पूर्वपक्ष—कोई गृहस्थ त्याग पचक्खाण करने को साधू को बुलावे तो साधू जावे कि नही.

उत्तरपक्ष—जेकर कोई गृहस्थ साधू के समीप आने समर्थ नही होवे तो त्याग कराने को जाय.

पूर्वपक्ष—कोई गृहस्थ कहे कि हे महाराज अमुक ठिकाने

जीव मरते है आप जाके बचावो. तो जावे कि नही जावे.

उत्तरपक्ष–हां जो जीव गृहस्थ से बचते नही होवें और साधू के ही उपदेश से बचते होवें तो अवश्य बचाने को जावे.

पूर्वपक्ष–कोई आके कहे कि अमुक ठिकाने ईलियां निखरी हुई पड़ी है. आप जाके बचावो तो जावे कि नही.

उत्तरपक्ष–ईलियादिक तो गृहस्थ भी बचा सक्ता है तो फिर साधू की क्या जरुरत है. क्या ईलियां बचाने मे उपदेश देना पड़े जो साधू को बुलाने आवे. ऐसे छोटे जीव को तो गृहस्थ भी बचा सक्ता है साधू को बुलाने के लिये क्यो आवे. हां अलबत्ता कोई मोटा पचेन्द्री जीव गृहस्थ मारता होवे. और गृहस्थी उस जीव को छोडाने समर्थ नहीं होवे और साधू के उपदेशादि करके छोडने को संभव होवे तो जरूर जाके छोड़ावे परन्तु जो काम गृहस्थ सहज से कर सके उसमें साधू को जाने की जरूरत क्या है.

पूर्वपक्ष–कोई जगह लटधनोरया प्रमुख बहुत जीवो का गंज है उसको कोई गृहस्थ ने नही देखा तहा साधू ने देखा तो उस जीवा का गंजकू सोज के पात्रे प्रमुख में भर भर करके एकांत छायादिक में छोडे कि नही.

उत्तरपक्ष–हे भाई जीवों की करुणा में तो धर्म है परन्तु साधू का व्यवहार सोवे नही इस वास्ते नही सोजे. सो ऐसे ही हम तुमसे पूछते है कि तुम्हारे गुरुजी धर्म सुनाने मे धर्म समझते है तो दो चार पंथ मिले तहा खडे हो के ईसाई पादड़ियों की नाई उपदेश गली गली में चौक चौक में क्यों नही सुनावे.

पूर्वपक्ष–साधू को तो योग्य स्थान में बैठ के उपदेश सुनाना

योग्य है. परन्तु गली गली मे चौक चौक में ईसाई पादरियों की तरह नहीं सुनाते हैं.

उत्तरपक्ष—क्यों नही सुनाते धर्म का काम है. इससे तुम्हारे जितने साधू होय उतने सर्व गली गली में सुनावे तो बहुत लाभ होवे कि नही.

पूर्वपक्ष—व्याख्यान सुनाने में तो लाभ ही होता है परन्तु ऐसे गली गली चौक चौक में खड़े होके सुनाना साधू का व्यवहार नही शोभे.

उत्तरपक्ष—बस भाई इसी तरह से समझ लेवो कि जीवदया में साधू धर्म समझते हैं. मौका होवे तो बचाने का उपदेश देते हैं. स्वयं बचाते भी है परन्तु ईलियां का गंज नही सोजे इसका कारण तो यह है कि जैसे व्याख्यान भी गली गली में सुनाने का व्यवहार नहीं शोभे ऐसे यहा भी समझ लेवो. जीव दया से छोडना अच्छा है. और करुणाभाव रखना चाहिये जिससे आत्मा का कल्याण होवे. प्राणी की अनुकंपा से साता वेदनी का बंधना सूत्र भगवतीजी का पाठ से है. सो पाठ लिखते हैं सुनिये

सूत्र—कहणं, भंते, जीवा, साया, वयणिज्जा, कम्मा, कज्जई, गो, पाणाणु कंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए. इति ॥

अब देखो यहां भी कहा कि प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकपा करने से साता वेदनी बंधने का कहा तथा सूत्र ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में मेघकुमार ने हस्ती का भव में प्राणी भूत जीव सत्वकी अनुकपा करने से ससार को

पड़त करा.

पूर्वपक्ष–मेघकुमार ने तो हस्ति के भव में एक ससले की दया पाली जिससे ससार पडत करा. परन्तु दूसरे मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव से संसार पडत नहीं करा

उत्तरपक्ष–हे भाई ससले को बचाने से तुमने ससार पडत करना रूप फल मान लिया तो जीव बचाने से लाभ तो तुम्हारे कहने से ही सिद्ध हुवा. और ससले के सिवाय जो एक योजन का मंडल में जीव अग्नि से बचे उन जीव की करूणा से मेघकुमार का जीव ने संसार पडत नहीं करा यह कहना भी तुम्हारा अपने स्वच्छदपने का है क्योंकि सूत्र का अभिप्राय तो ऐसा है कि ससले के कारण से सर्व जीवों पर दया करी. ससला तो मुख्यता में है परन्तु गौणता में तो सर्व जीव मडल के लेना ऐसा संभव होता है.

पूर्वपक्ष–ऐसा सूत्र ज्ञाताजी में कहा लेख है.

उत्तरपक्ष–हा भाई ऐसा ही सूत्र ज्ञाताजी में खुलासा लेख है. सो ध्यान लगा के श्रवण करो.

सूत्र–तंससयं, अणुपविट्ठ, पासइ २ त्ता, पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, सत्ताणु कंपयाए, सेपाए, अतरा, चेव, संधारिए, णोचेवण, णिक्खित्ते, तएणं, तुम, मेहा, ताए, पाणाणु, कंपयाए, जावसत्ताणुकपयाए, ससार परित्तीकए,—इति.

अस्यार्थ.–ते ससये पेठ भते देखे. देखी ने प्राणी बेइन्द्रियादिक जीवनी दया थी. सत्त्व पृथ्वी, पाणी, अग्नि वायु तेहनी दया थकी अतरागीचाले निर्धार उचो तिमज पग राखे. चेव निश्चय धरती पें पगमूके नहीं. तिवार पछी तू हे मेघ ते

प्राणीनी अनुकंपा दया थकी जाव सत्व पृथिव्यादिक नी दया थकी शशा जीवनी दयाये करी संसारनो परीत कीधो. इति सूत्रार्थः.

अब देखो प्रकट पाठ में ऐसा कहा कि (पाणाणु कंपीए) परन्तु ऐसा न कहा कि (सस अनुकंपीए) जेकर केवल ससले को ही दया का कथन होता तो सूत्रकार (सस अनुकंपीए) ऐसा ही क्यों नहीं कह देते. परन्तु नही ससले के कारण से समस्त जीवों पर करुणा आई. तिससे ससार पड़त किया तथा जहां एकही जीव की करुणा करी. वहा पाठ भी एकही कहा है. जैसे सूत्र भगवतीजी का शतक १५ वा मे जहां भगवान् ने गोशाले को बचाया है. तहा ऐसा पाठ है.

सूत्र—तएणं, अहं, गोयमा, गोसालस्स, मंखलि, पुत्तस्स, अणुकंप, ट्ठयाए, इति ॥

यह देखो श्री भगवान् ने एक गोशाले की ही दया करी तो एक गोशाले का हीज नाम कहा. तैसे ही जो एक ससले की ही दया मेघकुमार ने हस्थी के भव में करी होती तो ऐसा पाप पाठ होता कि (सस्स, अणुकंप, ट्ठयाए) परन्तु ऐसा पाठ सूत्र में नहीं. सूत्र में तो (पाणाणु, कंपयाए) इत्यादि पाठ है. इससे ससले का निमित्त से घणे जीवों पर करुणा आई ऐसा सभव होता है. इति.

अब देखो तुमतो कहते हो कि जीवणो वछे तो एकातपाप होवे. और भगवंत तो ठाम ठाम सूत्र मे जीव बचाने से संसार का पडत करना आदिक महा लाभ कहा है.

पूर्वपक्ष—जीव का दया रूप जीवणा वछे सो धर्म में है ऐसा

सफा पाठ बतलावो.

उत्तरपक्ष—हे भाई हमने बहुत खुलासा सूत्र उत्तराध्ययन का २२ मा अध्ययन का पाठ दिखलाया कि नेमीनाथजी ने जीव बचाने का इनाम दिया. बधाई दी. जीव छोडाये. या प्रश्न व्याकरण का अति स्पष्ट पाठ दिखलाया कि (सव्व,जग, जीव, रक्खण, ठयाए, पावयण, भगवया, सुकहियं,) देखो सर्व जीवों की रक्षा करने वास्ते भगवत ने प्रवचन सिद्धात फरमाये तो इतना तो समझदार बालक भी जान सक्ता है कि जीव का जीवना वंछे बिना जीव की रक्षा कैसे होवे. तो फिर तुम परमेश्वर के वचनों को क्यों नही श्रद्धते हो.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी कहते है कि ऐसा पाठ तो पाचो संमरद्वार में आता है तो जीवरक्षा में धर्म तो पीछे परिग्रह रक्षा में भी धर्म कहनो.

उत्तरपक्ष—अरे भाई पाचो समर का पाठ एकसा नहीं. तुम गुरुजी का कथन पर ही विश्वास मत पकड बैठो. जीवरक्षा पाठ है. परन्तु परिग्रह रखण ठया. ऐसा पाठ नही है.

पूर्वपक्ष—तो पचमा समर द्वार का कैसा पाठ है.

उत्तरपक्ष—सुनो भाई लिख कर बताते है एकाग्र चित्त करके श्रवण करो.

सूत्रपाठ—परीग्गह, वेरमण, परिक्खण, ठयाए, पावयण, भगवया, सुकहियं, इति.

अस्यार्थः—यह प्रत्यक्ष परिग्रह वेरमण रूप व्रत राखिवाने अर्थे श्रीसिद्धात श्रीमहावीर भगवंत ने रूडी परे कहायो ॥इति॥

अब देखो यहा (परिग्गह, वेरमण, रक्खण, ठयाए) पाठ

कहा परंतु (परिग्गह, रक्खण, ठयाए) पाठ नहीं कहा. यानी परिग्रह की विरती रूप व्रत की रक्षा का पाठ है. परतु परिग्रह को राखने का पाठ नही. पहिला संमरद्वार का और पांचवा संमरद्वार का सरीसा पाठ नही. तो हे भाई तुम अच्छी तरहे से विचार लेवो कि पहिला संमरद्वार का और पंचमा संमरद्वार का पाठ में यह प्रत्यक्ष फेर है परंतु एक सरीसा नही है.

पूर्वपक्ष—जैसे यहा भी परिग्रह की निवृत्ति रूप व्रत को राखने का है तैसेही पहिले संमरद्वार मे प्राणातिपात वेरमण. उसकी रक्षा यानी हिंसा से निवृत्तरूप व्रत की रक्षा करने का कथन समझ लेना.

उत्तरपक्ष—हे अल्पज्ञ मित्र अनंत ज्ञानी श्रीमहावीर प्रभुजी का श्रीमुख का कथन से व्यतिरिक्त वर्तने वाली तुम्हारी स्वच्छंदपणा की कथनी को कौन बुद्धिमान पुरुष मानेगा. अपितु संसार समुद्र से डरने वाला तो परमेश्वर के हीज वचनों को मानेगा क्योंकि श्रीभगवान ने तो सर्व जगत के जीवों की रक्षा करनी फ़रमाई है (सव्व, जग, जीव, रक्खण, ठयाए,) ऐसा पाठ है कि सर्व जीवों की रक्षा निमित्ते परमेश्वर ने सुत्र रचे है परन्तु केवल यूं हीज नहीं कहा कि प्राणातिपात वेरमण की रक्षा वास्ते सूत्र कहे तो फेर तुम जीव दया से द्वेष क्यों रखते हो. परमेश्वर ने तो जीवरक्षा ठाम ठाम कही है. और जीवना वछे विदून जीव रक्षा होती ही नहीं. कारण विना कार्य नहीं होता है जैसे मृतिका विना घट भी नहीं होता है. तैसेही जीवणा वंछे विना जीवरक्षा कभी नहीं होती है.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो कहते है कि परिग्रह रक्षा करने

से भी परिग्रहा अनर्थ करे हैं. वैसेही असंयती जीव की रक्षा करने से भी असंजती जीव अनर्थ करते हैं इसलिये जीवरक्षा और परिग्रह रक्षा सरीसी कहते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई यह कहना अत्यन्त विरुद्ध है. क्योंकि प्रथम तो हमने सूत्र का पाठ दिखलाया है कि (सव्व, जग, जीव, रखण, ठयाए,) ऐसा पाठ तो सूत्र में है. परंतु (परीग्गह, रख्खण, ठयाए,) ऐसा पाठ कहां भी नहीं है. जेकर (परीग्गह, रक्खण, ठयाए,) ऐसा पाठ को भी सिद्धांत में बता देवो तो हम तुमको धन्यवाद देवें. और तुमको ठीक समझें परंतु सिद्धांत में तो कहां पि नहीं है तो परिग्रह सरीसी जीवरक्षा भी कहणी मिथ्या है. क्योंकि परिग्रह की रक्षा तो सूत्र में कही नहीं. और जीवरक्षा तो ठाम ठाम सूत्र में कही है और फिर हम तुम से पूछते है कि एक भाई ने तो कीडी पर पग नहीं दिया. और एक जणे ने पैसे पर पग नहीं दिया. तो कहो नफा किसको हुवा.

पूर्वपक्ष–नफा तो जीव पै पग नहीं देनेवाले को हुवा परंतु पैसे पर पग नहीं देने वाले को क्या नफा हुवा. क्योंकि जीव पै पग नहीं देणे से तो प्रत्यक्ष करुणा आई. जिससे करुणा का नफा हुवा. परंतु पैसे पर पग नहीं देने से तो करुणा होवे ही नहीं और सूत्र में भी (पाणाणु, कंपीए) कहा. परन्तु परिग्गहाणु, कंपीए नहीं कहा. और मेघकुमार को भी पाणाणु, कंपीए से संसार पडत करने का कहा. परन्तु ऐसा कहां भी कथन नहीं कि पैसा आदि पै पग नहीं देने से संसार पडत कोई ने भी करा.

उत्तरपक्ष—तो फिर हे भाई तुम्हारे गुरूजी का कहना ऐसा था कि जैसे परिग्रह की रक्षा वैसेही जीव की रक्षा यह कहना अनंत तीर्थंकर केवली साधु,साध्वी की श्रद्धा से विपरीत श्रद्धा का हुवा

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो ऐसा दृष्टांत देते है कि जैसे कोई चोर चोरी करता हुवा को साधू उपदेश देवे तो धन राखण को नहीं देवे. परंतु चोर को तारणे को देवे. तथा कोई कसाई बकरा मारे तो बकरे बचाने को साधू उपदेश नही देवे परन्तु कसाई को तारणे वास्ते उपदेश देवे क्योंकि धन बचाने को उपदेश देवे तो धन से संसारी पाप करे तो साधू को उसकी अनुमोदना रूप पाप लगे तथा बकरे बचाने को उपदश देवे तो बकरा बचे तो अनेक हरी खावे. कच्चा पाणी पावे इत्यादिक बकरा पाप करे तिराकी अनुमोदना रूप पाप बकरे को बचाने वाले को भी आवे. इस वास्ते जीव बचाने में हमारे गुरुजी पाप कहते है.

उत्तरपक्ष—हे भाई वास्तव में तुम्हारे गुरु भीपमजी और जीतमलजी ने तुम्हारे ग्रथो में ऐसा दृष्टात भोले लोकों को निर्दय करने को कहा है तथा तुम्हारे गुरु ऐसे चित्राम के पाने तथा कंकरमेल के भोलों को भरमाते है और एकात मिथ्या कहते है सो ध्यान देके सुनो कि प्रथम तो यह दृष्टांतही तुम्हारे गुरु ने अपनी श्रद्धा से ही विपरीत लोकों को भ्रमाणे के लिये कहा है. क्योंकि तुम्हारे गुरु की श्रद्धा तो वर्तमान काल में जीव मारता हुवा को चोरी करते हुए को उपदेश देने में पाप यानी मनाई करने में पाप कर्म लगना कहते है उसका कथन

हमने ऊपर तुम्हारे गुरुजी की ढालो से ही लिखा है. क्योंकि जेकर कसाई को मारते हुए को तारणे में उपदेश देने में धर्म समझते हो तो श्रावक को तारणे निमित्त उसके पग के नीचे जीव बतावे उसमे पाप क्यों कहा. या चेड़ा कोणीक राजा का सग्राम भगवान ने पाप जानके नहीं मिटाया ऐसा क्यों कहा. तो निश्चय हुवा कि तुम्हारी श्रद्धा तो बकरे मारते हुए कसाई को उपदेश देने की है नहीं तो फिर यह दृष्टात का देना चित्राम आदि का देखाना फक्त लोकों को बहकाने के लिये ही ठहरा तथापि हम इसका उत्तर देते है सुनिये कि बकरे को बचाने का उपदेश तो प्रत्यक्ष करुणा मे ही है और कसाई भी तिरता है. इसलिये साधु कसाई को तारणे को और बकरे को बचाने को उपदेश देते है जैसे कि कोई शीलवती सती का कोई दुष्ट पुरुष शील खडन कर रहा है. तो साधु उस शीलवती सती का शील बंछते हैं और दुष्ट पुरुष को भी पाप से बचाते है वैसे ही जीवदया में समझ लेवो और परिग्रह की रक्षा मे तो करुणा का कारण नहीं तो फिर अच्छती वार्ता का कथन क्यों कहना कि परिग्रह की रक्षा वास्ते उपदेश नही देना फिर यह भी प्रत्यक्ष दीखता है कि जीव बचाने का उपदेश देवे उस वक्त तो जीवों का ही कथन करा जाता है कि हे भाई यह जीव बिचारे गरीब है अनाथ है इनको दुख उत्पन्न होता है. इनको मत हण इत्यादिक कह करके उपदेश दिया जाता है तो प्रत्यक्ष जीवों की करुणा रक्षा ही हुई परन्तु चोर चोरी करे उस वक्त तो ऐसा नहीं कहा जाता है कि यह परिग्रहा गरीब दुर्बल है इन गहने आदिक को दुख होता है तू इसको मत ले ऐसा

तो उपदेश नहीं होता परंतु उलटा ऐसा कहा जाता है कि यह परिग्रह पाप का कारण है. अनर्थ मूल महा वैर विरुद्ध का करने वाला है परिग्रह राखना खोटा है. ऐसा कहके चोरी छो- ड़ाते हैं परन्तु जीवदया का उपदेश में तो भगवान् ने कही भी नहीं कहा कि यह जीव दुष्ट हैं. पापी है आगामी काल में पाप करेगा. तू इसको मत मार ऐसा तो नहीं कहा तो परिग्रह को तो अनर्थकारी इत्यादिक कह के उपदेश देना तो होता है. परन्तु जीव के विषय में ऐसा नहीं कहा जावे कि यह जीव दुष्ट है इनको मत मारो ऐसा तो कहीं भी नहीं कहा है. अगर कहीं भी लिखा होवे तो कहो.

पूर्वपक्ष–परिग्रह को तो हमारे गुरुजी भी खोटा बता के उपदेश देते हैं कि परिग्रह खोटा हैं इसको मत रक्खो परंतु यह जीव पापी हैं खोटे हैं इनको मत मारो ऐसा नहीं कहते है उलटी ऐसी गाथा जोड़ के कहते हैं (यह जीव गरीब बपड़ा एवा जीव अनाथ हो गोतम पुकारें कुण आगले जारी करे हर कोई घात हो गौतम इति) ऐसे गरीब बता के नही मारने का उपदेश तो हमारे गुरुजी भी देते हैं.

उत्तरपक्ष–हे भाई तो फिर गुरुजी ने परिग्रह को और जीव को एक सरीसे कहके लोकों को क्यों बहकाये.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते हैं कि जीव बचाने के उपदेश देवे तो जो जीव जीवता रहे. और जो वह पाप करे उस पाप का हिस्सा बचाने वाले को और बचाने का उपदेश देने वाले को भी आवे. इससे जीव बचाने का उपदेश नहीं देना ऐसा कहते है.

उत्तरपक्ष—हे भाई यह बात असत्य कही. क्योंकि जीव बचाने का उपदेश देनेवाला तो जीव की करुणा करने वाला है. परन्तु उस जीव को पाप कराने का कामी नहीं. जैसे कि कोई पुरुष ऊपर से छटक के पड़ता है. और कोई पुरुष ने झेल लिया. पड़ने वाला पुरुष बच गया. वह पुरुष चोरी आदि पाप करे तो सजा चोरी करने वाला पावे. परन्तु बचाने वाला नहीं पावे. बचाने वाले ने तो अपना धर्मरूप लाभ वास्ते करुणा करी सो फल ही हुवा. जैसे मेघकुमारजी ने जीवों की करुणा करी तो उनको तो धर्म का फल ही हुवा. और जीव पाप करेगा तो वह भुक्तेगा. परन्तु बचाने वाले को पाप नहीं. तथा जेकर बचाने वाले को पाप लगे तो मेघकुमार हाथी का भव में चार कोश का मंडल बनाया था. तहां अनेक सिंह सियाल मृगादिक जंगल के जीव अग्नि के दव से बच गए. और जीव जीवते रह गये. तो फिर बचाने का फल तो परमेश्वर ने बताया. परन्तु जो जीव जीवते रहे उसका पाप हाथी को लगा होता तो फिर भगवान् पाप क्यों नहीं बता देते. सो तो सूत्र में कहीं भी नहीं कहा. तो निश्चय जानो कि तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध नहीं क्योंकि जीव बचाने में पाप नहीं बल्कि दया धर्म है जीव की रक्षा करणी उसी का नाम दया सूत्र में कहा है और हमने प्रश्न व्याकरण का पाठ टीका सहित ऊपर लिखा है. तथा फिर भी तुमको याददास्ती के लिये लिखते है सो याद रक्खो (दया) ११ यह साठ नाम पहिले संमरद्वार के है उनमें का ११ मा नाम है. इसकी टीका (दया देहि रक्षा) दया कहिये देह के धारने वाले देही यानी जीव तिनकी रक्षा

करना उसको दया कहते है. इति. अब देखो जीवरक्षा करने को ही दया कही तो फिर तुम दया के द्वेषी होके जीवदया में, जीव वचाने में, जीवरक्षा में पाप क्यों कहते हो.

पूर्वपक्ष—तुमतो सिद्धांत के पाठ दिखाते हो परन्तु हमारे गुरुजी तो बहुत दृष्टांत देके कहते हैं कि मरती गाय को वचाई अब वह गाय पानी पीने को गई वहा पानी में बहुत कीड़े थे गाय पानी पी गई. या जीव सहित अन्न खा गई. अब देखो के तो एक गाय मरती. अब गाय को वचाई तो वह गाय जहां तक जीवे तहा तक अनेक जीवों को मारेगी. तिससे उस गाय का पाप गाय वचाने वाले को भी लगे. इससे जीव वचाने में बड़ा पाप कहते है वह हमारी शंका कैसे दूर होवे.

उत्तरपक्ष—भाई तुम्हारे गुरूजी ने जरूर ऐसे दृष्टांत कथन करके और चित्र के पाने में कि जिसमें गाय का आकार जीवों का कुंडे का आकार वना के लोकों को वता के ही लोकों को निर्दयी करे है परन्तु एकाग्र चित्त करके इसका समाधान सुनो कि प्रथम तो गाय वचाने वाले की अपेक्षा करुणा दया करने की है. परन्तु गाय को पाप कराने की नहीं. तथापि तुम्हारे गुरूजी जीव वचावे उससे ही वचाने वाले को पाप लगना वतावे तो उनसे यह पूछना है कि कोई कसाई वकरे आदि पंचन्द्री जीवों का मारनेवाला था उसको तुम्हारे गुरुजी ने उपदेश दिया जिस से उस कसाई ने जीवहिंसा छोड दी. और तुम्हारे गुरु का भक्त हो गया. अब के तो वह कसाई जीव मारके नरक में जाता और अब तुम्हारे गुरुजी ने हिंसा का त्याग उसको कराने से वह कसाई, तुम्हारी श्रद्धा के लेखे

बडा ऋद्धिवान् देव हुवा अनेक हजारों कलश पानी ढोल के अभिषेक स्नान किया हजारों देवांगना से भोग विलास किया. अनेक पल्योपम सागरोपम लगे. यानी असंख्य वर्षों तक देवलोक मे क्रीडा विनोद हास्य आनंद जल क्रीडादिक करके अनेक त्रस स्थावर जीव को वेदना उपजावे पाप करे तो देवता का पाप तुम्हारे गुरुजी को लगे कि देवता पाप करे उसको लगे जेकर कहो कि गुरुजी को लगे तव तो इस पंचम काल के जन्मे आराधिक साधू तो सर्व देवलोक में ही जाते है या. आराधिक श्रावक तो देवलोक में ही जाते है तो फिर जो कोई उपदेश देके साधु श्रावक को करे तो फिर वह उपदेश देने वाले महापाप कर्मी ठहरे. क्योंकि इस मनुष्य लोक का थोडे काल का काम भोग छोडाया. और तुम्हारी श्रद्धापूर्वक अनेक असंख्य वर्षों के देवलोक के कामभोग में दाखिल करने से तुम्हरी श्रद्धानुसार उपदेश देनेवाले जो तुम्हारे गुरु है वह सर्व महापाप करके डूब जावेंगे.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो उपदेश देवे सो तारणे के वास्ते देवे परन्तु देवलोक के आश्रव सेवावणे वास्ते नही देवे. इससे हमारे गुरुजी का अभिप्राय यानी मन देवलोक में मेलने का है ही नहीं तो उनको पाप कैसे लगे. जिससे हमारे गुरुजी को तारणे का धर्म है परन्तु देवलोक का पाप हमारे गुरुजी को नहीं.

उत्तपक्ष—ऐसे ही हे भद्र क्यों नहीं समझते हो कि जैसे तुम्हारे गुरुजी का मन देवलोक मेलने का नही किंतु तारने का है वैसे ही गायां जीवों की मरते हुए की रक्षा दया करने का अभिप्राय दयावंत का है परन्तु गवादिक पशुवों को पाप कराने

का मन नहीं जिससे गवादिक जीवों को मरतें हुए को बचाने वाले को दया रूप महान् उपकार संसार रूप समुद्र तिरने का है. मेघकुमारवत् परन्तु पाप का भागी नहीं.

पूर्वपक्ष–गवादिक जीवों को मरते हुए को छोड़ाने वाला जानता है कि यह जीवते रहेंगे तो जरूर अवश्यमेव यह जीव अनेक विध के पाप खानपान में जीवहिंसा करेंगे तो फिर जाणते हुए ऐसा पापी जीवों को हम क्यों बचावें.

उत्तरपक्ष–तुम्हारे गुरुजी उपदेश देते हैं उस वक्त में अवश्य जाणते है कि जेकर हमारे उपदेश माफिक हिंसादिक पाप के नियम त्याग कर लेवेगा तो त्याग करने वाला शुद्ध त्याग पाल के देवलोक में जावेगा तो फिर तुम्हारे गुरुजी जानते हैं कि हमारा उपदेश से यह देवलोक में जाके बहुत आश्रव सेवेगा. और तुम्हारी श्रद्धा से वह पाप तुम्हारे गुरुजी को भी होवे तो फिर उपदेश देके त्याग नियम क्यों करावे.

पूर्वपक्ष–जीव हम नहीं बचावें तो हमारे क्या नुकसान है. क्योंकि दूसरे का पाप तो हमको लागता ही नहीं तो हम दूसरे के झगडे में क्यों पड़ें.

उत्तरपक्ष–हे भाई जो ससार के जीव पाप करते हैं वो तुम्हारे गुरुजी को लगते ही नहीं फिर दूसरे के झगड़े में क्यों पड़ते हैं कि जो दूसरे को उपदेश देके पाप छोड़ाते है.

पूर्वपक्ष–उपदेश देने का तो साधू का धर्म है और धर्म का काम अवश्य करना चाहिये.

उत्तरपक्ष–वैसेही जीव बचाने में धर्म है इस वास्ते अवश्य जीव को बचाना चाहिये जिससे श्रावक भी उपदेश देते हैं अनेक राजसभा में प्रत्यक्ष दृष्टांत से प्रतिबोध करते हैं जैसे जितशत्रु राजा को सुबुद्धि प्रधान ने खाई के पानी का दृष्टांत देके प्रतिबोधित किया. सूत्र ज्ञाताजी का १२ मा अध्ययन में कहा है. वैसेही अनेक उपाय से जीवों को भी बचावे और साधूजी उपदेश देते है परन्तु जैसे सुबुद्धि प्रधान ने जल का प्रत्यक्ष दृष्टात दिखलाया वैसा नहीं दिखा सकते है परन्तु योग भूमि में उपदेश अवसर देख करके देते हैं वैसेही जहा योग देखते हैं वहा साधू जीव भी बचाने का उपाय अवश्य करते हैं.

पूर्वपक्ष–ऐसे जीव बचाने में धर्म होवे तो सकेन्द्रीजी महाराज बड़े सामर्थ है जो धारे तो सर्व मनुष्य लोक के जीवों को कसाई प्रमुख से हर उपाय से बचा सक्ते है तो फिर वह ऐसा धर्म का काम क्यों नहीं करे.

उत्तरपक्ष–हे भाई जीव का बचाना तो धर्म का काम है परन्तु सकेन्द्रीजी तुम्हारे सरीसे तुच्छ बुद्धिमान् नहीं है. किन्तु तीन ज्ञान करके सहित है सो लोक की स्थिति होनहार जैसा जानते हैं वैसा करते है. परन्तु खैर जीवदया से तो तुम्हारा द्वेष है. परन्तु तुम लोग तेरेपंथी का धर्म वढाने में श्रावक करने में धर्म मानते हो कि नहीं.

पूर्वपक्ष–हा हम बडा उपकार धर्म मानते है कि जो कोई तेरेपन्थी हो जावे तो हम उसकी अच्छी तरह से दलाली करते हैं,

उत्तरपक्ष–तो हे भाई तुम्हारी श्रद्धा के अनुसार तो तेरेपंथी

के मत के सिवाय सर्व भरतक्षेत्र में किसी अन्य जैन मत में साधुपना, श्रावकपना, समदृष्टिपना, है ही नहीं ऐसी तुम्हारी श्रद्धा है. तो सकेन्द्रीजी बडे ज्ञानवान है. श्रोर तुम्हारी श्रद्धानुसार सत्यधर्मधारी तुम तेरेपथी को ही सकेन्द्रीजी जानते होगे तो फिर वह सर्व भरतक्षेत्र के मनुष्यों को क्या नहीं चेतावे कि हे भाई सत्य श्रद्धा तो भरतक्षेत्र में तेरेपन्थियों की हैं. तुम सर्व लोक भ्रम छोडके तेरेपंथी हो जावो. जेकर ऐसी उद्घोषणा करे तो सारा भरतक्षेत्र मे वहुत से भाई तेरेपथी हो जावे. कि जो तुम्हारे साधु श्रावक के उद्यम करने से कई वर्ष तक नही समझते. उससे सकेन्द्रीजी का एक वक्त चेताने से लाखों समझ सकते है तो फिर सकेन्द्रीजी यह धर्म का काम क्यों न करें. जेकर सकेन्द्रीजी आके तेरेपन्थियों का मत की पुष्टि नहीं करे तब तक तुम्हारे साधु उपदेश क्यों देते है.

पूर्वपक्ष—सकेन्द्रीजी तो वडे ज्ञानवान है उनके ज्ञान से जैसा अवसर देखे वैसा करे. परन्तु सकेन्द्रीजी के नहीं आने से हमको धर्म का उद्यम नही छोड़ना चाहिये परन्तु हमारे साधुवों को तथा हम श्रावक लोकों को अवश्य धर्म का काम उपदेशादिक करना चाहिये.

उत्तरपक्ष—हे भाई वेसेही जीवदया से भी द्वेष छोड़ के ख्याल करो कि सकेन्द्रीजी ज्ञानवान् है उनके ज्ञान में देखे वैसा काम करे. परन्तु साधु को श्रावक को अवश्यमेव जीव वचाने रूप कार्य करणा चाहिये. इति.

पूर्वपक्ष—ऐसा जीव वचाने का धर्म आगे किसी ने किया भी है.

उत्तरपक्ष—हे भाई बहुत से महापुरुषों ने किया है. जिनका अधिकार सिद्धांतो में साफ खुलासा लिखा है. जिसका वर्णन श्री नेमीनाथजी के पशु के छोडने का हमने ऊपर सिद्धांत टीका सहित लिखा है तथा एक और भी यहां हम खुलासा साखी लिखते हैं कि सूत्र उपासक दशा का अध्ययन १० मा में श्रेणिक राजा ने पडाहा बजाया. यानी डूडी पिटाई कि कोई जीव को मारो मत वह पाठ लिखते हैं एक चित्त से श्रवण करो.

सूत्र—तेणं, रायगिहे, णयरे, अणाया, कयाइ अमाघाए, घुट्टेयावि, होत्था, इति ॥

अस्यार्थः–तिवारे राजगृही नगर ने विषे एक दाय स्तानने विषे एहवो अमार वर्ताव्यो श्रेणिक राजा कोई जीवने विणासो मती ऐसो दूत द्वार कहावे इति सूत्रार्थः.

अस्य टीका–अमाघातो रूढ शब्दत्वात् अमारिरित्यर्थः ॥

टीकार्थः–अमाघात रूढी शब्द है तिससे इसका अर्थ जीव को मत मारो ऐसी अमारी वर्ताई ॥

कोई जीव मत मारो ऐसा दूत द्वारा कहावे. देखो भाई यह प्रत्यक्ष सूत्र का पाठ है कि राजा श्रेणिक ने जीव नहीं मारने का ढंढेरा फिराया क्योंकि राजा श्रेणिक समदृष्टि श्री वीर भगवान का परम भक्त था सो दया धर्म को ओलख के सर्व शहर के पंचेन्द्रियादि जीव की हिंसा छोडाई. क्योंकि अमाघात नाम जीव मरने को छोडाने रूप दया का है सो राजा ने ढंढेरा फेरा के दया धर्म बढाया. अमारी वर्ताई यह जीव बचाने का प्रत्यक्ष पाठ है

पूर्वपक्ष–अमारी नाम मरते जीव को छोड़ाने का कहाँ कहा है.

उत्तरपक्ष–प्रथम तो यहां ही सूत्र अर्थ टीका में कहा है कि राजा ने मरते जीव को अमारी कराई. यानी जीव को मत मारो ऐसा ढंढेरा पिटाया. तथा फिर सूत्र प्रश्न व्याकरण के पहिला संमरद्वार में भी कहा है. सो हमने ऊपर तो लिखा है परन्तु यहां फिर लिखते हैं (अमाघाओ) ५४ अस्यार्थः (अमारी राखवा नेमिनाथ नी परे. देखो यहां भी कहा कि नेमीनाथ की परें अमारी वर्तावे. यानी मरते जीव को छोड़ावे उसका नाम अमारी है. ए दोनों सूत्रों का एकसा पाठ है और अर्थ का आशय भी एकसा ही है क्योंकि जैसे नेमीनाथजी ने जीव छोडाये वैसे ही श्रेणिक ने ढंढेरा फेरा के जीवों को बचाये तो हे भाई तुम जीव बचाने में द्वेष क्यों कर नहीं छोड़ते हो.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी तो कहते हैं कि ढंढेरा पिटाया तिसमें भगवान् ने धर्म नहीं कहा. सराया भी नही. इससे यह तो कोई राजनीति का काम है. तिसकी हमारे गुरुजी भीषमजी ने अनुकंपा की ढाल पंचमी गाथा.

(सेणिक राय पड्हो । फेरियोये तो जाणों हो मोटाराजां री रीत. भगवत न सरायो तेहने तो किम आवे तिणरी प्रतीत. भ. ३७ पडहो फेरयो हणो मती. इतरी छवो सूत्र में बात. कोई धर्म कहे सेणक तणो. तेतो बोले हो चोंडे झूठ मिथ्यात्. भ ३८ ।।) इत्यादिक कह के यह बात हमारे गले उतारते हैं कि श्रेणिक ने जीव छोडाया सो धर्म में नहीं.

उत्तरपक्ष–तुम कहते हो वैसे ही तुम्हारे गुरुजी कहते हैं. सिद्धांत के वचनों को ठेप लगा के बोलते हैं सो एकांत विरुद्ध है. क्योंकि प्रश्न व्याकरण के पहिले संमरद्वार में कहा कि— (अमाघाओ) अमरी राखवा नेमिनाथ नी परे. ऐसा लेख प्रश्न व्याकरण में है. और वहां प्रश्न व्याकरण में भी इस कार्य का फल भी चतुर्गति संसार तिरणे का कहा है. और वैसे ही राजा श्रेणिक ने भी (अमाघाए, घुट्ठेयावि, होत्था,) ऐसा कहा है. अब देखो प्रश्न व्याकरण में (अमाघाओ) यानी अमरी वर्तने से चतुर्गति ससार का तिरणा कहा और उसी प्रमाणे राजा श्रेणिक ने अमारी का ढंढेरा पिटाया. तो फिर तुम्हारे गुरूजी का कहना असत्य है कि नहीं. जो कहते है कि श्रेणिक को धर्म नहीं हुना. हे भाई गुरुजी का कथन तो देखो कि प्रश्न व्याकरण का (अमाघाओं) पाठ और उपासक दशा का (अमाघा) पाठ दोनों सरीसे हैं. और दोनों का अर्थ भी सरीसा है कि जैसे नेमिनाथजी ने जीव बचाये. वैसे ही श्रेणिक ने जीव बचाये. तो फिर तुम्हारे गुरुजी प्रश्न व्याकरण का पाठ तो निरवद्य दया में कहते हैं. और श्रेणिक का (अमाघा) पाठ को सावद्य दया में कैसे कहते हैं.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी रेणा देवी की अनुकंपा की साक्षी देते है.

उत्तरपक्ष–हे भाई रेणा देवी का कथन में भी अनुकंपा का पाठ नहीं. वहा तो (सम्रुपन, कलुण, भावे) ऐसा पाठ है सो मोह विकार का है. सो हम पहिले कह चुके हैं परन्तु हम तो अनुकंपा की या कोलुण वडिया की साक्षी का पाठ नहीं पूछते

है हमतो (अमाघा ओ) ऐसा पाठ कोई मोहराग में-या सांसारिक वस्तु का कथन मे किसी सूत्र मे आया होवे तो बतावो. याद रखो किसी सूत्र मे कोई जगह ऐसा पाठ नही है. फक्त परमेश्वर की आज्ञा दया का प्रयोजन रूप काम है. वहा ही (अमाघा ओ) शब्द आया है. और उसी माफिक कार्य को राजा श्रेणिक ने किया है. नो जाणो कि भगवत ने तो सराया ही है. अमाघा ओ कार्य अमारी करणे की तीर्थंकर की आज्ञा हे. और वोही राजा श्रेणिक ने करी है तो अमरी का कार्य तीर्थंकर की आज्ञा में है तो राजा को लाभ हुवा. यह सूत्र से ही खुलासा है तो तुम्हारे गुरुजी का दया पै द्वेष का कथन सत्य नही. किन्तु सूत्र का प्रमाण सत्य है. हम ऐसेही मानते हैं तुम्हारी आत्मा का कल्याण चाहो तो तुम भी ऐसा ही कार्य करो जिससे संसार से तिरो.

पूर्वपक्ष—जेकर धर्म का कार्य था तो श्री भगवान् ने ऐसा क्यों नही कहा कि श्रेणिक तेंने भला काम किया या गणधरों ने सूत्र में क्यों नही खोल दिया कि श्रेणिक का जीवहिंसा का रोकणा धर्म मे है.

उत्तरपक्ष—हे भाई सूत्र में तो (अमाघाओ) शब्द कहा. जहां से ही दया का अर्थ धर्म में हो ही चुका. परन्तु दया की श्रद्धा ऊठाने से तुमको मालूम नही पडता है जैसे कि अमृत कहा तो मीठा हो ही चुका तैसे ही (अमाघाओ) कहा तो धर्म में होही चुका और सूत्र मे कई जगह क्रिया और फल दोनों का वर्णन होता है और किसी जगह क्रिया का ही वर्णन होता है. परन्तु जैसी क्रिया तैसा फल समझ लेना सो ही हम दिखाते

हैं कि इसी राजा श्रेणिक ने मन्न दशा श्रुतस्कंध के अध्ययन नवमे में ऐसा ढंढेरा पिटाया कि जिसकोही के राजगृह नगर में फासुक मकान (उपासरा) पाट पाटला या डाभादिक के संथारे जो मुनि के कल्पनीय होवे उसकी जो भगवान् महावीर स्वामी जो पधारे तो उनको आज्ञा दी जो ऐसा राजा श्रेणिक तुमको जनाता है आज्ञा देता है इत्यादिक बहुत विस्तार से सूत्र में कथन है कि जो राजा श्रेणिक ने ढंढेरा पिटाया. परन्तु वहा सूत्र में तो ऐसा कथन नहीं आया कि राजा ने शय्या संथारा मुनि को दिलाने की दलाली करी. तिसका अमुक फल हुवा

पूर्वपक्ष–यह तो प्रकट है कि मुनि को १४ प्रकार का दान देवो, दिवावो. देते हुए को भला जाणो तो महालाभ होता है. यहा सूत्र में नहीं कहा. तो क्या परन्तु अन्य सूत्र में बहुत ठिकाने कहा है.

उत्तरपक्ष–हे भाई वैसे ही समझ लेवो कि राजा ने अमारी का जीव बचाने का ढंढेरा फिराया उसका भी प्रत्यक्ष लाभ है कि जीव दया पालो, पलावो पालते हुए को भला जाणो उसमें महा लाभ है. तो यहा उपासक दशा में नहीं खुला तो क्या. परन्तु प्रश्न व्याकरणादिक बहुत से सिद्धांतों में वर्णन है सो हमने पहिले खुलासा लिखा है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते है कि श्रेणिक ने जीव बचाया यह तो राजा की रीत है. कोई राजा के पुत्रादिक का जन्म या विवाहादिक कारण से यह कार्य किया है परन्तु धर्म में नहीं. तिस विषय में इसी पचमी ढाल में ऐसी गाथा है

(एतो पुत्रादिक जाया परणिया. उत्सवादिक होवणरी सीतला जाण. एहवे कारण कोई ऊपने श्रेणिक राजा हो फेरी नगर में आण. भ. ४० ॥ ते तो रुल्यिा नहीं क्रम आवतां नहि कटि हो तिणरा आगला कर्म. वले नरक जातो रह्यो नहीं. न सिखायो हो भगवंत यह धर्म. भ. ॥ ४१ ॥)

इत्यादिक कथन हमारे गुरुजी श्रेणिक के जीव छोड़ाने के विपय का कहते है.

उत्तरपक्ष–हे भाई देखो २ तुम्हारे गुरुजी ने कैसा अंधाधुंध कथन जीव दया से द्वेषी होके करा है जिसका पार नहीं. कहो भाई तुम्हारे गुरुजी का कहना यह है कि कोई पुत्रादिक का जन्मोत्सव में या विवाहोत्राव में जीव छोड़ाये. यह किस सिद्धांत में है. देखो पुत्र जन्म महोत्सव का विवाह का अधिकार राजा श्रेणिक का पुत्र मेघकुमार का सूत्र ज्ञाताजी का पहिला अध्ययन में वहुत विस्तार पूर्वक संपूर्ण जन्ममहोत्सव विवाह महोत्सव का वर्णन चला है. तो वहा जीव छोड़ाने का कथन क्यों नही चला. या और भी सूत्र भगवतीजी में महावल कुमार का अधिकार. और अंतगढ दशांगजी में अनेक राजकुमार के जन्म विवाहादि महोत्सव अधिकार चले जहां जीव नही हनने का ढंढेरा फेराने का अधिकार क्यों नहीं चला. तो फिर निश्चय हुवा कि तुम्हारे गुरु भीपमजी ने फक्त जीव वचाने से द्वेषातुर हो के. जो कहा भी कथन नहीं था. उसकी असत्य ढाले जोडते नही डरे. हा ! हा ! हा ! मिथ्यात्व का आश्चर्य है. और राजनीति से जीव छोडाये यह भी कहना. स्वकपोल कल्पित है. क्योंकि राजनीति होती तो

कोणीकादिक अनेक राजा की राजनीति का कथन चला. जहां जीव छोड़ाने का कथन क्यों नहीं चला. तो राजनीति का भी कथन करना मिथ्या है. और देखो वर्तमान काल में भी कई राजाओं की राजनीति का वर्णन तवारीखों में है. वहा कहीं भी ऐसा कथन नहीं है कि अमुक राजा ने राजनीति के लिये पशु आदिक गरीब जीवों को नहीं मारने की आज्ञा वर्ताई. देखो मारवाड़ देश के अधिपति महाराज विजयसिंहजी ने दया के लिये करुणा करके मारवाड़ भरके जीवों के ऊपर गोली नहीं चलाने की आज्ञा वर्ताई तो दया निमित्त हुई. क्योंकि राजनीति होती तो जोधपुर के ऊपर या और भी शहरों के ऊपर अनेक राजा राजनीतिवान हुए थे. वह भी ऐसा काम क्यों नहीं करते. परन्तु निश्चय जानो कि गरीब जीवों को बचाना राजनीति नहीं हुई किन्तु धर्मनीति हुई. तथा लिखा कि श्रेणिक के कर्म नहीं कटे. नारकी बंध नहीं हुई यह कहना अत्यन्त विरुद्ध है. क्योंकि जीव बचाने से कर्म तो बहुत कटे. और धर्म दलाली के प्रताप से तीर्थंकर गोत बाधा परन्तु नारकी का तो बध निकाचित् पड गया था. उससे नरक गये. जेकर हठ करके कहो कि श्रेणिक नारकी गये. इससे उनने अच्छी करणी कोई नहीं करी. तो कहो भाई श्रेणिक ने श्री भगवान् की परम भक्ती करी. शय्या संथारादिक आपने दिये. औरों से दिलाये पुत्रादिक को संयम की आज्ञा दी. इत्यादिक काम धर्म के है या पाप के है

पूर्वपक्ष–यह काम तो धर्म के हैं.

उत्तरपक्ष–तो कहो भाई धर्म के कृत्य करें तो राजा को

उसका फल नरक नहीं जाने का क्यों नहीं हुवा. नरक में कैसे गये.

पूर्वपक्ष—धर्म के फल से तो तीर्थकर गोत बांध्या आवते काल में मोक्ष जावेगा. परन्तु नारकी का तो पैलानीकाचित् बंध पड गया उससे गये.

उत्तरपक्ष—हे भाई अब निर्पक्षपणे से तोलो कि राजा श्रेणिक ने जीवदया का भी ढंढेरा फिराया था. और साधू को शय्या उपासरा देने का भी ढंढेरा फेराया था. तो यह तो दोनों काम धर्म के है तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने ऐसी मिथ्या जोड़ क्यों करी कि जीव वचाने से राजा की नारकी बंध नहीं हुई. तिससे राजा का जीव बचाना धर्म में नहीं. किन्तु पाप में है क्या उनको मालूम नही था कि राजा श्रेणिक नरक में गये. इससे राजा श्रेणिक का जीव वचाना पाप में कथन करता हूं परन्तु कोई मेरे से पूछेगा कि राजा श्रेणिक ने भगवान् की भक्ति करी वो भी क्या पाप में है. क्योंकि राजा श्रेणिक नरक में गये इससे.

पूर्वपक्ष—नहीं श्रेणिक राजा ने भगवान् की भक्ति करी वो पाप में कभी नहीं. वंदना नमस्कारादि भगवान् की भक्ति करने में तो धर्म ही है. और नरक का तो निश्चय बंध पड गया था. उससे गये. परन्तु भक्ति आदि का फल तो आगामी काल में अच्छा ही होवेगा.

उत्तरपक्ष—तो हे भाई भीषमजी को यह ख्याल क्यों नहीं आया. जो जीव दया से श्रद्धा उठाने वास्ते ऐसा लिख दिया कि श्रेणिक राजा नरक में गये. तिससे राजा को जीव छोडाने

में धर्म नहीं. किन्तु पाप है ज्ञान नेत्र खोल के ऐसा विचार भीषमजी ने क्यों नहीं किया. कि जीव बचाने का फल तो अच्छा ही है. परन्तु नारकी तो पहिला बंध पड़ जाने से गये हैं. सो भीषमजी का जीवदया पर अत्यन्त द्वेष था. जिससे जीव बचाने में पाप बताया तो द्वेष करने का काम नहीं. भाई राजा श्रेणिक का ढंढेरा जीव बचाने का तीन जने को अच्छा नहीं लगता है. एक तो मांसाहारी, दूसरा कसाई, तीसरा जिसकी श्रद्धा जीव बचाने से उठ जावे इन तीन जने को तो इस काम में पाप दीखता है. बाकी तो सर्व बुद्धिमान् इस कार्य को धर्म में समझते हैं.

पूर्वपक्ष–जेकर ऐसे जीव बचाने के ढंढेरे फेरने में धर्म होता है तो जैनधर्मी तो अनेक राजा हुये हैं तो उन सर्व ने ऐसा ढंढेरा क्यों नहीं फिराया.

उत्तरपक्ष–हे भाई और ने नहीं फिराया ऐसा कथन सूत्र में तो है ही नहीं. परन्तु यहां वर्णन एक श्रेणिक राजा का ही चला है. तो जिसका मतलब आवे उसका कथन चले. परन्तु सूत्र में तो नहीं कहा कि राजा श्रेणिक के सिवाय अन्य कोई राजा ने जीवदया का ढंढेरा नहीं फेराया

पूर्वपक्ष–हमको तो दूसरे राजा ने ढंढेरा नहीं फेराया इससे इस काम में सन्देह है कि धर्म का काम का कथन शास्त्र में क्यों नहीं चला.

उत्तरपक्ष–हे भाई सूत्र ज्ञाताजी के ५ मा अध्ययन में श्रीकृष्ण महाराज ने थावरचापुत्र के दीक्षा के अवसर पर दीक्षा की दलाली करी कि दीक्षा लेवे उसको मेरी आज्ञा है. पिछले

कुटुंब की सार संभार मैं करूंगा ऐसा ढंढेरा फिराया. तिससें एक सहस्र पुरुषों ने दीक्षा ली. तो कहो भाई दीक्षा की दलाली श्रीकृष्ण महाराज ने करी. ढंढेरा फिराया. तो फिर अन्य राजा तो बहुत से जैन धर्मी हुए उनका ढंढेरा फेराने का कथन क्यों न चला. तथा इसी राजा श्रेणिक का कथन दशा श्रुतस्कंध के नवमें अध्ययन में चला कि महावीर जी के साधू को शय्या संथारादिक देने का ढढेरा फेराया. तो अन्य राजा भी बहुत से जैनी थे उनका कथन नहीं चला तो कहो भाई दीक्षा की दलाली मे या शय्या संथारादिक दान की दलाली में धर्म है कि नहीं.

पूर्वपक्ष–इन कामों में तो धर्म है. अन्य राजा का अधिकार का कथन नहीं चला तो क्या परन्तु यह तो प्रत्यक्ष लाभ का कार्य है. कि दीक्षा दिलाना शय्या संथारादिक दान का दिलाना.

उत्तरपक्ष–हे भाई इसी तरह से विचार लेवो कि जीवदया का भी सूत्र में ठाम ठाम फल कहा है. परन्तु कथन तो कोई का चले जिसका बताया जावे. इससे जानो कि अन्य राजाओं का जीव छोडाने का कथन नहीं चला. तो क्या परन्तु राजा श्रेणिक का जीव बचाने का अमारी ढंढेरा फेराने का भी धर्म का कार्य है. तिससे राजा को भी धर्म हुवा ॥ इति ॥

तजो कुवादं भजो सुवादं ॥

अब हमने सिद्धांत के मूलपाठ टीका अर्थ से जीव के बचाने में धर्म सिद्ध किया है,और ऐसा स्पष्ट पाठ प्रश्न व्याकरण के पहिले संमरद्वार में है कि श्री भगवान सिद्धात भी

र्व जगत् के जंतु की रक्षा के लिये फरमाये हैं या और भी
घकुमार ने नेमीनाथजी ने राजा श्रेणिक ने इत्यादिक करुणा-
ान पुरुषों ने जीव बचाये ऐसा मूल सूत्रों का पाठ अर्थ टीका
हित दिखाया है उसको मध्यस्थता ग्रहण करके तुम लोक
समजु होओ तो समज लेवो कि जीव का जीवन वछे विदून
जीव दया पल ही नहीं सकती है और जीव बचाने में धर्म
स्पष्ट रीति से सिद्धांतों से सिद्ध है और हमने ऊपर लिख
दिया है. तो अब तुम्हारा लिखना प्रश्नोत्तर के १२ मा पृष्ट में
है कि जो साधू श्रावक त्रस जीव का जीवना वंछते हैं और
अनुमोदते हैं उन दोनों के विषय में श्री भगवान् ने चौमासिक
प्रायश्चित्त आना कहा है यह तुम्हारा लिखना तो एकांत मि-
थ्या है. क्योंकि प्रथम तो त्रस जीव का जीवना वछने का
प्रायश्चित्त किसी सूत्र में है ही नहीं. और तुमने जीवना वंछने
का चौमासिक प्रायश्चित्त लिख दिया सो मिथ्या है और नसीथ
की साक्षी देते हो वह भी मिथ्या है. जिसका खुलासा हमने
पहिले अच्छी तरह से किया है क्योंकि नसीथ का १२ मा
उद्देश में तो दयावर्णी वृत्ति करके साधू कोई त्रस जीव पशु
आदिक को खोले तो चौमासिक प्रायश्चित्त आवे सो साधू को
कहा. परन्तु श्रावक का तो नाम भी नहीं और तुमने श्रावक
को भी चौमासिक प्रायश्चित्त आना लिखा. तो फिर तुम तेरे-
पंथी श्रावक बहुत से त्रस जीव गाय भैंसादिक को बधन से
खोलते हो बांधते हो तो फिर प्रतिदिन चौमासिक प्रायश्चित्त
का काम करके तुम चतुष्पदों को खोलने बाधने वाले सर्व
श्रावक तुम्हारी गुरु की श्रद्धा के लेख से तुम सर्व श्रावकपना

रहित और जिन आज्ञा बाहिर ठहरे हा ! हा ! हा ! सूत्र में नही लिखा उसको भी सूत्र के नाम ले के लिखते नही डरे. इतना भी नही समझते है कि कोई सूत्र का लेख पूछेगा तिस-वक्त क्या उत्तर देवेंगे. तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के पंचमे अध्ययन के छठे उद्देश में श्री भगवान ने ऐसा कहा कि आज्ञा के बाहिर उद्यम. और आज्ञा में आलिस यह दोय बात मत होवो. शिष्य से गुरु का यह कथन है. तिसका उत्तर. यह तुमने व्यर्थ काला पत्र किया क्योंकि जीव बचाने की परमेश्वर की आज्ञा है. सो हमने सिद्धात से सिद्ध करी है तो फिर यह साक्षी बतलानी निरर्थक है. यहा ऐसा लेख नहीं है कि हे शिष्य तू जीव बचाने का उद्यम मत कर. जीव बचाने की ठाम ठाम परमेश्वर की आज्ञा है. (रक्खा) ऐसा सूत्र प्रश्न व्याकरण का पाठ है. रक्खा नाम रक्षा करने का है. सो भगवान की आज्ञा है. तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचारांग के दूसरे अध्ययन के दूसरे उद्देश में कहा कि श्री वीतराग की आज्ञा के बाहिर धर्म वृत्त करे वह तप संयम से भ्रष्ट है.

(इसका प्रत्युत्तर) यह भी लिखना व्यर्थ है ॥ क्योंकि यहा भी ऐसा नही कहा कि जीव रक्षा करने वाला भ्रष्ट है जीवरक्षा की तो परमेश्वर की आज्ञा है. नाहक इतने लोकों को देखाने वास्ते हास्य रूप लेख लिखा. ३ तथा तुम्हारा लेख है कि सूत्र उवाई के २० मे प्रश्न में कहा है कि श्रावक को केवली मरूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं मानना चाहिये. (इसका प्रत्युत्तर) यह भी तुम्हारा लिखना हमारे प्रश्न विषय में

निरर्थक है. क्योंकि यहां भी ऐसा नहीं कहा कि श्रावक को जीव बचाने का धर्म नहीं मानना. जीव बचाने का तो श्रीमुख से कहा है. कि मैंने सिद्धांत सर्व जीव की रक्षा वास्ते रचे है. सो पाठ दिखाते है सुनिये.

सूत्र-सव्व, जग, उजीव, रक्खण, ठयाए, पावयणं, भगवया, सुकहिय,-इति.

तो फिर जीवरक्षा तो करणे का ही भगवान् का उपदेश है. हा अलबत्ता इस उवाई का वीसमा प्रश्न में श्री भगवान् ने श्रावक को (धम्मीया, सुसीला, सुव्वया, सुपड़िया, णदा, सहुहिति,) इत्यादिक पाठ से श्रावक को श्री भगवान् ने धर्मी सुशीली कहे हैं. परन्तु तुम्हारे गुरुजी तुम तेरेपथी श्रावकों को कुपात्र और जहर के टुकडे समान कहते है. सो गुरुजी से समझ लेवो. कुपात्र पणे के कलंक से दूर होवो ॥ ४ ॥ तथा तुम्हारा लिखना है कि सूत्र आचाराग के दूसरे अध्ययन में श्री भगवान् ने कहा कि साधू की आज्ञा के वाहिर धर्म श्रद्धे उसको काम भोग में खुता कहना चाहिये. और हिंसा करने वाला कहना चाहिये (इसका प्रत्युत्तर) यह भी साची लिखनी सींग के ठिकाने पूछ वतानी रूप है क्योंकि जीवरक्षा का प्रश्न में ऐसा उत्तर देना अनुचित हैं जीव बचाने की तो श्री परमेश्वर की भी आज्ञा है. तो फिर साधु की क्यों नहीं अपितु निश्चय ही है (५) तथा तुमने लिखा कि सूत्र उत्तराध्ययन का २८मा अध्ययन की ३१ मी गाथा में कहा है कि समकिति को चाहिये कि केवली के प्ररूपे धर्म विना अन्य धर्म नहीं माने (इसका प्रत्युत्तर) यह भी लिखना तुम्हारा है तो ठीक परन्तु

तुम्हारी आस्ता उलटी है कि जीव को वचाने की केवली की आज्ञा नहीं. क्योंकि सूत्र प्रश्नव्याकरण का पहिला संमरद्वार का १४ मा नाम (समत्ताराहणा) कहा है. यानी दया है. सोही समकित की आराधना है. तो फिर जीव बचाने का प्रश्न में यह उत्तर देना विपरीत है. जीवदया तो केवली का परम धर्म है. परन्तु इस उत्तराध्ययन सूत्र की ३१ मी गाथा से तुम्हारी श्रद्धा ही उलटी है सो हम ३१ मी गाथा मूल अर्थ टीका सहित लिखते है सो ध्यान लगा के सुनो.

सूत्र–निसंकिय, निकंखिय, निव्वितिगिच्छा, अमूढ, दिट्ठीय, उववूह, थिरीकरणे, वच्छल्ल, पभावणे, अट्ठ ॥ ३१ ॥

अस्यार्थः–तत्व नी शंका न आणे १ अनेरो धर्म न वांछे २ फल प्रति संदेह न आणे ३ मिथ्यात्वी ना धर्म नी महिमा देखीने वाछा न करे. ४ धर्मवंत ना गुण कहे. ५ धर्म थकी सीदाता ने साज देई निश्चल करे. ६ साधर्मिक जनने भक्त पानादि के करी उचित भक्ति नो करवुं ते वात्सल्य कहिये ७ प्रभावना पोताने तीर्थचेष्टा ने विषै प्रवर्तवारूप प्रभावना करे ८ इति सूत्रार्थः.

देखो यहां तो साधर्मी की भक्ति अन्नादिक करके करे तो समकित का आचार कह्या. और तुम्हारे गुरुजी कहते हैं कि धर्म निमित्ते श्रावक को पोषा करने को मकान कोई श्रावक देवे तो उसको वेश्या को देवो चाहे पोषा करने वाले को देवो. ऐसा कहते है तो यह उत्तराध्ययन सूत्र का २८ मा अध्ययन की ३१ मी गाथा से तुम्हारी श्रद्धा वाधित यानी खंडित होती है. परन्तु सिद्ध नहीं. तथा इस गाथा की टीका में भी भक्तपान से साधर्मी की भक्ति करणी समकित का आचार है ॥

तथा च टीका ॥ पुनर्वात्सल्यं सार्धर्मिकाणा भक्तपानी यैं भक्तिकरणं पुनः प्रभावना च स्वतीर्थोन्नति करण एते अष्टौ आचाराः सम्यक्तस्य ज्ञेयाः इति ॥

टीकार्थः-समान धर्म वाले की अन्न पाणी करके भक्ति करणी उसको वात्सल्य कहते है फिर अपने तीर्थ की उन्नति करणी उसको प्रभावना कहते है यह अष्ट आचार समकित का जानना.

अब देखो अन्न पान करके साधर्मी यानी सरीसा धर्मवान् साधू साधू की अन्न पानी करके वात्सल्यता करे. और श्रावक श्रावक की अन्न पानी करके वात्सल्यता करणे में समकित का आचार है. और तुम्हारे गुरुजी तो श्रावक श्रावक को धर्मोपधी पूजणी मुपति आदि देने में भी पाप कहते है ११ मी पडिमाधारी श्रावक को भी फासुक आहार देवे उसमें पाप कहते है सो इस सूत्र का लेख से तुम्हारी श्रद्धा विरुद्ध है. (६) तथा तुम्हारा लेख है कि सूत्र सूयगडाग के पहिला अध्ययन के दूसरे उद्देश की १४ मी गाथा में कहा है कि केवली की प्ररूपणा विना अपने आप प्ररूपणा करे जिसके किंचित् मात्र भी जाण पणा नहीं. (इसका प्रत्युत्तर) केवली भगवान् की तो जीव रक्षा की ही प्ररूपणा ठाम ठाम सूत्र में है परन्तु तुम अपने मन के मते प्ररूपते हो कि जीव बचाने में पाप है तो इससे सिद्ध हुवा कि अपने लेख से आपही जाणपणा रहित बने (७) तथा फिर तुम्हारा लिखना है कि श्री भगवान ने कहा कि (आणाए, मामग्ग, धम्मएप) उत्तरवाद. मेरी आज्ञा में मेरा धर्म यह उत्कृष्टी चर्चा (इसका प्रत्युत्तर) यह भी लेख

तुम्हारी समझ में विपरीत है. क्योंकि श्री भगवान् ने तो जीवदया जीवरक्षा की आज्ञा ठाम ठाम सूत्र में दी है. तो फिर प्रश्न पूछा सो जीव बचाने का. और उत्तर आज्ञा में धर्म का दिया. तो हम तुमको प्रत्युत्तर में कहते है कि परमेश्वर की जीव बचाने की सूत्र में ठाम ठाम आज्ञा है सो आत्मा का हित चाहो तो पक्ष छोडके हमने ऊपर सूत्र की साक्षी बताई सो मध्यस्थता से तोल के सत्यमार्ग की आस्ता लावो. बस हमारा प्रश्न यह था कि गायों को लाय से बाहिर काढने में तुम पाप बताते हो सो सूत्र का पाठ दिखाओ. तिसका उत्तर मे तुमने ऊटपटांग सूत्र का नाम ले के साक्षी लिखी वह एक भी इस प्रश्न के उत्तर विषय में सत्य नहीं तिसका हमने प्रत्युत्तर में मूलपाठ अर्थ टीका सहित विस्तार से लिखी है सो बुद्धिमान् होवो तो बुद्धिबल से अच्छी तरह से विचार करके सत्यपक्ष की धारणा करणी चाहिये. इति प्रत्युत्तर दीपिकाया पंचम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥

(प्रश्न ६)

असनती पोषणिया पन्द्रहवा कर्मादान कहते हो सो और सिखलाते हो सो पाठ दिखलाओ.

उत्तर तेरेपंथियों का—सूत्र मै पाठ (असई जण है) और इसका अर्थ असतीजन है. और असतीजन का भावार्थ असंयती है और असंजती को पोषने में श्री भगवान ने एकांत पाप बताया है जिसके लिये पाठ ऊपर लिख आये है.

इसका प्रत्युत्तर— देखो भाई यह तुम जानते हो कि सूत्र में (असइ, जण, पोसणया,) पाठ है तो फिर तुम्हारे गुरु ने

असंजती पोसणया. एक जकार और सकार के अनुस्वार अधिक क्यों किया क्या तुम नही जानते कि जो कोई जाण के एक मात्रा यानी ह्रस्व दीर्घ भी लिखे तो परमेश्वर के वचनों का उत्थापक है. तो फिर तुम जानते हो कि सूत्र में असइजण पाठ है तो फिर असजती क्यों किया. यानी एक तो सकार कोरा था जिसपर अनुस्वार तुमने लगाया और दूसरा जकार ज्यादा लगाया तो यह प्रत्यक्ष परमेश्वर की आज्ञा का भंग किया. और मिथ्यात्व का उपादान किया. क्योंकि वीतराग के वचनों से न्यून प्ररूपे तो भी मिथ्यात्व. और अधिक प्ररूपे तो भी मिथ्यात्व. तथा आवश्यक सूत्र में भी १४ ज्ञान का अतिचार कहा. तहा भी ऐसा पाठ है कि (हीणक्खर) (अच्चक्खरं) हीन अक्षर बोले अधिक अक्षर बोले तो ज्ञान में अतिचार लागे. जेकर अजाणपणे अधिक न्यून अक्षर बोले तो अतिचार लागे तो फिर जान के सूत्र से अधिक अक्षर मतपक्ष के लिये बोले वह तो ज्ञान के विराधिक ही है. और जाण के मतपक्ष के लिये अधिक अक्षर सूत्र के पाठ में घाले वह तो संसार वृद्धि के करने वाले हैं. समकित और ज्ञान दोनों से रहित है और समकित के विना साधूपणा श्रावकपणा होताही नहीं. तो फिर जो लोग (अस्सइजण) का पाठ को लोप के असजती का पाठ पढ़ते हैं पढाते हैं. और फिर इसी की पुष्टि करते हैं उनका क्या होगा. हे भाई तुम जाण गए हो कि सूत्र में (असइजण) पाठ है तो फिर इस पाठ को असजती ऐसा उलटा क्यों मरोडो सूत्र का भय रक्खो यह जिन वाणी है.

पूर्वपक्ष--(असंजती, पोसणी, अ,कम्मे) ऐसा पाठ हमने कहां बनाया है

उत्तरपक्ष-प्रथम तो तुमने प्रश्नोत्तर में छपाया है. परन्तु कदाचित तुम कह देवो कि यह तो हमने अर्थ लिखा है. तो तुम्हारी पुस्तक तेरेपंथी कृत देवधर्म की उलखाण उसके पृष्ठ २१३ पे सातवां व्रत का अतिचार का पाठ है. तहा ऐसा लिखा है. (असंजती, पोसणीअ, कम्मे) देखो भाई ऐसे खोटे पाठ बनाने का क्या फल मिलेगा.

पूर्वपक्ष-असंजति और असइजण का अर्थ एकही है इससे यह पाठ हमारे गुरु भीपमजी ने बदल दिया तो क्या दोष है.

उत्तरपक्ष-हे मित्रो क्या गणधर भगवान जो सूत्र के पाठ बताने वाले उनसे भी तुम्हारा गुरु भीपमजी को अधिक बोध था. जो गणधर कृत पाठ को उत्थाप के अपना कपोल कल्पित पाठ धर दिया. और दोनों पाठ का एकसाही अर्थ था तो फिर गणधर कृत पाठ को फेरने का क्या प्रयोजन था. जो तुम्हारे गुरुजी ने फेरा. क्योंकि लोभ विना अधिक न्यून कौन करे. परन्तु निश्चय जानो कि अर्थ का अनर्थ करने वास्ते ही भीपमजी ने (असइजण,) इस मूलपाठ को उत्थाप के (असंजती, पोसणीअ, कम्मे) ऐसा पाठ लिखा है.

पूर्वपक्ष-बताइये कि (असइजण) और असंजति जण के पाठ का अर्थ में क्या फरक है.

उत्तरपक्ष-सुनिये भाई तुम्हारे गुरु भीपमजी ने तो (असंजति, पोसणी, अ, कम्मे) पाठ बना के तिसका अर्थ साधु सिवाय सर्व असंजति है. ऐसे तुम्हारे गुरु भीपमजी की बनाई १२ व्रतों की ढाला हैं जिसमें १५ वा कर्मादान की ढाल में ऐसा लेख है (साधू विना सगला पोपीजे पनरमो असंजती

पोप कहीजे) इति देवगुरु ओलखाण पुस्तक का पृष्ठ २१ मा. अब देखो तुम्हारे गुरु का तो यह अर्थ है. अब सूत्र का अर्थ सुनो—

(असती, जन, पोपणीया, कम्मे).

अस्यार्थः—लाभ ने अर्थे असती जे कुशील हिंसक जीव-मार्जार श्वानादिक जीव तथा दास दासी तेनो भाडो कमावा पोखे. तेनो नाम असती, जण, पोसणीया, कम्मे, जाणना इति. तथा टीका में भी कहा है सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उदेश पंचमा की टीका--असइपो सणपत्ति. दास्यास्तद्भाटी ग्रहणाय. अनेन च कुक्कुट मार्जारादि क्षुद्र जीव पोपण मप्पा क्षिप्तं-दृश्यमिति ॥

तथा उपासक दशा का अध्ययन पहिला की टीका— असइ, जण, पोसणीया,—असती जनस्य दासी जनस्य पोपणं तद्भाटिकोपजीवनार्थं यत्तत्तथा. एवमन्यदपि क्रूरकर्म कारिणः प्राणिनः पोपण मसतीजन पोपण मेवेति ॥ १५ ॥

टीकार्थः—असती जन जो व्यभिचारिणी दासी. उनका पोपण करना अर्थात् उनका शरीर का भाडा से आजीविका (कमाई) करने को पोपण करना. तैसेही आजीविका निमित्ते और भी क्रुर कर्म करने वाले प्राणी का पोपण करना. उसको असती जन पोपण कहते हैं. अब देखो दोनों टीका का लेख है कि असती यानी व्यभिचारादि कर्म की करण हारी दासी जिससे कुकर्म करा के उसका देह भाडा की आजीविका व्यापार करने को नहीं पोपणा. तथा हिंसक बिल्ली कुक्कुडादिक को लाभार्थ नहीं पोपणा. पोपे तो १५ वां कर्मादान लगे यह

सिद्धांतों का टीका सहित लेख है. तो फिर तुम्हारे गुरुजी ने साधू सिवाय सर्व को असंजती अर्थ किस सूत्र टीका दीपिका से किया है. हे भाई निश्चय जानो कि (असंजती, पोसणीअ, कम्मे,) ऐसा पाठ इसी खोटा अर्थ के स्थापना के लिये किया है नहीं गणधरजी महाराज कृत (असइ, जण, पोसणिया) ऐसा पाठ है उसको पलटे ही क्यों. परन्तु जिसको परलोक का भय नहीं होवे. और भोले लोकों को भ्रम में पाड़ने के लिएही सूत्र के मूलपाठ. और अर्थ को छोड़ के नवीन पाठ और अर्थ वनाए हैं. परन्तु बुद्धिमान होवो तो निर्णय करना. और तुम्हारा लिखना भी है कि केवली की प्ररूपणा विना अपने मन के मते प्ररूपणा करे जिसको किंचित मात्र भी जाणपणा नहीं. तो जेकर इस वात पर तुम्हारा सच्चा ध्यान होवे तो विचारना कि जो सूत्र के पाठ को फरफार करके नवीन पाठ घड़के मनमान्या अर्थ तुम्हारे गुरुजी ने किया है उसको क्या समझना. सो विचार लेना.

पूर्वपक्ष—साधू सिवाय और कोई भी ५ महाव्रत को पालने वाला नहीं. इससे हमारे गुरु उनको असंजति कहते है और असंजति को पोषे तो श्रावक को १५ वा कर्मादान लागे.

उत्तरपक्ष—हे भाई प्रथम तो पनरमा कर्मादान में असंजति का नाम ही सूत्रपाठ में अर्थ में टीका में कदापि नहीं तो गुरुजी का लेख को तुम कैसे सत्य मानते हो. दूसरा यह भी कहना मिथ्या है कि साधू के सिवाय सर्व असंजती है. ऐसा किसी सूत्र में नहीं है. क्योंकि जब साधू के सिवाय सर्व को असजति कहोगे तो फिर श्रावकों को तो श्री भगवान् ने संजता

संजती कहे हैं. परन्तु असंजती किसी सूत्र में नहीं कहे हैं. तो फिर साधु सिवाय सर्व को असंजती कहने में असंख्य श्रावकों के माथे असत्य आल कलंक चढना है. ऐसा समझना चाहिये. तीसरी वार्ता यह है कि जेकर साधु सिवाय सर्व को असंजति मानोगे. और उनके पोषणे में १५ वा कर्मादान समझोगे. तब जिस श्रावक के १५ ही कर्मादान के त्याग होवे और वह साधू के सिवाय अन्य को पोषे तो उसका सातवा व्रत भांगा यानी खंडन हुवा. ऐसा मानना पड़ेगा. तो फिर भगवान के आनंदादिक १० श्रावक १५ ही कर्मादान के त्यागी थे. और उन सर्व श्रावकों के हजारों गाया थी. दास दासी थे न्यातादिक को जिमाते थे. तो उनका व्रत तुम्हारी श्रद्धा के लेख से भग्न हुवा होगा. क्योंकि १५ ही कर्मादान का तो भगवान् के बारे व्रतधारी श्रावक को करणा, कराणा, अनुमोदना इन तीनों कामों में वर्जित किये हैं तो फिर आनंदादिक उत्कृष्ट श्रावकों के तो १५ ही कर्मादान के करणे, कराणे, अनुमोदने का त्याग था. और गवादिक पोषते थे. न्यातादिक को जिमाते थे. और उनका सातवा व्रत कैसे रहा. सो कहो—

पूर्वपक्ष–पंदरेही कर्मादान श्रावकों को करणे कराणे अनुमोदने का त्याग है ऐसा किस सूत्र में है सो बतावो.

उत्तरपक्ष–प्रथम तो सूत्र उपासक दशा के पहिला अध्ययन में ही है. कि जहा आनंदादिक ने व्रत धारण किया है. वहां ही भगवान ने फरमाया है–

सूत्र–कम्मतोण, समणोवासएणं, पन्नरस्स, कम्मादाणाइं, जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइ,—

अस्यार्थः—कर्म थकी श्रमणोपासक ने १५ कर्मादान जाणवा. पण श्रमणोपासक श्रावक ने अंगीकार करवा नहीं. इति सूत्रार्थः. तथा सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश ५ वा में भी कहा है—

सूत्र—पुण, जेइमे, समणोवासगा, भवंति, तेसिंणो, कप्पंति, इमांइं, पणरस कम्मादाणाइं, सयं, करेत्तएवा, करंतंवा, अणं, समण, जाणेतए.

अस्यार्थः—वलि जे समणोपासक हुवे ते इच्छे नहीं. तेने न कल्पे. यह पंदरे कर्मादान हेतु ते मते पोते करवा. अथवा अनेरा पासे कराववा. अनेरा करता मते भलो नहीं जाणे. एटले अनुमोदे नहीं. इति सूत्रार्थः. अब देखो श्रावक को तो १५ कर्मादान करणे करावणे करते को भला जाणना कल्पे नहीं तो फिर आनंदादिक ने गायों को पोपी न्यात जिमाई उसमें उनका श्रावक पणा भांगा कि रहा.

पूर्वपक्ष—आनंदादिक दश श्रावक तो भगवान् की आज्ञा के आराधिक हुए हैं. इससे उनका श्रावकपणा तो नहीं भांगा.

उत्तरपक्ष—बस भाई देखो इससे ही हम कहते हैं कि तुम्हारे गुरुजी ने मूलपाठ और अर्थ दोनों वदल दिये. उनका कथन पर विश्वास कर बैठना अच्छा नहीं. किन्तु सिद्धांत उपासक दशा में कहा कि (असइ, जण, पोसणिया) असतीजन जो दासीजन उनसे व्यभिचारादिक कराके पैसा नहीं कमाना. या हिंसक बिल्ली श्वानादिक दुष्ट जीव को लाभार्थ नहीं पोषणा. यह सिद्धात टीका दोनों का अर्थ है हमने ऊपर खुलासा लिख दिया है उसको देखके हठवाद छोड़के परमेश्वर के वचनों की

भास्ता, लावो जिससे आनंद पावो. इति. यह तुम्हारा छठा प्रश्न का उत्तर देना विरुद्ध है. सो हमने मूलपाठ टीका से प्रत्युत्तर में लिखा है ॥ इति प्रत्युत्तर दीपिकाया छठा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर सपूर्णम् ॥

(प्रश्न ७)

असंजति का जीवना नहीं वंछते हो सो पाठ दिखलाओ.

उत्तर तेरेपन्थियों का–असंजती का जीवना असंयम जीवितव्य कहा है. और असंयम जीवितव्य का वंछना तथा बाल मरण वंछना. श्री भगवान ने सूत्रों में ठाम ठाम में वर्जित किया है उसको संक्षेप से सूत्र साखी दे के लिखते है सो एकचित्त हो के श्रवण करिये.

(इसका प्रत्युत्तर)–यह तुम्हारा लिखना अत्यंत विरुद्ध है. क्योंकि हमारा तो प्रश्न यह है कि असंजती का जीवना नहीं वंछते हो सो पाठ दिखलावो. क्योंकि जीवना वंछे विदून दया होती ही नहीं है और दया विना धर्म ही नहीं है. और तुम उत्तर में लिखते हो कि असंयम जीवितव्य का सूत्र में ठाम ठाम वर्जित किया है. और असंयम जीवितव्य का जहा जहा सूत्र में नहीं वंछना लिखा है वहा वहा तो मुनि को काम भोग संसार के नहीं वंछने का नाम असंयम जीवितव्य है. परन्तु मरते जीव का जीवना नहीं वंछना नहीं बचाना ऐसा कदापि नहीं लिखा है. क्योंकि जीव के जीवन वछे विदून तो दया होती नहीं. इससे सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संमरद्वार में कहा कि (दया) देही यानी जीव की रक्षा करना नाम दया का है. इससे ठाम ठाम दया पालने का उपदेश सूत्र में है तो फिर तुमने

मिथ्याही सूत्रों का नाम ले के ऊटपटांग लिख दिया. सिद्धांतों में तो जहां जहा असंयम जीवितव्य नाम काम भोग की आशा तृष्णा का निषेध किया है तो यह निषेध जैनमत में तो मुख्य ही है परन्तु जैनमत के सिवाय दूसरे मत के ग्रंथों में भी है. परन्तु जीव रक्षा नही करणी जीव को नहीं बचाना धर्म जान के जीव बचावे जिसको १८ पाप लागे ऐसा कहना तो जैन-सिद्धांत के ग्रंथ भाष्य टीका प्रकरण आदिक में कहां भी नहीं है. केवल भीषमजी की कल्पना से ही यह बात उत्पन्न हुई है. परन्तु भूत भविष्यत वर्तमान कालके तीर्थंकरादि महापुरुषों का यह कहना नहीं है. तीर्थंकरो ने तो ठाम ठाम जीवरक्षा के धर्म का उपदेश दिया है ॥

(महणो महणो) ऐसा उपदेश सर्व तीर्थंकरों का है कि किसी जीव को मत हणो.

पूर्वपक्ष–मत हणो ऐसा उपदेश तो है. परन्तु जीव की रक्षा करो करो ऐसा तो नहीं कहा.

उत्तरपक्ष–हे भाई मत हणो ऐसा कहना तो रक्षा के लिये ही है कि यह जीव गरीब है इनको मत हणो यह तो उन जीवों की रक्षा का ही उपदेश है. सूत्र सूयगडाग का अध्ययन १६ वे में (माहणेत्तिवा) त्रस अने थावर जीव मत हणो ऐसा जिनका उपदेश है. तिनको माहण कहिये. टीका में भी ऐसा साफ़ लेख है ॥

तथा च टीका–प्राणिनः स्थावर जंगम सूक्ष्म बादर पर्याप्तक भेद भिन्नान (माहणत्ति) प्रवृत्तिर्यस्या सौ माहनो–

टीकार्थः–प्राणी जो स्थावर सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता

इनके भेद करके मिले हुए जो जीव उनको मत हणो ऐसा कहने की है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहन कहिये. इति.

यह देखो स्थावर जंगम सूक्ष्म बादर पर्याप्ता अपर्याप्ता सर्व जीव को मत हणो ऐसी जिनकी प्रवृत्ति होवे उसको माहण कहिये. तो विचारो कि जीव का जीवन वंछे विना सर्व जीव की रक्षा का उपदेश होता ही नहीं है. और जीवों को मत मारो. या जीव की रक्षा करो एकही परमार्थ है. जैसे कोई हिंसक पशु आदिक जीवों को मार रहा है. तिसको किसी दयावान ने कहा कि इनको मत मार. दूसरे ने कहा कि इनकी रक्षा कर तीसरे ने कहा इनको दुख मत उपजा इन सर्व का एकही मतलब है सर्व जीव बचाने की ही कोशिस है.

पूर्वपक्ष–हमको मूलपाठ रक्षा का दिखलावो.

उत्तरपक्ष–यह बताया सो मूलपाठ ही है. तथा फिर दिखलाते हैं सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला समरद्वार में (रक्खा) -- अस्य टीका. जीवरक्षण स्वभावत्वात्–टीकार्थः–जीवरक्षा का स्वभाव होने से रक्षा कहते हैं तथा पुनः (सव्व, जग, ज्जीव, रख, ण, ठयाए, पावयणं, भगवया, सुकहियं) यह देखो श्री मुख का वचन है कि प्राणीभूत जीव सत्व की रक्षा के लिये भगवान् ने सूत्र फरमाये है. तो फिर यह कहना तुम्हारा कैसे सत्य होवे कि जीव का जीवन नहीं वंछना अपितु कभी नहीं होवे.

पूर्वपक्ष–हमने तो चवदे ठिकाणे की सूत्र की साक्षी लिखी है.

उत्तरपक्ष–हे भाई वह १४ साक्षियां तुम्हारी ऐसी हैं कि जैसे कोई पुरुष ने किसी को पूछा कि रत्न अमोलक पदार्थ है तिनको तुम खोटे कैसे कहते हो. तब उस रत्न नष्ट करने वाले ने उत्तर दिया कि जैसे बिलोरी पत्थर कठिन होता है तैसे रत्न भी कठिन होते है तिससे एकही सरीसे हैं तो कहो भाई रत्न को बिलोरी पत्थर के तुल्य का उत्तर कभी ठीक नहीं. तैसेही असंयति जीवों की दयारूप जीवणा वंछने में पाप कहते हो ऐसा प्रश्न हमारा है. तिसके उत्तर आशा तृष्णा नहीं वंछनी ऐसा देना अति विरुद्ध है. प्रश्न तो जीवों का जीवन वंछने का और उत्तर तुमने आशा तृष्णा का दिया. तो यह अति विरुद्ध उत्तर है. क्योंकि असंयम जीवितव्य का उत्तर लिखने से. असंयम जीवितव्य नाम तो आशा तृष्णा का है. इससे तथापि हम तुम्हारे उत्तर साथही प्रत्युत्तर लिखते है सो सुनो (क) १ सूत्र ठाणांग के दशवें ठाणे में दश वांछा वर्जी जिनमें असंयति का जीवना मरणा वंछना वर्जा है. असंयम जीवितव्य आसरी (इसका प्रत्युत्तर) देखो भाई तुम्हारी विपरीत वार्ता का कहा तक कथन करिये. सूत्र में तो जीवों का जीवना नहीं वंछना ऐसा नाम मात्र भी नहीं है. हा ! हा ! हा ! मिथ्या साक्षी लिखते नहीं डरे उनको क्या कहें.

पूर्वपक्ष–सूत्र में क्या अधिकार है.

उत्तरपक्ष–सूत्र में दश प्रकार की इच्छा यानी तृष्णा का व्यापार उद्यम नहीं करणा कहा. सो यह पाठ है ध्यान लगा के सुनो—

सूत्र–दशविहे, आशंस, पउगे, पन्नतं ॥

अस्यार्थः-दश प्रकारे आसंसा इच्छा तेहनो प्रयोग यानी व्यापार करवो इत्यर्थः.

देखो सूत्र में तो ऐसा कहा है कि १० प्रकार की इच्छा तृष्णा जगत में होती है. तिसकी चौथी और पंचमी आसंसा का पाठ यह है (जीविया, संसपडगे, मरणा, संसप्पउगे,) अस्यार्थः-मै चिरंजीवी होई जो शीघ्र मुझने मरण हुइजो. इति.

अब देखो सूत्र में तो ऐसा लेख है कि ऐसी तृष्णा नहीं करणी. मैं बहुत काल जीता रहूं. या शीघ्र मर जाऊ। परन्तु ऐसा नहीं कहा कि किसी जीव की अनुकंपा दयारूप जीवणा नहीं वंछना. तो फिर तुमने ऊटपटाग सूत्र से विरुद्ध लेख क्यों लिखा. तथा यहा सूत्र में तो संयति असंयति श्रावकादिक किसी का नाम नहीं. यह तो समुच्चय सर्व जीव के वास्ते कहा है कि बहुत जीवने की या शीघ्र मरने की तृष्णा नहीं राखणी. और तुमने लिख दिया कि दशवे ठाणे में असंयति का जीवना मरणा नहीं वंछना कहा है. हे भाई दशवें ठाणे में तो असंयति का नाम मात्र भी नहीं. वहा तो (जीविया, संसपउगे,) यह पाठ है सो अपने जीवितव्य की तृष्णा का कथन है सो अपने जीवितव्य मरण की तृष्णा नहीं करणी. ऐसा लेख जैन सिद्धांत में तो है ही. परन्तु जैन से अन्य ग्रन्थ मनुस्मृति में भी कहा है. (नाभिनंदेत मरण नाभिनदेत जीवितम्) इति. तो यह तो प्रसिद्ध बात है कि तृष्णा रोकने का उपाय है कि हे चेतन तेरे ज्यादा जीवने की लालसा से तू ज्यादा नहीं जीता है. तो फिर व्यर्थ तृष्णा क्यों करता है यह तो विद्वान क्या परन्तु साधारण लोक भी समझते है. परन्तु जीवों की करुणा करणी

तो जीवों की जीवना वछे विना होती ही नहीं इस-से जीवों की करुणा करने की वांछा का निषेध कोई सूत्र में नहीं है तो फिर तुम वृथा कल्पना करके हठवाद क्यों करते हो. वस इस एक साची मुताविक तुम्हारी चौदेही साची है. तथापि लिखते है. (ख) सूत्र सूयगडांग के तेरहवें अध्ययन की २३ मी गाथा में असंयती का जीवन मरण वंछना वर्जा है. (प्रत्युत्तर) यह भी मिथ्या है. सूत्र में तो यह पाठ है.

सूत्र-णोजीविए, णोमरणाव, कंखी.

अस्यार्थः- साधू पूजा सत्कार नी प्राप्तियें करी जीवितव्य न वाछे अने उपसर्ग परिषह ऊपने थके मरण न वाछे. इति ॥

देखो यहा सूत्र में तो साधू को सुख दुःख में जीवना मरण वंछना वर्जा है. और तुम मिथ्या सूत्र का नाम ले के असंयती का जीवना मरणा वंछना वर्जा. ऐसा असत्य कथन क्यों करते हो जरा परलोक का डर रखो. इसके आगे जो तुमने फेर सूयगडांग का नाम ले के (ग) (घ) (ङ) (च) (छ) के चिन्ह की पांच साची लिखी वह सर्व ऊपर सरीसी है. सो व्यर्थ काला कागज किया. और तिन पांच साचियों में तीसरी साची जो लिखी कि सूयगडाग के तीसरे अध्ययन के पहिले उदेश की तीसरी गाथा में असंयम के अर्थी को वाल अज्ञानी कहा है. (इसका प्रत्युत्तर) यह है कि यह वात तो ठीक है कि साधू को असंयम यानी काम भोग को नहीं वंछना. परन्तु सूत्र सूयगडांग का तीसरा अध्ययन का पहिला उदेश का नाम लिखना व्यर्थ है. क्योंकि वहा पर तुम्हारा लेख का नाम मात्र भी नहीं है. इससे विदित होता है कि तुमने ऊटपटांग

ही मनमाने उत्तर सूत्र का नाम ले के लिखा सो बड़ा अयोग्य है. तथा भूल गये होजो तो खैर. तथा इसके आगे दशवी कालिक सातमा अध्ययन की साक्षी दीवी कि देव मनुष्य तीर्यंचों का परस्पर विग्रह करते देख करके उनके जय पराजय की वाछा नहीं करणी (इसका प्रत्युत्तर) यह भी तुम्हारा लिखना व्यर्थ है. क्योंकि हमारा तो यह प्रश्न नहीं है और साधु दोय लड़ते होवे तो अमुक जीत जावो अमुक हार जावो. ऐसा काम काहे को करे. बने तो उपदेशादिक दे के क्लेश को मेट देवे. तथा फेर तुमने लिखा कि (ञ) वायु वर्षा शीत धुप काल सुकाल उपद्रव का अभाव. इन सात बोलों की होने न होने की वाछा का वर्जन है. (प्रत्युत्तर) प्रथम तो यह तुम्हारा प्रश्न से उटपटाग उत्तर है. और द्वितीय सूत्र में वंछने का नाम ही नहीं. और तुम वछने का कहा सो सूत्र से विपरीत कथन का दोष के भागी हुए. सूत्र में तो यह पाठ है सुनो—

सूत्र—कयाणु, होज्ञ, ये, याणिव्यावाहोउ, त्ति, नोवए,-इति

अस्यार्थः—इतनी बाता कब हो से अथवा मत होवो ऐसा न कहे. देखो सिद्धात में तो साधू को तो भाषा बोलने का मार्ग बतलाया. कि इस तरह कि लाभ अलाभ विषय की भाषा नहीं बोलणी साधू को और तुमने वंछने का लिख दिया.

पूर्वपक्ष—ऐसी भाषा क्यों न बोले

उत्तरपक्ष—इतनी बाता निमित्त प्ररूपणे की है सो सूत्र व्यवहारी साधु को निमित्त नहीं भाषणा इसलिये मनाई है परन्तु दया करने का जीवरक्षा करणे का निषेध नहीं है तथा तुम्हारा लेख (ट) सूत्र सूयगडाग के छठे अध्ययन की गाथा

में आर्द्रकुमार ने कहा है कि भगवान् उपदेश देवें वह अनेरे को तिराने और अपने खुद के कर्मों का क्षय करने को देवे. परन्तु असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे. इति. (इसका प्रत्युत्तर) हे अल्पज्ञ पुरुषों तुम यहां तो अपनी संपूर्ण अविद्वत्ता को दर्शाई है. क्योंकि तुम लिखते हो कि इसी सूत्र की गाथा में कहा है कि जगत् के जीव की रक्षा निमित्ते परमेश्वर उपदेश देवे. और तुमने लिखा कि असंयति के जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे हा ! हा ! हा ! यह ऐसा हुवा कि कोई बालक सूर्य को ढाक के कहे कि सूर्य किसी को नहीं दीखता है. ऐसे बालक की चेष्टा से क्या सूर्य ढक सक्ता है. नहीं नहीं कभी नहीं ढक सकता है. हां अलबत्ता वह बालक अपनी आखों को मीच लेवे तो उसके भावे तो सूर्य का दीखना अदृश्य हो जावे. परंतु औरों को सूर्य नजर आना उस बालक की चेष्टा से नहीं रुक सक्ता है. तैसेही जीवों को बचाने का उपदेश परमेश्वर देवे उसको तुमने अपनी अज्ञान रूप बालभाव की चेष्टा से चाहते हो कि औरों को यह बात नहीं दीखे तो अपना मनमान्या होजावे तिसको छती अच्छती लिखते हो. परन्तु ऐसा कभी नहीं होता. क्योंकि सूत्र का खुलासा पाठ है कि जीव बचाने को महावीर स्वामी उपदेश देवे. हां अलबत्तां तुमने अपनी ज्ञान दृष्टि पर अज्ञान का आच्छादन कर लिया. उससे तुमको जीव बचने का पाठ है तो भी नहीं दीखे. अब हम तो तुम्हारे ज्ञाननेत्र खोलने के लिये अज्ञान का आच्छादन मेटने के लिये सूत्र का मूलपाठ लिखते हैं सो एकाग्र चित्त होकर सुनो. गोशाला ने आर्द्रकुमार को प्रेरा. तब आर्द्रकुमार कहते भये सो सूत्रपाठ—

सूत्र–समिच्च, लोगं, तस, थावराण, खेमकरे, समणे, माहणे, वा, आइखे, मोणोवि, सहस्स, मझे, एगतयसा, रयति, तहचे ॥ ४ ॥

अस्यार्थः–लोक जे षट द्रव्यात्मक, तेने समिच्च एटले केवल ज्ञाने करी जाणीने त्रस अने स्थावर जे प्राणीउ छे एतावता चोरासी लक्ष जीवा योनि छेते ने (खेमकरे) क्षेम रक्षा ना करन हार. तथा (समणे के) श्रमण एटले बार भेदे तपना करनार. तथा (माहणे वा. के.) कोई जीवने मत हणो. एवो जेनो जे उपदेश छे ते माहण अथवा ब्रह्मण एवा जे श्री महावीर देव. ते प्राणीउना हित ने अर्थे (आइखे, माणोविसहस्स, मझे) रागद्वेष रहित धर्म मनुष्य ना सहस्र मध्येप्रकाश ताछता (एगं, तयंसा, रयति, तहचे) ते मज पूर्वनी पेठे एकात पणु, जसाथे छे एनी पूर्वनी अवस्थामा अनेहवणानी अवस्था मा काही पण अतर न थी. इति सूत्रार्थः ॥

अब जरा ज्ञान नेत्र खोल के देखो कि इस सूत्र के मूलपाठ अर्थ में कहा कि श्री महावीर सर्व जगत् के जीवों के रक्षक है क्षेम कुशल के करणहार कहे है तो फिर तुम लोगों ने यह कैसे लिख दिया कि असंयति जीवों को बचाने के लिये उपदेश नहीं देवे.

पूर्वपक्ष–हमने तो हमारे पूज्य डालचंदजी से धारणा कर के कहा है

उत्तरपक्ष–हे भाई तुमने धारणा करी होगी. परन्तु तुम्हारे पूज्य गुरुजी की विद्वता तो देखो. कि सूत्र मे तो जीव को बचाने का लिखा उसको कोई नही बचाना कैसे लिखा क्या इसी विद्वता से तुम पूज्य मानते हो.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी बड़े विद्वान् हैं सो (खेमकरे) शब्द का अर्थ कोई दीपिका में और होगा सो हमको उस आशय से बतलाया होगा—

उत्तरपक्ष–सुनिये भाई सूगडांग की दीपिका भी लिख दिखाते है

तथा च दीपिका–लाभार्थं देशना करोती त्याहं समेत्य लोक यथा वस्थितं ज्ञात्वा त्रस स्थावराणा क्षेमं करो रक्षकः श्रमणो द्वादश धा तपः प्रवृत्तः माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्य स माहनः ॥ इति

दीपिकार्थः–लाभ के अर्थ देशना उपदेश करते हैं. इसी बात को कहते है प्राप्त होकर यथावस्थित लोक को जाण करके त्रस स्थावर जो प्राणि उनका क्षेम कारक अर्थात् रक्षक. बारा प्रकार की तपस्या में प्रतिष्ठित मत हणो ऐसी प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते हैं ॥ इति दीपिकार्थः ॥

अब देखो दीपिका में भी स्पष्ट लिखा कि भगवान् त्रस स्थावर जीव, के रक्षक है. रक्षा का उपदेश देने से तो फिर तुमको तुम्हारे गुरुजी ने कैसे सिखा दिया कि असंयति जीव को जीवने के लिये उपदेश नहीं देवे.

पूर्वपक्ष–न जाणे हमारे पूज्यजी ने सिलांगाचार्य कृत टीका के आशय से हमको सिखाया होगा. क्योंकि हमारे भ्रमविध्व-सन में हमारे पूज्य जीतमलजी ने बहुतसी जगह सिलागाचार्य कृत टीका की साक्षी दी है. तो हमारे पूज्य डालचंदजी भी जीतमलजी के पाठानुयायी हैं. इससे टीका से हमको सिखा-या होगा

उत्तरपक्ष–हां भाई तुम्हारे पूज्य जीतमलजी ने सिलागा-

चार्य कृत टीका की साची कई जगह दी है. अब हम वही टीका लिख के दिखाते हैं.

तथा च टीका—एतद्धर्म देशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारो-भवत्युत नवेति भवतीत्याह (समिच्च लोय मित्यादि) सम्यग् यथावस्थितं लोकं षड् द्रव्यात्मकं मत्वाऽवगम्य केवला लोकेन परिछिद्य त्रस्यतीति त्रसास्त्र सनाम कर्मोदया द्वीन्द्रियादय स्तथातिष्ठंतीति स्थावराः स्थावर नाम कर्मोदय । त्स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामपि जंतूनां चेमं शातीं रक्षा तत्करणशीलः चेमकरः श्राम्यतीति श्रमणो द्वादश प्रकार तपोनिष्टप्त देहस्तथा माहणत्ति प्रवृत्तिर्यस्या सौ माहनो वाह्मणोवा इति ॥

अथ टीकार्थः—इस धर्म करणे से प्राणियों को कोई उपकार होता है या नहीं होता ? इस बात को कहते हैं अच्छी तरह से यथावस्थित जो लोक ६ द्रव्यरूप उसको मान करके अर्थात् केवल ज्ञान से जाण करके, विवेचन करके, त्रास पावे उसको त्रस कहते है. त्रस नाम कर्मोदय से द्विइन्द्रिय आदिवाले प्राणि स्थित रहे उसको स्थावर कहिये. स्थावर नाम कर्मोदय से स्थावर पृथिव्यादिक जाणने वह दोनों त्रस स्थावर जंतु है. उनका चेम शाति रचा करने का स्वभाव होय उसको चेमकर कहते हैं तपस्या विषयक परिश्रम करे उसको श्रमण कहते हैं. १२ प्रकार की तपस्या उसमें तपाया है देह जिसने तैसेही मत हणो ऐसी है प्रवृत्ति जिसकी उसको माहण कहते है ॥ इति टीकार्थः ॥

अब उत्तर कारजी अच्छी तरह से विचारो कि टीका में तो शिलागाचार्य जी अच्छी तरह से व्याख्या करते हैं कि श्री

महावीर स्वामी त्रस, स्थावर सर्व जीवों की क्षेम शांति रक्षा करने का स्वभाव है जिनका ऐसे है और जीवना वंछे विना जीवरक्षा होती ही नहीं. तो कहो भाई अब गुरुजी ने तुमको यह उटपटाग अर्थ का कथन कहां से सिखाया. कि जीव के जीवन वास्ते श्री महावीर जी उपदेश नहीं देते है. वाहरे समझ. खैर अब भी गुरु जी के कथन के साथ मत चलो और शास्त्र देख के मति शुद्ध करो.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी कहते हैं कि भगवान् उपदेश देवे सो गुण वास्ते देवे. तो त्रस स्थावर के गुण क्या हुवा. गुण तो हिंसा नही करे उसको हुवा.

उत्तरपक्ष–हे भाई त्रस स्थावर की रक्षा शांति को करे तव ही रक्षक के गुण होवे त्रस स्थावर जीव के तो अपने प्राण वचने का गुण हुवा. और त्रस स्थावर को वचाने वाला को करुणा दया हुई. और दया से संसार पड़त करनादिक गुण हुवा. तिससे सूत्र के मूलपाठ में लिखा कि श्री महावीर प्रभु स्थावर जीव को क्षेमशाति रक्षा के करण हारे हैं. और दूसरे को भी क्षेमशाति रक्षा करने रूप धर्म उपदेश देते हैं सो जेकर तुमको भगवान का उपदेश की आस्ता होवे तो जीवरक्षा का धर्म श्रद्धो परन्तु जीव रक्षा से द्वेष भाव करके जीव रक्षा में पाप मत कहो. जैसे जीव मारणे वाला जीव के प्राण वियोग करणे रूप त्रस स्थावर जीव के अवगुण करता है. तिससे हनने वाले को भी दुख दुर्गति रूप आदिक संसार में परिभ्रमण का अवगुण होता है तैसे ही त्रस स्थावर जीव की रक्षा करने वाला त्रस स्थावर के प्राण बचाने का गुण करता है तो

रक्षा करने वाला भी संसार समुद्र से तिरता है ऐसी शुद्ध श्रद्धा भव्य प्राणी को धारन करना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि (ट) ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे के तीसरे उद्देश में कहा कि कोई जीव किसी जीव को मारता देखे तो धर्म उपदेश देकर समझावे अथवा मौन रक्खे तथा उठकर एकांत चला जावे यह तीन बोल कहे है परंतु ज़बरन छोड़ाना नहीं कहा है (इसका प्रत्युत्तर) यह लेख भी तुम्हारा तुम्हारी श्रद्धा को काटने वाला है क्योंकि तुम्हारे गुरु भीषमजी ने तो कहा है कि कोई जीव पर पग रखता होवे और दूसरा उसको चेता देवे कि जीव मत मारे तो उस चेताने वाले को तुम्हारे गुरु भीषमजी पाप लगना बताते हैं तो तुम्हारी पुस्तक में अनुकंपा की ढाल चौथी भीषमजी कृत में लिखा है सो देख लेना और तुम्हारा लेख तो मरते जीव को उपदेश देके छोडाने का सूत्र ठाणागजी के तीसरा ठाणा से तुमने लिखा है और भीषमजी का मानना मरते जीव को छोडाने का उपदेश देवे उसमें भी पाप है तिसका कथन खुलासा वार हमने भीषमजी कृत ढालो से ही प्रश्न पाचमा में लिखा है तो हे भाई तुम अपना ही लेख पर कायम रहके जीव बचाने में धर्म की श्रद्धा करो और उलटी श्रद्धा को दूर हटाओ और उपदेश दे के जीव को बचाना ठीक है परंतु उपदेश भी जसे को जैसा दिया जाता है क्योंकि देखो जब कोई श्वान साधू के ऊपर भक्षण करने को आवे तो उसको क्या उपदेश देवे तथा साधू की रोटी कुत्ता खावे तो उस वक्त क्या कहे कि हे भाई कुत्ता साधू की रोटी मत खा या साधू का भक्षण मत कर क्या यह उपदेश श्वान को लगे

पूर्वपक्ष–श्वान को तो धुरकारा देनादिक ही उपदेश होता है
उत्तरपक्ष--बस ऐसे ही जीव बचाने में भी जो उपदेश समझ सके तो उपदेश देवे और धुरकारादिक से भी जीव छूटता देखे तो वह भी जीव के बचाने में उपदेश रूप है करुणा रूप है

पूर्वपक्ष–धुरकारादिक से उसकी आत्मा दुःख पावे और जीव के छुड़ाने में गुण क्या होवे,

उत्तरपक्ष–जीव छुड़ाने वाले को तो करुणा का प्रणाम है परन्तु दुख देने के नहीं क्योंकि कोई लडवादिक खाते होवे तो नहीं छोडावे किन्तु जीव मरता छोडावे तो छोडाने वाले को लाभ हुआ जैसे कोई माता पुत्र को कठिन कह के दवा पिलाती है तो भी वह माता कहलाती है. किन्तु वैरण नहीं. तथा जैसे कोई हकीम बीमार को धमकी दे के अच्छी दवा देवे तो वह उपकारी है. किन्तु वैरी नहीं वैसे जीव बचाने वाला भी कठिन धमकी दे के उसकी हिंसा छोडावे तो गुण का ही कारण है. उस छोडाने वाले को शत्रु नहीं समझना चाहिये तथा तुम्हारा लेख है कि (ठ) सूत्र उपासक दशा के पहिला अध्ययन में ५ अतिचार श्रावक को बताये जिसमें जीवनामरणा वंछना वर्जा है. तथा (ड) साधू और श्रावक दोनों वक्त प्रातःकाल सायंकाल पडिकमणो करे जिसमें पाच संलेपणा की यह पाठी पढ़ी जाती है इह, लोगा, संसभोगा, परलोगा, संसभोगा, जीवियाओ, संसभोगा, मरणाओ, ससभोगा, कामभोगा, संस-भोगा, महा, मुज्ज, हुज्ज, मरणंते, तस्स, मिच्छामि, दुकडं, ॥ इस में अपना जीवना मरणा तथा अन्य लोको का जीवना मरणा वंछा होवे तो मिच्छामि दुकडं लेते हैं. यदि जीवने मरणे

की वांछा में किसी प्रकार का प्रायश्चित न होता तो सलपणा में मिच्छामि दुक्कडं लेने की क्या जरूरत है (इन दोनों उत्तरों का प्रत्युत्तर) हे मित्रो यह गोलमाल कथन कुछ सूत्र का पाठ छिपा के अर्थ को अनर्थ करके तुमने लिख दिया परन्तु हम तुम से पूछते हैं कि तुम्हारे साधुजी जीवना वंछे कि नहीं.

पूर्वपक्ष–हमको तो कहते हैं कि जीवना वंछने में पाप हैं तो वह कैसे वछते होवेंगे.

उत्तरपक्ष–हे मित्र इतना भी तुमको ज्ञान नहीं कि जो तुम्हारे साधु की जीवने की आशा नहीं तो फिर अन्न क्यों खावे धूप से छाया में क्यो आवे सिंह साड सर्पादिक को देख के इधर उधर क्यों टरे जिसके जीवने की वाञ्छा नहीं होवे तो फिर इतने काम क्यों करे रोग आवे तो दवा क्यों लेवो.

पूर्वपक्ष–यह काम तो संयम पालने को करते है.

उत्तरपक्ष–जेकर आहारादिक नहीं करे तो क्या संयम नष्ट होजाता है भगवंत ने तो जो साधू वैराग्य भाव से अन्न त्यागे तो महा निर्जरा कही है तो फिर तुम्हारे साधु आहार क्यों करते हैं देखो रोज आहारादिक जीवने वास्ते खाने और जीवना वंछने में पाप की श्रद्धा रखणी इस से तो रोज पाप जान जान के करता और साम को मिच्छामि दुकडा लेना यह साधूपना कैसे रहवे. फिर तुम्हारे साधु की तो यह प्ररूपणा है कि जाण के एक दोष भी लगावे उस में साधुपणा नहीं तो फिर तुम्हारे साधु जाण जाण के रोज आहार करते है चेले चेली को कराते हैं दवा आदिक खाते हैं साड सर्पादिक से झटपट टल जाते हैं तो यह जाण जाण के जीवना वछते हैं

और जीवना वंछने में पाप भी कहते है तो फिर तुम्हारी श्रद्धानुसार तो तुम्हारे गुरु में साधूपणा कैसे रहा और जो साधू भी जीवने के लिये आहारादिक कायपत्न करते हैं तो फिर श्रावक का क्या कहना इससे श्रावकपना भी कैसे रहा वाहरे वाह श्रद्धा तुम्हारी कि जिससे अपणे कहने से ही अपने मत मे साधू श्रावक का अभाव करा.

पूर्वपक्ष—हमारे गुरुजी तो संयम जीवितव्य वंछते हैं इसलिये आहार करते हैं.

उत्तरपक्ष—हे मित्र एक बात तो तुम्हारे मुख से ही विपरीत ठहरी कि जो तुमने लिखा कि साधू जीवणा वंछे नहीं वंछे तो प्रायश्चित्त का मिच्छामि दुकडा लेते हे और यहा कहते हो कि हमारे गुरु संयम जीवितव्य वंछते हे यह विपरीत और विरुद्ध ठहरी.

पूर्वपक्ष—आहार पानी दवा वगैरह तो श्रीभगवान के शिष्य साधु मुनि भी करते थे और साधू सर्पादिक से टरते थे तो वह क्या जीवणे के वास्ते करते थे.

उत्तरपक्ष—हा भाई जीवने के लिये भी आहारादिक करते थे सांड सर्पादिक से टरते थे.

पूर्वपक्ष—तो अब हमको सूत्रपाठ से दिखलावो कि साधू को जीवने वास्ते आहार करना.

उत्तरपक्ष—हा भाई सुनिये दिखलाते है सूत्र प्रश्न व्याकरण का पहिला संमरद्वार का चौथी भावना का पाठ.

भुंजेज्जा, पाणधारण, ट्ठयाए, इति ॥ अस्यार्थः आहार लिये प्राण धारवाने अर्थे.

टीका–तथा भोजने कारणांतर माह-माणधारणार्थं तथा-जीवितव्य संरक्षणायेत्यर्थः ॥

टीकार्थः–तैसेही और भी भोजन करणे का कारण कहते हैं माण धारण पूर्वक जीवन आयुण्य की रक्षा करने वास्ते। इति टीकार्थः ॥

अब देखो यहां खुलासा पाठ है कि साधु को माण धारणार्थ यानी जीवने के वास्ते आहार करना तो फिर तुम साधु को जीवणा वंछने में पाप कैसे कहते हो तथा सूत्र उत्तराध्ययन के २६ में अध्ययन की ३३ मीं गाथा में भी यह अधिकार है कि मुनि को जीवितव्य के निमित्त आहार करना तथा च सूत्रपाठ (तहपाण वत्तियाए) यहा भी कहा कि माण धारने के अर्थे साधू आहार करे तथा सूत्र ठाणाग का पाचवा ठाणा में ॥ सूत्रपाठ ॥ हयाणवा, गयस्सवा, दुट्टस्सवा, आगच्छ, मास्सभीय, रायंत, उरमणु, पवेसेझा, इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः–घोड़ो हाथी दुष्ट विकराल आवतो थको देखे ते थी वीहतो थको राजारा अंतेउर में पैसे इति ॥

देखो यहां भी कहा कि साधू घोडादिक दुष्ट को देख के डरता हुवा राजा का अंतपुर में प्रवेश करे तो आज्ञा उलंघे नहीं तथा ठाणाग के पांचमे ठाणे दूसरा उद्देश में पाच कारणे साधू चोमासो बैठां पिछे छमच्छरी पडिकम्या पिछे पहिली विहार कर जाय तो आज्ञा उलंघे नहीं ॥ तथा च सूत्रपाठ.

सूत्र–भयंसिवा दुभिक्खं सिवा अस्यार्थः ॥ राजादिक ने भये तथा वैरी ने भय थकी दुर्भिक्षा में अर्थात् भिक्षा नहीं मिले तो इति देखो यहा भी कहा कि भय के वास्ते तथा भिक्षा न

मिले तो चौमासा में विहार कर जाना कहा तो जीवना नहीं वंछते हो चे तो फिर विहार क्यो कर जावे तथा ठाणाग सूत्र का पंचम ठाणे का उद्देश दूसरा में पाठ हैं सो लिखते हैं सूत्र निग्गंथे सेयसिवा, पंकंसिवा, पणाग्गंसिवा, उदयंसिवा, उकसमाणिवा, उवुझमाणिवा, गिएहनिगांथी माणेवा, अवलंव माणेवा, णाइकमई ७ इति सूत्रपाठः ॥

अस्यार्थः–साधू साध्वी को जल सहित जेकादाजीहा वृडिये (पंकंकेता) का दाने विषे (पणगं के) अनेरा ठामनो आविवो पातलो अने ढीलो कादव अथवा फुलण (उदगं के) पाणी माहीं (उकरसमाणी के.) पंकने विषै अनई पत्रकने विषे लपसती (उवु० के०) उदक ने श्रोत्रे ताणी ती ग्रहितो अवलंबन देतो थको आज्ञा उलंघे नहीं इति सूत्रार्थः ॥

अब देखो सूत्र मे तो सफा पाठ है कि डुबती थकी साध्वी को साधू पकड़ लेवे तो भगवान की आज्ञा उलंघे नहीं. यह देखो प्रत्यच साध्वी के जीवने के वास्ते साधू साध्वी को जल से पकड़े अब यह सूत्र साची हमने साधू को जीवना वंछने में दिखाई है सो समझ के मध्यस्थपणा ग्रहण करो.

पूर्वपत्त—तुम तो सूत्र से जीवना बताते हो और हमारे गुरुजी ने सलेपणा का पाठ बताया वह कैसा है क्योंकि सूत्र विरुद्ध तो होता ही नहीं जो एक जगह तो कह दिया कि जीवना वंछे तो प्रायश्चित्त और दूसरी जगह कह दिया कि जीवने के वास्ते आहार करे तो हमको वह संलेपणा का पाठ टीका सहित दिखलावो.

उत्तरपत्त—हा भाई सूत्र विरुद्ध नहीं होता है. परन्तु जो

तुमने उपासक दशा की आवश्यक की साची गोलमाल लिख दी वह सूत्र से विरुद्ध है क्योंकि सलेपणा तो मरणातक काल की यानी मृत्यु आने उस अवसर की कही है और तुम ने हमेश का लिख दिया और है तो अपना सुख दुख का विशेषण से तुमने लिखा जीवना मरणा नहीं वछना सो विरुद्ध है अब हम सूत्र का पाठ टीका सहित लिखते है सो श्रवण करो

सूत्रपाठ—अपच्छिम, मारणतिय, संलेहणा, ज्झूसणा, राहणाए, पंच, अइयारा, जाणियव्वा, न, समायरियव्वा, तंजहा, इहलोगा, संसप्पओगे, १ परलोगा, संसप्पओगे, २ जीविया, संसप्पओगे, ३ मरणा, संसप्पओगे, ४ कामभोगा, संसप्पओगे, ५ इति उपासक दशा का अध्ययन पहिला ॥

अस्यार्थः—अपच्छिम छेहडली आउखे पूर्ण होता संलेहणा कहीजे. तिणरूपणा अण सण अराद्धिवाने विपे श्रमणोपासक श्रावक ने ५ अतिचार जाणवा पर अंगीकार करणा नहीं. ते केहा इहलोके अण सण थका चिंतवे मनुष्य में राजमंत्री हुई ज्यो परलोकरै विषै चिंतवे हुं इन्द्र होइज्यो ? अणसणा लीधे पूजा सत्कार देखी जीवतु वाछे. जे हु घणु जीवु तो श्लाघा घणी होवे. सरीरे पीडा देखी ने चिंतवे. मरण वेगो आवे तो भलो. शब्द रूप रस गध स्पर्श ५ प्रकारना काम भोग चिंते इति सूत्रार्थः ॥

अब टीका कहते है सो ध्यान लगा के श्रवण करिये ।

टीका—जीविता शंसा प्रयोगो जीवित प्राणधारण तदा शसयो स्तदभिलापस्य प्रयोगो यदि बहु काल मह जीवेय मिति अयं हि सल्लेखनावान् काश्चद्वस्त्रमाल्य पुस्तक वाचनादि पूजा

दर्शनाद्वहु परिवारा वलोकना ल्लोक श्लाघा श्रवणा च्चैवं मन्येत यथा जीवित मेव श्रेयः प्रतिपन्नानशन स्यापि यतएवं विधा मदुद्देशेन विभूतिर्वर्तत इति २ मरणा शंसा प्रयोगः उक्त स्वरूप पूजाद्य भावे भावे यत्यसौ. यदि शीघ्र म्रीयेह मिति स्वरूप, इति टीका ॥

अस्यार्थः—जीवित नाम प्राणधारण तिसकी जो अभिलापा तिसका जो प्रयोग यानी बहुत काल मै जी जाउं ऐसा जो मानना उसको प्रयोग कहते है. यह जो संलेखना वाला (संथारावाला) कोई वस्त्र माला पुस्तक स्तुत्यादियों की पूजा देखने से और बहुत परिवार के देखने से लोक की श्लाघा सुनने से कोई संलेखना वाला ऐसा मानता है प्राप्त किया है अनशन (संथारा) जिसने उस पुरुष को जीवना ही कल्याण कारक है. इस प्रकार का विचार में विभूति नही वर्तती है (सिद्धि रूप ऐश्वर्य नही वर्तता है) २ पहिले कहा है स्वरूप जिसका उस पूजा के अभाव में भावना करता है संलेखनावान् यदि शीघ्र मरजाऊ ऐसी भावना करता है ॥ ४ ॥ इति टीकार्थः ।

अब देखो भाई सूत्र का पाठ अर्थ टीका का तो यह लेख है कि पूजा श्लाघा के लिये जीवना नही वाछना संथारा वाले को और पूजा श्लाघा नहीं होने से या दुख उत्पन्न होने से मरण नही वाछना संथारावान् यानी अनशनवान को । अब देखो सूत्र का पाठ अर्थ टीका का तो यह लेख है कि सुख दुख में आशा तृष्णा नहीं करणी और तुमने हे भाई कैसा गोलमाल लिख दिया है कि जीवना वछने से ही साधू श्रावक को प्रायश्चित्त आता है और इस लेख से तुम्हारे मन से साधू

श्रावक का ही अभाव होता है परन्तु तात्पर्य यह है कि पूजा श्लाघा कामभोगादिक न से तो जीवना नहीं वछना. ऐसा अर्थ सूत्रों का परमार्थ सहित है. और दया के वास्ते परजीव की करूणा रूप जीवना वछना वोही अपना सयम जीवितव्य वंछना है. बस यह लेख सिद्धात से यथार्थ है और जो तुम्हारे सरीसे स्वकपोल कल्पित अर्थ करने से अनेक सूत्र के पाठ को धक्का लगता है और साधु श्रावक का अभाव होता है. सो विचार कर के सूत्रार्थ टीका से सापेक्ष अर्थ करना उचित है.

पूर्वपक्ष—संयम जीवितव्य तो हमारे गुरुजी भी इच्छते होंगे. क्योंकि आहार औषधादिक बहुत से यत्न करते है.

उत्तर पक्ष—हे भाई तुम्हारे गुरुजी का मानना ऐसा है तो फिर तुमने लिखा कि साधू अपना जीवना वछे तो प्रायश्चित्त आवे. तो वह लिखना असत्य ठहरेगा. और साधू को जीवना वछना नहीं मानोगे तो साधु जीवने के लिये आहार करते हैं और औषध लेते हैं हाथी घोडादिक से डरते हैं उनमें तुम्हारी श्रद्धा से, साधूपना का अभाव होजावेगा यानी तुम्हारी श्रद्धा परस्पर विरूद्ध होजावेगी और सिद्धात का सापेक्ष अर्थ है वह श्रद्धेगा और अपनी उपाई हुई अशुद्धि को मेटेगा सो ससार समुद्र से तिरेगा. इति तथा तुम्हारा लेख है कि श्री भगवान के दश श्रावक उत्कृष्ट एका भवतारी हुये जिन में से चूलनी पिया सुरदेव चूल शतक सकडाल यह ४ श्रावक पौषा में ये जिनको चलायमान करने के लिये मिथ्या दृष्टि देवताओं ने माया से उकलेन तेल में इनके पुत्र माता स्त्री आदिक को पड़ते दिखाये जिससे यह चलायमान हुए उस वक्त उनकी माता वा स्त्री ने

चलायमान होने का शब्द सुनके उनके निकट आके कहा कि (भग्ग, पौंपा, भग्ग, नेमा,) जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तेरा पौंपा भागा. यहां करुणा करने से व्रत और पौंपा भांगने का कहा है फिर प्रायश्चित्त ले के शुध्द हुए (आपके प्रश्नों का उत्तर तो सूत्रों के प्रमाण देकर के ऊपर लिख आये हैं वह आप लोग सरल भाव से पक्षपात रहित होकर अवश्य वाचेंगे) इति यह तेरेपंथियों का लेख है. (इस का प्रत्युत्तर) हे भाई यह तुम्हारा लिखना सूत्र से अत्यन्त विरुध्द है. सूत्र में ऐसा कहां भी पाठ अर्थ टीका में नही कि करुणा करने से तुम्हारा व्रत भांगा और तुमने लिख दिया कि करुणा करने से व्रत और पौंपा का भंग होता है यह सूत्र का नाम ले के मिथ्या ही लिख दिया.

पूर्वपक्ष–जब भग्ग पौंपा सूत्र में कैसे कहा. किस कारण से उनका पौंपा भंग होना कहा.

उत्तरपक्ष–हे भाई तुमने प्रथम तो सूत्र का मूल पाठ संपूर्ण लिखा ही नहीं और किंचित लिखा सो भ्रमरूप है क्योंकि (भग्गवया) यह पाठ तो छोड ही दिये और (भग्गणियमे) पहिली का पाठ है और (भग्गपोसह) यह पीछे का पाठ है सो तुमने न जाने क्या जान के उलट पलट यानी पहिले का पीछे और पीछे का पहिले लिखा है.

पूर्वपक्ष–हमारे गुरुजी क्या सूत्रपाठ नही पढ़े हैं जो हमको उलट पलट सिखाया.

उत्तरपक्ष–गुरुजी की विद्वता तो सूत्र देखोगे तो मालुम हो जावेगी. कि सूत्र से उलट पलट है कि नही या तुम्हारे गुरु

जी ने ठीक बताया होवे और तुम लोग भूल गये होवो तो भूल मजूर करना अच्छा है तो अब आप बताइये कि (भगवया-भगाणियमे, भग्गपोसहे, विहरासि) इस पाठ का अनुक्रम अर्थ सूत्र टीका से कहो जिससे हमको मालुम होवे कि सत्य यह है और झूठ यह है.'

उत्तरपक्ष–सुनिये भाई हम अनुक्रम से अर्थ टीका सहित लिखते है हम एक चुल्लनी पीता श्रावक का कथन किंचित लिखते हैं उस माफिक सर्व का कथन जानना. सूत्र का भावार्थ ॥ बानारसी नगरी का वासी चुलनी पीता श्रावक को पोंपा में मिथ्या दृष्टि देवधर्म से डगाने को आया और विकराल रूप करके चुलनी पीता को कहा भो चुलनी पीता जो तू अपने व्रत नियम धर्म को नहीं छोड़ेगा तो मै तेरे बडे पुत्र को तेरे सामने घात करके उसके मास के सुले करके तेल में तलके तेरे ऊपर छाटूंगा जिससे तू अकाल में मर जावेगा ऐसे शब्द सुनने से भी श्रावक चलायमान नही हुवा. यानी धर्म छोड़ना मंजूर नहीं किया तब दैवने वैसे ही माया दिखाई फिर वचेट बेटे की माया दिखलाई फिर लघु बेटे की भी ऐसी ही माया दिखाई फिर चौथी वक्त उनकी भद्रा माता के लिये कहा तब उनको क्रोध उत्पन्न हुवा और विचारा कि यह अनर्थ करने वाला पुरुष है इसको मैं पकड़ लेऊ ऐसे कह के उठे तब देवता आकाश में अदृश्य होगया और चुलनी पीता के हाथ में एक स्थभ आगया उसको पकड के कोलाहल शब्द जोर से करने लगे तब इनका कोलाहल शब्द को सुन के इनकी माता भद्रा आके कहने लगी कि हे पुत्र तैने कोलाहल शब्द क्यों करा तब सर्व

वृत्तान्त कहा तव माता वोली कि हे पुत्र तेरे को विपरीत देव का दर्शन हुवा सो अब पाठ से कहते हैं.

सूत्र पाठ—एसए, तुमे, विदरिसणे, दिठे, तएणं, तुम, इयाणि, भग्गवया, भग्गणियमे, भग्गपोसहे, विहरासि ॥ इति सूत्रपाठ ॥

अस्य टीका—एतच्चत्वया विदर्शनं विरूपाकारं विभीपिकादि दृष्ट मवलोकित मिति भग्गवइति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपात विरतेर्भावतो भग्नत्वात्त द्विनाशनार्थं कोपेनोध्दावनात् सापराधस्यापि व्रत विषयी कृतत्वात् भग्न नियमः कोपोदये नोत्तर गुणस्य क्रोधाभिग्रह रूपस्य भग्नत्वात् भग्नपोषधो व्यापार पोषध भंगात् ॥ इति टीका ॥

अथ टीकार्थ—ऐ जो तैने विरूपाकार भयंकर डरावने वाला देखा इससे भग्नव्रत स्थूलप्राणातिपात की जो विरति यानि निवृत्तिपणा उसके होने से यानी स्थूल जीव का हनने का नियम तुम्हारे होने से उसको यानी माता का विनाश करने वाले पुरुष को विनाश करने वास्ते कोप से दोडने से अपराध करके सहित वह पुरुष था तो भी व्रत में कोप करने से (भग्नः) कोप का उदय करके उत्तर गुण जो क्रोध का दूर करने वाला नियम उसका भग्न होने से हनन व्यापार करके पौषा का भंग होने से इत्यर्थः इति टीकार्थः अब देखो सूत्र में तो ऐसा खुलासा है कि चुलनी पीता श्रावक को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होने से उस माता को विनाश करने वाला पुरुष को हनने को दौड़े वो पुरुष अपराधी था तो भी पौषा में नहीं मारणा कल्पे और मारणे को उठे जिससे व्रत भागा और तुमने लिख दिया कि जीवन

विषय तेरा,व्रत भांगा यानी करुणा करने से व्रत, पाँपा भांगा ऐसा बेढंग ऊटपटांग अर्थ कहां से लाये. तुम्हारे भ्रम विध्वंसन के कर्ता ने भी ऐसा अर्थ नहीं करा कि जीवन विषय तेरा व्रत भांगा तो तुम क्या नवीन अलौकिक विद्वान उठे वाह रे भाई क्या तुमको कहें तुमने सिद्धात विरुद्ध भापण करने में पूर्ण कमर बांधी, परन्तु थोडासा तो इस लोक परलोक का भय रक्खो यदि कोई पूछेगा कि ऐसा अर्थ कहा लिखा है तो तिस वक्त क्या उत्तर देवोगे. या इस असत्य अर्थ का फल हमको परलोक में कैसा होवेगा. वाहरे भाई तुम्हारी समझ.

पूर्वपक्ष–क्रोध करके मारने को उठने से पाँपा भागा. ऐसा अर्थ मूलपाठ से निकलता है कि नहीं.

उत्तरपक्ष–हे भाई मूलपाठ बोल रहा है कि महया २ सद्देण, कोलाहले कए ऐसा पाठ है कि मोटे २ शब्द से चुलनी पिया ने कोलाहल शब्द किया. यह तो स्पष्ट रीति से थोडासा समझदार भी समझ सक्ता है कि क्रोध आया विना मोटा २ शब्द से कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तथा पुरुष के भरोसे स्थंभ पकड़ के कोलाहल शब्द करना कैसे होवे. तो निश्चय जानो कि यह तो सर्व काम क्रोध उत्पन्न होने से ही हुये हैं सो ही मूलपाठ की टीका में लिखा है कि स्थूल प्राणातिपात की वृत्ति श्रावक के थी. और सापराधी को मारणे की वृत्ति नहीं थी परन्तु चुलनी पियाजी पाँपा करे हुये थे, और पाँपा में सापराधी को भी मारणा नहीं कल्पे. और चुलनी पियाजी माता को मारणे वाला ऐसा सापराधी पुरुष को मारणे को उठे उस

से उनका व्रत भांगा और पौंपा में नियम था सो भी क्रोध करने से भग्न हुवा. ऐसे ही पौंपा भी भग्न हुवा. सो ही सूत्र का सत्य अर्थ है. परन्तु जीवन विषय तेरा व्रत भांगा. यानी करुणा करने से व्रत नियम पौंपा भागा. ऐसा तो सूत्र अर्थ टीका में नाम मात्र भी नहीं है. तो तुम्हारा लिखना ऊटपटाग अर्थ कभी नहीं मिलता. और करुणा करके व्रत भंग कहणा ऐसा है कि जैसे अमृत पीने में मरणा कहना तथा तुम हठ करके कहो कि माता की रक्षा करने से व्रत भांगा तो यह किसी प्रमाण से सिद्ध होता ही नहीं क्योंकि रक्षा तो दश ही श्रावक कुटुम्ब परिवार दास दासी आदिक के करते थे. तो फिर उन की रक्षा से व्रत क्यों नहीं भांगे कदाचित तुम व्रत भागणे से एक पौपा ही भागा कहो तो वह भी नहीं मिले. क्योंकि टीका में स्थूल प्राणातिपात वेरमण व्रत का भंग हुवा लिखा है और मूल सूत्र में भी व्रत नियम और पोंपा तीनों अलग २ किये है और तीनों का अलग अलग भंग होना लिखा है. इससे व्रत भंग से स्थूल प्राणातिपात वेरमण का ही ग्रहण होता है और स्थूल प्राणातिपात वेरमण का भंग तो मारणे से ही होता है परन्तु रक्षा करने से कभी सिद्ध नहीं होता. बस सत्य तो यही है कि क्रोध वश हो के चुलनी पीताजी मारणे को उठे जिनसे ही उनका व्रत भांगा है परन्तु करुणा से नहीं. इति ॥

अब अच्छी तरह से विचारो कि तुम्हारी सूत्र की साक्षी बतलानी सर्व विरुद्ध है उसको हमने अच्छी तरह से प्रत्युत्तर में लिखी है मूलपाठ टीका दीपिकादिक से लिखी है तो यह तुम्हारा लेख है कि आपका प्रश्न का उत्तर तो हम सूत्रों का

प्रमाण देकर ऊपर लिखे आये है यह लिखना तुम्हारा है परन्तु वह तुम्हारा सूत्रों का प्रमाण देना सिद्धातों से अत्यन्त विरुद्ध है केई वातें तो सूत्र में है ही नही तो भी तुमने सूत्र का नाम लेके लिख दी. केई विरुद्ध लिखी. केई जिसप्रश्न का उत्तर से कुछ ताल्लुक ही नही. ऐसी साक्षी लिखी है. सो प्रश्नों का उत्तर तो एकभी नही आया है. किन्तु आलपाल है. तथा तुम्हारा लेख है कि धर्म को समझना यह काम बुद्धिमान विवेकी पुरुषों का है. यह वात हमने वहुत अच्छी समझी है इससे हम इन प्रत्युत्तरों में तुम्हारी तर्फ से पूर्वपक्ष उठा उठा के कथन विस्तार से किया है. खूब खुलासा किया है सूत्र का पाठ अर्थ टीका से प्रश्नोत्तर का प्रत्युत्तर लिखा है तिसको जेकर बुद्धिमान पुरुषों तुम धर्म के प्रेमी होवो तो अच्छी तरह से पढके सत्य धर्म की श्रद्धा को धारण करना चाहिये. यह ही आत्मा का परम कल्याण कारक मार्ग है इतिश्री प्रत्युत्तर दीपिकाया सप्तम प्रश्नका उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥ ॥ श्री वीतरागो जयति इति सप्तम प्रश्न समाप्तः ॥ तथा प्रथम भाग सपूर्ण ॥ इस में भूल चूक रही होतो अनंत सिद्ध भगवान की साख से मिच्छामी दुकडं है ॥

से उनका व्रत भांगा और पौंपा में नियम था सो भी क्रोध करने से भग्न हुवा. ऐसे ही पौंपा भी भग्न हुवा. सो ही सूत्र का सत्य अर्थ है. परन्तु जीवन विपय तेरा व्रत भांगा. यानी करुणा करने से व्रत नियम पौंपा भागा. ऐसा तो सूत्र अर्थ टीका में नाम मात्र भी नहीं है. तो तुम्हारा लिखना ऊटपटाग अर्थ कभी नहीं मिलता. और करुणा करके व्रत भंग कहणा ऐसा है कि जैसे अमृत पीने में मरणा कहना तथा तुम हठ करके कहो कि माता की रक्षा करने से व्रत भागा तो यह किसी प्रमाण से सिद्ध होता ही नहीं क्योंकि रक्षा तो दश ही श्रावक कुटुम्ब परिवार दास दासी आदिक के करते थे. तो फिर उन की रक्षा से व्रत क्यों नहीं भांगे कदाचित तुम व्रत भागणे से एक पौंपा ही भांगा कहो तो वह भी नहीं मिले. क्योंकि टीका में स्थूल प्राणातिपात वेरमण व्रत का भंग हुवा लिखा है और मूल सूत्र में भी व्रत नियम और पौंपा तीनों अलग २ किये है और तीनों का अलग अलग भंग होना लिखा है. इससे व्रत भंग से स्थूल प्राणातिपात वेरमण का ही ग्रहण होता है और स्थूल प्राणातिपात वेरमण का भंग तो मारणे से ही होता है परन्तु रक्षा करने से कभी सिद्ध नहीं होता. बस सत्य तो यही है कि क्रोध वश हो के चुलनी पीताजी मारणे को उठे जिनसे ही उनका व्रत भागा है परन्तु करुणा से नहीं. इति ॥

अब अच्छी तरह से विचारो कि तुम्हारी सूत्र की साक्षी बतलानी सर्व विरुद्ध है उसको हमने अच्छी तरह से प्रत्युत्तर में लिखी है मूलपाठ टीका दीपिकादिक से लिखी है. तो यह तुम्हारा लेख है कि आपका प्रश्न का उत्तर तो हम सूत्रों का

प्रमाण देकर ऊपर लिखे आये है यह लिखना तुम्हारा है. परन्तु यह तुम्हारा सूत्रों का प्रमाण देना सिद्धातों से अत्यन्त विरुद्ध है केई बात तो सूत्र मे है ही नहीं तो भी तुमने सूत्र का नाम लेके लिख दी. केई विरुद्ध लिखी केई जिसप्रश्न का उत्तर से कुछ ताल्लुक ही नहीं. ऐसी साक्षी लिखी है. सो प्रश्नों का उत्तर तो एकभी नहीं आया है. किन्तु आलपाल है. तथा तुम्हारा लेख है कि धर्म को समझना यह काम बुद्धिमान विवेकी पुरुषों का है. यह वात हमने वहुत अच्छी समझी है इससे हम इन प्रत्युत्तरों में तुम्हारी तर्फ से पूर्वपक्ष उठा उठा के कथन विस्तार से किया है. सूत्र खुलासा किया है सूत्र का पाठ अर्थ टीका से प्रश्नोत्तर का प्रत्युत्तर लिखा है तिसको जेकर बुद्धिमान पुरुषों तुम धर्म के प्रेमी होवो तो अच्छी तरह से पढके सत्य धर्म की श्रद्धा को धारण करना चाहिये. यह ही आत्मा का परम कल्याण कारक मार्ग है. इतिश्री प्रत्युत्तर दीपिकाया सप्तम प्रश्नका उत्तर का प्रत्युत्तर संपूर्णम् ॥ ॥ श्री वीतरागो जयति इति सप्तम प्रश्न समाप्तः ॥ तथा प्रथम भाग सपूर्ण ॥ इस में भूल चूक रही होतो अनंत सिद्ध भगवान की साख से मिच्छामी दुक्कड है ॥

तेरापंथियों के दिये उत्तर बिलकुल मिथ्या है उसका १ दूसरे फरेक के साधूजी का किया हुवा फेसला।

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥ अब पाठक जन सज्जन पुरुषों से बाइस समुदाय के श्रावकों का आखिरी निवेदन है कि हमारे सात प्रश्नों के उत्तर जो तेरेपंथियों की तर्फ से प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में छपवाये हैं वह उत्तर सिद्धांत से विपरीत है. यानि असत्य है तिसका खुलासा बार सिद्धांत के मूलपाठ अर्थ टीका दीपिका आदिक के प्रमाण से प्रकट इस पुस्तक में दिखलाया है कि इस वजह से तेरापंथियों का उत्तर विपरीत है और तिसमें भी विशेषता यह है कि तेरेपंथियों ने जो उत्तर दिये हैं तिसमें सूत्र की साक्षियें केवल नाम रूप ही लिखी है तिसमें भी कई एक साक्षियों में तो सूत्र का अच्छता ही नाम लिख दिया है और हमारी तरफ से जो प्रत्युत्तर में साक्षियें दी है वह मूलपाठ अर्थ टीका दीपिका का प्रकट लेख दिखलाया है. तिससे भव्य जनों से और हमारे मित्र तेरेपंथियों से हित पूर्वक निवेदन है कि हे भव्यों तुम पक्षपात छोड के मध्यस्थ दृष्टि से हमारे प्रत्युत्तर को देख के विचारना कि तुम्हारा उत्तर का देना सिद्धांत से विपरीत है कि नहीं और फिर एक प्रत्यक्ष प्रमाण से विचारना कि जो तुमने प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में शुरू शुरू पहिला प्रश्न का उत्तर में श्रीभगवान के चूकने के विषय में लिखा है कि श्रीभगवान् महावीर स्वामी ने दश स्वप्न देखे वह स्वप्न भगवान् को मोहनी कर्म के उदय से आये. तिससे

भगवान चूके तिसका सत्यासत्य का निर्णय के लिये मारवाड़ देश का जयतारण शहर में तुम्हारे तेरापंथियों के मत के माने हुये तुम्हारे पूज्य डालचंदजी के चेले फौजमलजी कि जिनको तुम विद्वान गिणते हो तिनके साथ हमारे बाईश सम्प्रदाय में के श्रीहुक्मीचंदजी महाराज के संप्रदाय के पूज्यजी महाराज श्री श्रीलालजी महाराज के साधुजी महाराज श्रीमोतीलालजी जीवाहरीलालजी कि जिनका नाम तुमने तुम्हारी प्रश्नोत्तर नामक पुस्तक में लिखा है उनने शास्त्रार्थ यानी चर्चा संवत् १९६० का पौष वदी पंचमी से लेके पौष सुदी पूर्णिमा तक तीसरे मत के ४ मध्यस्थों को मुकर्रर करके लेख द्वारा आठ कलम के कायदे से शास्त्रार्थ किया तिसका आखीर खुलासा यानी टूट होने के वास्ते दोनों तर्फ से चारोही मध्यस्थों ने पूछ लिया कि यह आप दोनों का सवाल जवाब को कोई सिद्धांत का जानकार पंडित के पास भेज के खुलासा मंगावे वह आप दोनों तर्फ मंजूर करोगे तिसपर यह बात मजूर हुई कि चाहे जिस जैन सिद्धांत का यानि पंडित से इसका खुलासा कराइये और जो वह पंडित खुलासा करे वह हम को मंजूर है तब चारों मध्यस्थों ने जयपुर शहर निवासी पंडित श्री शिवजीरामजी समेगीजी से खुलासा पूछा यानि छेली टूट के लिये दोनों तर्फ के सवाल जवाब को भेज के मगाया. तिसमें पीछा समेगीजी शिवजीरामजी ने पूरे तौर से खुलासा का पत्र मध्यस्थों को लिख भेजा. कि श्री भगवान् को मोहनी कर्म के उदय से स्वप्न नहीं आये है. किन्तु सूत्र प्रमाण से स्वप्न का फल में मोहनी कर्म का जीतना सिद्ध है तब चारो मध्यस्था ने

उसी माफीक लेख पर हस्ताक्षर करके सर्व सभा को ढुट यानी खुलासा सुनाया. दोनों तरफ लेख लिख के दिये है तिसका संपूर्ण हाल सर्व जैतारन वालों को मालूम है सो जान लेना. और पक्ष छोड़ के विचारना कि जब तुम्हारा प्रश्नोत्तर का पहिला प्रश्नका उत्तर देना भी प्रत्यक्ष शास्त्रार्थ करके दूसरे फिरके के पंडित से भी हमने गलत कर दिया है. तो हे भव्यो! अबतो तुम पक्ष छोड के विचारना कि पहिला पश्न का उत्तर जो तुमने दिया. वह असत्य यानी गलत होगया. तो अब आगे के प्रश्न के उत्तर सत्य कहा से होंगे. जैसे चांवल के हंडे का ऊपर का कण कचा है तो फिर नीचे के चांवल पके यानि सीजे कहा से होंगे. ऐसे ही आपने हमारे प्रश्नों का पहिला उत्तर भी गलत दिया तो आगे के तुम्हारे उत्तर सत्य कहां से है अपितु नही सो इस पुस्तक में अच्छी तरह से दिखलाये है. तिससे हमारा आप लोगों को हित दृष्टि से कहना है कि जो आप लोगों को संसार समुद्र दुःखों से पारावार करे ऐसा श्री सर्वज्ञ वीतराग देव का प्ररूपा जैन धर्म तिसकी सत्य श्रद्धा को धारन करने की इच्छा होवे तो इस पुस्तक को सरलता से देखना और सत्य को धारन करना परंतु जो सत्य वार्तो को आप लोगों के हित के लिये यथा योग्य दिखलाई है वह आप के हित के लिये है. परन्तु आप लोग उस सत्य बात को उल्टी समझ के हित दृष्टि छोड के द्वेषभाव को प्राप्त मत होना. क्योंकि प्रथम तो जैनधर्म की यह रीति नही है कि किसी को विरुद्ध वाक्य कहके रंज पहुंचाना. तो फिर आप लोग तो जैनी नाम धारक होने से हमारे प्रिय मित्र हो तो आपके लिये तो हम विरुद्ध

वाक्य कहें काहे को. परन्तु सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का तो धर्म का कायदा ही है. सो वैसेही इस पुस्तक में दर्शाया है. तिसपर भी आप को असह्य लगे तो हम अपनी तर्फ से तुमको चमाते है यानी चमा मागते है ॥

अथ दूसरा भाग।

अब बाईस समदाय की तर्फ से तेरेपंथी श्वेतावरियों को विदित होवे कि हमारे सात प्रश्न का उत्तर तो तुम्हारी तर्फ से संतोष कारक कुछ भी नही दिया. सो हमने प्रत्युत्तर में दिखलाया है. अब हमारे सात प्रश्नों का उत्तर संतोष कारक नहीं दिया तथापि हमसे जो तुमने ऊटपटाग सात प्रश्न पूछे है उनका उत्तर देते है और यह भी दिखाते है कि तुम्हारा लेख तुम्हारी प्रतिज्ञा से भी कैसा विरुद्ध है सो प्रश्नकर्त्ताजी मध्यस्थ भाव से अवलोकन कर सत्यध धारन करनाजी. प्रथम तुम्हारा प्रश्न पूछने की आदि में यह लिखना है कि हमारी तर्फ से यानि तेहरे पंथियों की तर्फ से आपही के प्रश्नों के यानि बाईस समदाय के प्रश्नों के अतर्गत हम प्रश्न पूछते है ॥

"समीक्षा" हे तेरे पथियों जरा सोचना कि तुमने प्रतिज्ञा तो यह करी कि हम आपके प्रश्नों के अतर्गत ही प्रश्न पूछते हैं और प्रश्न हमारे प्रश्नों से तुमने विलक्षण यानि और ही तरह के किये है यानि पूछे है तो हमको निश्चय हुवा कि तुम लोगों को सत्य असत्य उलट पलट अपनी प्रतिज्ञा से विरुद्ध लेख लिखने का भी खयाल नहीं कि अपनी प्रतिज्ञा तो किस प्रश्न पूछने की करी है और लेख में कैसा प्रश्न लिखते है तथापि खैर हमने सोचा कि विपरीत ज्ञान का स्वभाव ऐसाही होता है अब तु-

म्हारा प्रश्न और तुम्हारी प्रतिज्ञा से तुम्हारा पतित होना. तिसकी समीक्षा. और तुम्हारा प्रश्नों का उत्तर नीचे दिखाते हैं ॥

प्रश्न पहिला—छद्मस्थपने में नहीं चूकने का सूत्रपाठ आप लोग बतलावो—

समीक्षा—देखो भाई यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा हमारे प्रश्न से विरुद्ध है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो ऐसा था कि श्री भगवान् महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में चूके बतलाते हो सो सूत्र का पाठ दिखलावो. और अब आप लोगों ने प्रतिज्ञा तो हमारे प्रश्न के अंतर्गत प्रश्न पूछने की करी. और पूछा समुच्चय कि छद्मस्थ नहीं चूकने का पाठ दिखलावो. तो यह तुम्हारा तुम्हारी प्रतिज्ञा से पतितपणा है. क्योंकि हमारा प्रश्न का अंतर्गत प्रश्न तो ऐसा होता है कि महावीर स्वामी को दीक्षा लेने के अनंतर छद्मस्थपने में नहीं चूकने का पाठ दिखलावो सो ऐसा सीधा लेख को छोड़ के अपनी प्रतिज्ञा से पतित होके समुच्चय छद्मस्थ नहीं चूकने का प्रश्न करा तो निश्चय हुवा कि तुमलोक दंभयुक्त बातें लिखते नहीं डरते हो परंतु तुम जैनी नाम धारक हो इसलिये ऐसा दंभ करना युक्त नहीं तथापि तुम्हारी मर्जी अब प्रश्न का उत्तर एकाग्र चित्त करके श्रवण करो—

प्रश्न पहिला का उत्तर—छद्मस्थ जीव दो प्रकार के हैं एक तो वीतरागी छद्मस्थ. दूसरे सरागी छद्मस्थ, तिसमें वीतरागी छद्मस्थ तो इग्यारमें बारमें गुण स्थान वाले जीव हैं. और वह छद्मस्थ वीतरागी कोई प्रकार का प्रायश्चित नहीं सेवते हैं तिससे उनका चूकने का तो अभाव है. यह कथन सूत्र भगवती जी का शतक २५ मां उद्देशा छठा में है. अब रहे सरागी छद्मस्थ तिनके

तीनभेद. एक तो सराग संयति. यानी सरागी साधू दूसरे संयता संयति. यानी श्रावक. तीसरे असंयति. इनमें से असंयति के तो व्रत पचखाण है ही नहीं. तिससे उनका तो चूकणे नहीं चूकणे का कथन ही नहीं. क्योंकि चूकणा नहीं चूकणा तो. व्रत प्रत्याख्यान वाले को होता है. लोक युक्ति में भी कहते है कि घोड़ा आदि पै चढ़े तो पड़े. परन्तु विन चढे पडे क्या. ओर जो संयता सयति श्रावक जन हैं. वह अपने नियम यानि व्रत प्रत्याखान जीतने लिये उस व्रतने शुद्ध पाले तो. वह नहीं चूकते हैं. और जो व्रत को खंडन करेतो चूक भी जावे. और जो सराग सयमी छद्मस्थ मुनि है वह तीन प्रकार के है. एक तो स्थीवरकल्पी. दूसरे जिन कल्पी. तीसरे कल्पातील तिसमे स्थिवरकल्पी. और जिनकल्पी मुनि तो अपने कल्प के माफिक वर्ते तो वह नही चूकते हे और कल्प को उल्लघन करे तो चूक भी जावे हैं. अब जो सरगी कल्पातीत छद्मस्त मुनि हैं वह नहीं चूकते है. क्योंकि वह मुनि कषाय कुशील (नियठे) निर्गथ होते हैं और वह मुनि मूल गुण उत्तर गुण मे दोष नहीं लगाते हैं इससे कल्पातीत सरागी मुनि का चूकना भी आगम प्रमाण से नहीं है यह कथन सूत्र भगवती का शतक २५ मा उद्देश छठे में है ॥ अब विचारना चाहिये कि कल्पातीत मुनि नहीं चूकते हैं तो श्रीभगवान् महावीर स्वामी जी तो दीक्षा लिये के अनन्तर कल्पातीत मुनि ही ज है तो फिर उनको तो चूकने का कोई प्रकार से सभव है ही नहीं और फिर श्रीभगवान् महावीर स्वामी का छद्मस्थपने में नहीं चूकने का मूलपाठ में कथन है. सूत्र आचाराग श्रुतस्कंध पहिला अध्ययन नवमा उद्देशा चौथा गाथा

आठवीं में साफ लिखा ह कि श्री भगवान् महावीर स्वामी ं पाप करा नहीं. कराया नहीं. करते को भला जाणा नहीं. सं सूत्र पाठ लिखते हैं—सो सुनिये ।

सूत्र– णच्चाणं से, महावीरे, णोविय, पावगं, सयमकासी अन्नेहिंवा, णकारित्था, कीरंतंपि, णाणुं, जाणित्था. ॥ ८ ॥ तथ इसी उद्देश की पनरमी गाथा का उत्तरार्ध में कहा है कि श्री महावीर स्वामी ने छद्मस्थ पने में एक वक्त भी प्रमाद कषाया दिक पाप नहीं करा सो सूत्र पाठ लिखते हैं सुनिये. सूत्र–छउ मत्थेवं, परिक्कममाणे, नोपमायं, सयंपि, कुव्वित्था, इति. इनका अर्थ और इन पाठों के ऊपर तुम्हारा कोणीक राजा का आसरा लेना. उन सर्व को सूत्र के मूल पाठ सहित वहुत पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष के साथ. पहिले भाग में प्रथम प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है सो. यदि आप लोग श्री वीरप्रभु के नहीं चूकने का प्रकट सिद्धांत का पाट को नहीं मानेंगे तो. हमलोग समझेंगे कि इन जीवों के प्रवल मोहिनी कर्म का उदय भाव हो रहा है. तिससे श्री वीरप्रभु की आशातना करते नहीं डरते है. परन्तु हे प्रश्न कर्त्ताजी जरा मध्यस्थभाव ग्रहण करके सत्यपच की धारणा करना जी ॥

प्रश्न दूसरा तेहरेपंथियों का–गृहस्थी असंजती इव्रती अन- तिर्थी इनको दान देने में एकांत धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो.

समीक्षा–यह प्रश्न भी तुम ने तुम्हारी प्रतिज्ञा से विरुद्ध लिखा है. क्योंकि हमारा प्रश्न तो यह था कि साधू के सिवाय दान में एकांत पाप वतलाते हो सो मूत्र का पाठ दिखलावो

यह हमारा प्रश्न था और तुमने प्रश्न कुछ उलटा ही किया है. और इस प्रश्न में तुम्हारा लिखना है कि असंयती अव्रती अन्य तीर्थी को दान देने मे एकांत धर्म कहते हो सो यह तुम्हारा लिखना स्वकपोल कल्पित मनमते का है क्योंकि हमारा असंयति अव्रती का दान देनेमें एकात धर्म है ऐसा एकात मानना हमारा नहीं है तिससे यह प्रश्न का पूछना तुम्हारा उलटा है अब असंयति अव्रती का दान का कथन जैन सिद्धात में है तैसा हम दिखलाते हैं.

प्रश्न दूसरा को उत्तर—गृहस्थी असंयती अव्रती अन्यतीर्थी इनको दुखी सुखी देख करुणा भाव से जो कोई दातार दान देवे उसमें एकात पाप सूत्र में कदापि नहीं कहा है तिससे इस दान का साधू निषेधना या स्थापना नहीं करते है क्योंकि मिश्र पक्ष पुन्य पाप का सद्भाव होने से मुनि को मौन रखणी कही है. और जो इसका दान को निषेध करे तो सूत्र प्रश्न व्याकरण का दूसरा आश्रव द्वार में झूठ बोलने वाला कहा है तिसका सविस्तार कथन प्रश्नोत्तर के तौर से हमने पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर का प्रत्युत्तर में लिखा है और जो तुम भगवतीजी सूत्र का आठवा शतक का छठा उद्देश का नाम ले के कहते हो कि असयति अव्रती को दान देने में एकात पाप है सो सूत्रों से अनभिज्ञपने का है क्योंकि वहां तो अन्यतीर्थियों के गुरु जो कुपंथ उपदेश देके कदाग्रह में डाले उनको मोक्ष के निमित्ते गुरुबुद्धि से प्रतिलाभे उसका कथन है परन्तु करुणा करके देने का निषेध या एकात पाप का कथन सूत्र में नहीं

को देने में तो करुणा दान तीर्थङ्कर ने सूत्र स्थानांगजी के दशवें ठाणे में कहा है और करुणा अनुकंपा दान का निषेध कोई भी अरिहंत परमेश्वर ने नहीं करा है ऐसा प्रमाण हमने सूत्र भगवतीजी का शतक ८ मा उद्देश छठा की साक्षी बतलाई है सो पहिले भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर में या दूसरा प्रत्युत्तर में देख लेना ॥

प्रश्न--चौथा तेरेपंथियों का । किसी मनुष्य को किसी मनुष्य ने फासी दी. किसी मनुष्य ने खोल दी. तुम उसमें धर्म कहते हो सो पाठ दिखलाओ ॥

"समीक्षा" यह प्रश्न भी तुमने छल रूप पूछा है. क्योंकि तुम उसमें धर्म कहते हो ऐसा गोलमाल ही लिख दिया है. परन्तु क्या हम धर्म फासी खोलने वाले को कहते है कि देने वाले को हा हा यह छल तो आप लोग खूबही सीखे हो परन्तु हमारा सिद्धांतों की राह से मानना ऐसा है कि कोई दुष्ट पुरुष किसी आदमीको फासी देवे. और कोई दयावान् पुरुष उसकी फासी खोल देवे. तो उस खोलने वाले पुरुष को धर्म होवे. परन्तु पाप नहीं. इस का प्रमाण आगमकी साक्षी सहित उत्तर नीचे लिखते है ॥

प्रश्न--चौथे का उत्तर ॥ सिद्धांत श्री उत्तराध्ययन जी का बाईसवां अध्ययन में कहा है कि श्री बाइसवां तीर्थंकर नेमीनाथ जी महाराज ने बहुत से पशु जीव को वाड़े में और पींजरे में पक्षी जीवों को रोके हुये देखके उन जीवों का संहार यानी घात होना जान के उनको सारथी से छुडाय के और सारथी को

जीव छोडने का जीव बचाने का इनाम में अपने आभूसण यानी गहणे दिये सो सूत्रपाठ लिखते है ।

सो, कुंडलाण, जुयलं, सुत्तग, च, महायसो, आभरणा, णीय, सव्वाणि, सारहिस्स, पणामए ॥ २० ॥

इसका अर्थ पाई टीका दीपिका अवचूरिका के अनुसार लिखते है ॥ वह नेमिकुमार बड़े यश के धारण करने वाले नेमिनाथ के अभिप्राय से सम्पूर्ण जीव बंधन से छूट गए तब सम्पूर्ण आभरण सारथी को देते हुए कौन से वह आभरण हैं. कुंडलों का जोडा, फेर कंडोरा, चकार शब्द से हारादिक जो सम्पूर्ण अंग उपांग के भूषण हैं वह भी सारथी को देते भए इति. इनकी मूलपाठ. टीका अवचूरिका दीपिका देखना होवे तो बहुत विस्तार से हमने पहिले भाग में पंचम प्रश्न का प्रत्युत्तर में कथन किया है वहा से देख लेना. और जो तुम्हारे गुरु जीतमलजी का बनाया भ्रमविध्वसन में लिखा है कि दीपिका में जीवों के हितवान् नेमीनाथजी यह कथन नहीं चला है. और नेमीनाथजी ने जीव नहीं छोड़ाये ऐसा लिखा है. तिसपे हमने टीपिकादिक का लेख सेहीज सिद्ध किया है कि श्री नेमीनाथजी का जीवों पर हित करना और जीवों को छोडना मूलसूत्र और टीपिका टीका अवचूरी से खुलासा किया है. उसको देख के हे भव्यो ! हृदय के ज्ञान नेत्र खोल के विचार पूर्वक देखना. और ज्ञान से तोलना कि श्री नेमीनाथजी महाराज ने पशु पक्षी को छोड़ाने में भी धर्म माना है तिससे पशु पक्षी छोडने का ही इनाम दिया है. तो फिर सर्वोत्कृष्ट मनुष्य शरीर से बचाने में तो धर्म हीज है इसमें संदेह ही क्या है.

कर्त्ता जी जरा दया धर्म से प्रेम लाके तीर्थंकर भगवान की प्ररूपणा पर ध्यान दे सत्य बात को धारन करना जी परन्तु केवल गुरुजी का भ्रम विध्वसनादिक स्वकपोल कल्पित ग्रंथों की आस्ता करके नहीं बैठे रहना. और इस एक साक्षी से अतिरिक्त बहुत सी साक्षी जीव बचाने की विषय की मूलपाठ टीका दीपिकादिक सहित पहिले भाग के पंचम प्रश्न का प्रत्युत्तर से देखके वीर प्रभु के वचनों की आस्ता रखना जी ॥

प्रश्न–पंचम तेहरे पंथियों का । गायों से भरे हुए बाड़े में किसी दुष्ट ने लाय लगादी किसी ने किवाड़ खोल कर बाहिर निकाल दी. तुम उसमें धर्म कहते हो सो पाठ दिखलावो ॥

समीक्षा– यह प्रश्न भी तुमने छल से किया है. क्योंकि हमतो बाड़े के किवाड खोल के. गायों को बाहिर निकालने वाले को गाय बचाने का धर्म कहते हैं परन्तु लाय लगाने वाले को धर्म नहीं कहते है किन्तु महा पाप कहते है. और तुमने गोलमाल ही लिख दिया कि तुम इसमें धर्म कहते हो. ऐसा छल करना तुम लोगों को उचित नहीं था खैर अब इसका उत्तर श्रवण करो ।

प्रश्नपंचम का उत्तर–ऊपर चौथा प्रश्न का उत्तर में हमने स्पष्ट पशु पक्षी को बाडे से नेमीनाथ जी ने खोलाये और उस खोलने वाले सारथी को इनाम दिया. ऐसा पाठ और टीपिका का भावार्थ सहित लिखा है. और भी सूत्र उपासक दशाजी में राजा श्रेणिक ने जीव बचने का ढंढेरा फेरा है तिसका मूल सूत्र टीका और अर्थ तर्क वितर्क के साथ पहिले भाग में पचमा प्रत्युत्तर में लिखा है सोवहा से अवलोकन करके शुद्ध श्रद्धा को धारन करनाजी ॥

प्रश्न छठा तेरेपंथियों का—असंजती को पोषने में पोषाने में पोषते हुए को भला जानने में धर्म कहते हो सो सूत्र का पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा—इस प्रश्न में तो तुमने सतरमा पाप की जिसका नाम मायामोषा है. उसको अग्रेसर करा है. क्योंकि हमारा तो कहना यह था कि असयत्ति पोषणिया पंदरमा कर्मादान कहते हो सो पाठ दिखलावो ॥ और तुमने प्रश्न तो हमारा प्रश्न के अतर्गत प्रश्न करते हैं ऐसा कहा है. और प्रश्न करा ऐसा कि जिसको हम एकात कहते भी नहीं है यानी असंयति को पोषणे में एकात धर्म है ऐसा एकात कहना भी हमारा नहीं. तो फिर तुम लोगों ने असंजती को पोषण में धर्म कहते हो ऐसा अच्छता लेख क्योंकर लिख दिया. परन्तु हमने सोच लिया कि हमारे तेरेपथी भोले मित्र इस लोक परलोक का भय छोड़ के मनमाने जो अडंगा लगा देते है परन्तु असंजती का पोषणे का निर्णय श्रवण करो।

प्रश्न छठे का उत्तर— असजती को पोषणा दोप्रकार का है एक तो अपने स्वार्थ के वास्ते तिससे जो कोई स्वार्थ के वास्ते असजती जीव को पोपे. उसमें तो धर्म नहीं. परन्तु मोह ममत्वादिक करने से कर्मबंध का कारण है इससे पाप में है. दूसरा कोई गरीब दुखी भूखा अभ्यागत को, रोटी आदिक देवे. वह करुणा दान में है तिस का विशेष खुलासा हमने प्रथम भाग में दूसरा प्रश्न का उत्तर में या दूसरा प्रत्युत्तर में बहुत विस्तार पूर्वक कथन करा है. उसको देख के शुद्ध श्रद्धा धारण करना जी।

प्रश्न सातमा तेरेपंथियों का—असंयति का असयम जीवितव्य

वंछते हो वछाते हो. और वंछते हुये को भला जाणते हो सो सूत्र का पाठ दिखलाओ ॥

समीक्षा—यह प्रश्न भी तुमने ऊटपटांग. और असंवद्ध करा है क्योंकि असंयम जीवितव्य जो वहुत काल जीव के वहुत काम भोग सेवन करना उसको तो हम वंछते नहीं. वंछाते नहीं. वंछते हुये को भला जानते नहीं. कि यह जीव संसार सम्बंधी काम भोग वहुत कालतक भोगवे तो ठीक है हम तो जीव मारते को यानी घात करते को. करुणा करने की वचाने की वांछा करते है तिसकी परमेश्वर की आज्ञा है. तिसका हम प्रश्न का उत्तर में सूत्रपाठ दिखाते है सो ध्यान लगाके श्रवण करो ॥

प्रश्न सातमां का उत्तर—सूत्र श्री प्रश्न व्याकरणजी का प्रथम संमरद्वार में श्री भगवान् ने कहा है कि सर्व जीवों की रक्षा निमित्त मैंने सिद्धांत कथे है. तिसका पाठ अर्थ सहित पहिले भाग में पंचमा प्रत्युत्तर में देखलेना॥ तथा श्रीभगवती जी का शतक पहिला उद्देश नवमा में कहा है कि आधाकर्मी आहार भोगवें वह साधू छकाय जीवों की रक्षा की वांछा रहित कहा है. और जो साधू फासुक ऐषणीक आहार भोगवे वह छकाम यानी पृथिवी अप. तेउ. वायु. वनस्पति और त्रस इन छकाय को राखणे रूप वाछा वाला कहिये. सो सूत्रपाठ लिखते है ध्यान लगाके एकाग्र चित्त से श्रवण करो ॥

सूत्र—फासु एसीणज्जं, भुंजमाणे, समणे निग्गंथे, आयाए, धम्मं, नाईक्कमई, आयाए, धम्मं, अणईकममाणे, पुढवि, कायं, अव, कंखई, जाव, तसकाय, अव, कंखई, जेसिं, पियण, जीआणं, सरीरायं, आहारई, तेविजीव, अवकंखई, इति सूत्रपाठ ॥

अर्थ–फ्रासुक निरदोप आहार भोगवतो थको साधु आत्मधर्म नही उलघे आत्मधर्म नहीं उलंघतो थको पृथ्वी काय अपकाय तेउकाय वाउकाय, वनस्पति काय त्रसकाय के जीवों का जीना वाछे।

अव विचारिये के छकाया का जीना वंछना कहा तो पृथ्वी आदिक से त्रसतक सर्व जीव संजती तो नहीं है इसलिये असंयति का जीना वछना मूलपाठ में कहा है. अब भी आप लोग नही मानोंगे तो मोहनी कर्म का उदय है इति दूसरा भाग संपूर्ण इस पुस्तक में भूल चूक रही हो तो अनंत सिद्ध भगवंत की साख से मिच्छामि दुकड है॥

पाठकों को सूचना।

इस पुस्तक के प्रूफ सुधारने में भूलें रही हो तो पाठकगण क्षमा प्रदान करें और इस पुस्तक को यत्नपूर्वक पढ़ें. दीपक के उजियाले में नपढे।

प्र० कर्त्ता.

सूचना ।

२२ समुदाय के श्रावकों को सूचना दी जाती है
हमारे यहा ३२ सूत्र माहिले सूत्र और पात्रे जो कोई दी
लेने वाला हो उसको विना मूल्य लिये ही दिये जाते हैं।
जगह दीक्षा लेने वाला हो और इन चीजों की जरूरत हो
गाव के अग्रेसर आदमियों के हाथ की चिट्ठी हमको देने
हम भेज देवेंगे सर्व वार्ता व्यौरेवार लिखें अर्थात् किस साधु
वा महासत्याजी के पास दीक्षा लेने वाला है तथा कब
दीक्षा है इत्यादि लिखें.

पता—पेमराजजी हजारीमल वांठिया,
मुकाम भीनासर पो बीकानेर (राजपूतान

सूचना ।

नीचे लिखी पुस्तक नीचे लिखे पते पर मिलेगी जिस
ज़रूरत हो मंगा लेवे. विना मूल्य वितरण होती हैं.

१–गुणविलास २२ समुदाय
२–सवैया और कुंडलिया कृपारामजी महाराजकृत.
३–सत्य मिथ्यार्थ निर्णय दो भाग श्री रामचन्द्रजी मह
राजकृत
४–प्रश्नोत्तर समीक्षा.
५–प्रत्युत्तर दीपिका श्री जुहारीलालजी महाराज कृत.

पता—कनीराम वांठिया–सेक्रेटरी जैन भंडार
मुकाम भीनासर बीकानेर (राजपूताना

जीव दया का स्तवन ।

दया को पालै है ज्ञानी दया में नहि समझै मानी ॥ टेर ॥
प्रथम श्री ज्ञाता सूत्र माहीं, लगी दव वन में भाई ।
पशु सर्व रहे घबड़ाई, दया दिल हाथी के आई ॥

दोहा–इस करनी परताप से, पायो समकित सार ।
श्रेणिक राजा के घर जाया, श्री श्री मेघकुमार ॥
अद्धी है वीर तनी वानी ॥ दया० ॥ १ ॥
दूसरा श्री मेघरथ राया, परेवा सरने में आया ।
बाज लारे से चल धाया, भक्ष मेरा दो महाराया ॥

दो०–मास अपना काट काट के, धरा तराजू माय ।
दैवयोग नहीं उठा पालना, जब शरीरी दिया चढ़ाय ॥
हुए श्री शांतिनाथ दानी ॥ दया० ॥ २ ॥
तीजा श्री नेमिनाथ स्वामी, जान चढ आए अंतर्यामी ।
हिंसा बहु पशुओं की जानी, छोडाया पशू दया आनी ॥

दो०–जियेहेउ पाठ है, सोचो दिल के माय ।
मनुष्य जमारा पा के, प्यारों दया रक्खो दिल माय ॥
दया सर्व धर्मों में मानी ॥ दया० ॥ ३ ॥
चौथे धर्मरुची मुनिराया, पारना मास खमण आया ।
नाग श्री तूंबा बैराया, मुनीश्वर परठण सिद्धाया ॥

सूचना ।

२२ समुदाय के श्रावकों को सूचना दी जाती है कि हमारे यहां ३२ सूत्र माहिले सूत्र और पात्रे जो कोई दीक्षा लेने वाला हो उसको विना मूल्य लिये ही दिये जाते हैं जिस जगह दीक्षा लेने वाला हो और इन चीज़ों की जरूरत हो तो गांव के अग्रेसर आदमियों के हाथ की चिट्ठी हमको देने से हम भेज देवेंगे सर्व वार्ता व्यौरेवार लिखें अर्थात् किस साधुजी वा महासत्याजी के पास दीक्षा लेने वाला है तथा कब की दीक्षा है इत्यादि लिखें.

पता—पेमराजजी हजारीमल बांठिया,
मुकाम भीनासर पो. बीकानेर (राजपूताना)

सूचना ।

नीचे लिखी पुस्तक नीचे लिखे पते पर मिलेगी जिसको जरूरत हो मंगा लेवे. विना मूल्य वितरण होती है.

१–गुणविलास २२ समुदाय.
२–सवैया और कुंडलिया कृपारामजी महाराजकृत.
३–सत्य मिथ्यार्थ निर्णय दो भाग श्री रामचन्द्रजी महाराजकृत
४–प्रश्नोत्तर समीक्षा.
५–प्रत्युत्तर दीपिका श्री जुवारीलालजी महाराज कृत.

पता—कनीराम बांठिया–सेक्रेटरी जैन भंडार
मुकाम भीनासर. बीकानेर (राजपूताना)

जीव दया का स्तवन।

दया को पालै है ज्ञानी दया में नहिं समझै मानी ॥ टेर ॥
प्रथम श्री ज्ञाता सूत्र माहीं, लगी दव वन में भाई ।
पशु सर्व रहे घबडाई, दया दिल हाथी के आई ॥

दोहा–इस करनी परताप से, पायो समकित सार ।
श्रेणिक राजा के घर जाया, श्री श्री मेघकुमार ॥
श्रद्धी है वीर तनी वानी ॥ दया० ॥ १ ॥
दूसरा श्री मेघरथ राया, परेवा सरने में आया ।
वाज लारे से चल धाया, भक्ष मेरा दो महाराया ॥

दो०–मास अपना काट काट के, धरा तराजू मांय ।
दैवयोग नहीं उठा पालना, जब शरीरी दिया चढ़ाय ॥
हुए श्री शांतिनाथ दानी ॥ दया० ॥ २ ॥
तीजा श्री नेमिनाथ स्वामी, जान चढ आए अंतर्यामी ।
हिंसा बहु पशुओं की जानी, छोडाया पशु दया आनी ॥

दो०–जियेहेउ पाठ है, सोचो दिल के माय ।
मनुष्य जमारा पा के, प्यारों दया रक्खो दिल माय ॥
दया सर्व धर्मों में मानी ॥ दया० ॥ ३ ॥
चौथे धर्मरुची मुनिराया, पारना मास खमण आया ।
नाग श्री तूबा वैराया, मुनीश्वर परठण सिद्धाया ॥

इस पुस्तक का शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पाठकगणो ! प्रथम निम्नलिखित अशुद्धियों को सुधार के फिर यत्ना स पढें अबकी प्रूफ नहीं शोधने के सवन तथा और भी कई कारणों से अशुद्धिया बहुत रहगई तथा पदच्छेदन मे बहुत गलतिया रही हैं इस कारण क्षमा करें अबकी दूसरा सस्करण में जहातक हुवा शुद्धकर छपावेंगे अशुद्धियों को ध्यानमें न रख विज्ञ पुरुष आशय का ही ग्रहण करे ।

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७८	४	पढिमा	पड़िमा
,,	१६	पालक	पालके
,,	२०	थोडे	थोडे
१७६	१	था, जिससे	था, कि जिससे
,,	२१	० के आग	पूर्वपक्ष–हमने आनदजी को असयति अविरति सरीसा कहा लिखा है
,,	,,	नवम	नवमा
१८०	१७	उगाडी	उगाडी
१८१	६	अधमी	अधर्मी
,,	१०	मसारी तुम्हारे	ससारी सरीसे तुम्हारे
१८२	५	ऊपपटांग	ऊटपटाग
,,	१८	(जेभिरक्क)	जेभिक्खु

१८३	२	का तो	को तो
१८४	७	उसका तो	उसको तो
१८४	१६	येहमाणे	येपइमाणे
,,	२०	उद्दुक्षु, पायरिएजा	उद्दुड, पाएरिएजा,
,,	,,	साहदु, पायारिएज्जा	साहट्ट, पाएरिएज्जा,
,,	२४	सागण	समण
१८५	४	बतो	वतो
,,	,,	उद्दुक्षु	उद्दुड
,,	५	व इन्द्री	बेइन्द्री
,,	७	चालह	चाले
,,	१०	छातइमाग्रिचाल	छनइ मार्गचाल
१८६	४	क	वक
,,	१५	संभव	सभव
,,	२०	वालो	वाले
१८७	११	देनेवाले वहुत खे	देनेवाले वहुत से
,,	१२	को भगवान	को भगवान
,,	१५	मत्यच	मत्यक्ष
१८८	२४	भत्र	भ्रष्ट
१८९	७	साधु	साधों
,,	८	हुवा	हुवा
,,	११	पढने	पढाने
,,	१६	ने	के
१९०	१२	से वाजन	सेवावने
१९१	१६	मश्न दीखता है	मश्न विरुद्ध दीखता है

१६२	२२	यह	तथा
१६३	२३	होता है	होती है
१६८	६	निग्रंथचण	निग्गंथचणं
,,	१२	सर्व सर्व	सर्प
,,	१४	स्त्री	स्त्री
,,	१५	इणा	इण
,,	१६	अपवादी	अपवादे
,,	१८	पावे	पामे
,,	२३	ने	नो
१६६	८	को	की
,,	१२	उतारने	उतराने
,,	,,	कातने	कटाने
२००	१	कोडा	फोडा
,,	३	कपाडी ने पछ्या	कपाडी ने पछ्या
,,	६	हावे	होवे
२०४	४	जेभिख	जेभिक्खु
,	६	,,	,
,,	११	वियार भूमिका	विहार भूमिका
,,	१२	जेभिख	जेभिक्खु
२०५	६	और	और तुप
२०६	२०	साधूपण	साधूपणा
२०८	२२	गुण (से आगे)	अनुमोदन जहा तक बने वहां तक करे तो उनको तो गुण
२१०	७	को	की

२१३	४	जाणते हैं	भला भी जाणते हो
२१४	८	उलघ	उलत्र
,,	१७	जेभिखु	जेभिक्खु
,,	२०	वधतंवासाहइज्जेइ	वधंतंवासाइज्जेइ
,,	,,	जेभिखु	जेभिक्खु
,,	२२	,,	,,
२१५	७	अनुकपा अर्थ	अनुकपा का अर्थ
,,	१८	मुजपासएणवा चम- पासएणवा.	मुजपासएणवा कट्टपासएण वाचमपामएणवा
२१६	६	हैं	है
२१७	२	करणा	करुणा
,,	६	अवएक्खइ	अवएक्खइ
,,	१६	कों	को
२१८	५	तुम्हार	तुम्हारे
,,	१३	उसकी	उसको
२१९	१	भिक्खु	भिक्खुं
२२०	२१	हाती	होती
२२३	९	वाहिविणी	वाहिविणी
,,	१४	लक्षणा	लक्षण
,,	२१	कारुण	कारण
२६४	२	सिद्धात में	सिद्धात में नहीं कहा है न कहीं प्रायश्चित्त कहा है मोह
,,	,,	कालुणय	
,,	९	वधणं	

,,	१३	कंइ हैं	कंह
२२७	८	लिखते है-सुनो	लिखते नही डरते हो
२२८	६	उतिगण	उतिगेण
,,	६	,,	,,
,,	,,	उत्तरूत्तरिवाणत्रा	उत्तरूत्तरिणात्रा
२३७	२२	अगीय	अगीय
२३६	१	निर्मोहत्वपहोरूत्र	निर्मोहत्वपणेरूप
,,	१५	ठीक	का
,,	१६	अर्थ-अपणापणा	अर्थ-आत्मा का अपणापणा
,,	२२	ठीक है	का है
२४१	२	(रागप्पमुहे)	(एगप्पमुहे)
,,	४	कहा	कहो
,,	६	(रागप्पमुह)	(एगप्पमुहे)
२४३	१४	मिथिलांवल	मिथिलावलं
२४५	११	वहुत	वहुत
२४६	३	जीव हेउ	जीयं हेउ
२४७	१	हैं	है
,,	२०	का	को
,,	२२	पिजरेहिं	पिंजरेहिं
,,	,,	सदुखिए	सदुक्खिए
,,	२३	भखियव्वए	भक्खियव्व
,,	,,	महापण	महापण
,,	२४	सुहेसिणे	सुहेसिणो
२४८	७	सों	सो

,,	१०	निर्पन्	निर्यन्
,,	१२	साथ	सार्थ
,,	१४	अतिशयेन्	अतिशयेन
,,	१५	निमन्त्रणा	निमन्त्रण
,,	१८	कीदशौ	कीदशो
२४६	१	श्रवणानतर	श्रवणानंतरं
,,	४	स	से
,,	८	हणः	रुणः
२५०	५	कहे	कहै
२५४	४	टवार्थ	टवार्थ
,,	१०	जीवे	जीये
२५६	७	भूल	मूल
२५७	३	को पेस्तर	को पूत्रे पेस्तर
२५६	६	वीय	रीय
,,	७	भूए	भूया
,,	२०	रखण	रक्खण
,,	२०	भ्रुकहियं	सुकहिय
२६१	२३	कृष्ण	कृष्न
२६२	६	लस्या परिणाम	लस्यामते परिणामे
२६४	१२	नहीं और	नही देना और
२६६	२०	अज्जौ	अज्जो
२६७	१	यभे	भये
२७२	७	भीपमजी	भीपमजी ने
२७३	१७	आइखित्तएवा	आइक्खित्तएवा

२७६	१०	उहदेश	उपदेश
,,	१४	से छाड़ना	से द्वेष छोडना
२७८	६	को ही	की ही
,,	१७	पाप पाठ	पाठ
२७९	२३	कहायो	कह्या
२८०	१६	रखण	रक्खण
२८१	६	,,	,,
,,	७	,,	,,
,,	८	,,	,,
२८२	१२	पावे	पीव
२८५	१३	दव	दव
२८७	१३	उत्तपक्ष	उत्तरपक्ष
२९१	१०	ह्येत्था	होत्था
२९८	१	हुना	हुवा
३०३	९	सुपडिया	सुपडिया
३०७	१०	र्मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
३१०	५	नहीं	नहीं तो
३१७	५	ससपडगे	ससपडगे
,,	९	जांव की	जीव का
३२१	८	(माहणे वा.	माहणे वा
३२७	१९	करता	करना
३२९	१३	दुद्दसवा	दुद्दसवा
,,	१४	रायत	रायते
,,	२६	दुर्भिक्ता	दुर्भिक्ष